इक्कीस बांग्ला कहानियाँ

अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

इक्कीस बांग्ला कहानियां

संपादक

अरुण कुमार मुखोपाध्याय

अनुवाद

देवलीना

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया

विषय सूची

भूमिका

भारतीय पाठकों के लिए नैशनल बुक ट्रस्ट ने 'आदान-प्रदान' योजना के अंतर्गत संविधान अनुमोदित भारतीय भाषाओं में लिखी कहानियों के संकलन एवं विभिन्न भारतीय भाषाओं में उनके अनुवाद तथा प्रकाशन का जो संकल्प लिया है, उसी के अंतर्गत बांग्ला की कहानियों का यह संकलन प्रस्तुत है। इस संकलन में सामयिक जनजीवन की तस्वीर देने की चेष्टा की गई है।

बांग्ला कहानियों के प्रथम सार्थक शिल्पी या लेखक थे रवींद्रनाथ ठाकुर। कहानियों की प्राण प्रतिष्ठा उन्होंने ही की। तत्पश्चात् आश्चर्यजनक ढंग से इसका विकास हुआ। कहानी के हर क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का परिचय मिलता है। प्रेम, प्रकृति, समाज-समस्या, दार्शनिकता, काव्यधर्मिता, रोमान्स, इतिहास, व्यंग्य—इन सभी क्षेत्रों में उनका स्वच्छन्द विचरण था। 1890 से 1940 तक की आधी सदी तक उन्होंने कहानियां लिखीं।

रवींद्रनाथ के समकालीन त्रैलोक्यनाथ मुखोपाध्याय, प्रभात कुमार मुखोपाध्याय, शरत्चंद्र चट्टोपाध्याय एवं प्रमथ चौधरी ने बांग्ला की छोटी कहानियों के भंडार को और भी समृद्ध किया।

इस संकलन में हम लोगों के जाने-पहचाने समय की कहानियों का चयन है। रवींद्रनाथ तथा शरतचंद्र को पूरी तरह उस काल का नहीं कहा जा सकता जिससे हम परिचित हैं। रवींद्र एवं शरत के बाद बांग्ला कहानी में विगत चालीस साल की बंगाली मानसिकता के विभिन्न अनुभव साकार हुए हैं। इसीलिए यहां शरत के बाद की बांग्ला कहानी का अब तक का जो विचित्र संसार है, उन्हीं में से ये कहानियां संकलित की गई हैं।

बांग्ला साहित्य में रवींद्रनाथ—शरतचंद्र के तुरंत बाद का जो युग था, उसका नाम था 'कल्लोल युग'। इस युग की समय सीमा 1923 से 1939 तक थी। 'कल्लोल' तथा 'कालिकलम' गोष्ठी की कहानियों के लेखकों ने दुनिया भर में फैली आर्थिक मंदी एवं भारत में अंगरेज विरोधी आन्दोलन के बावजूद करीब

करीब शांति एवं सुरक्षा के बीच रहकर कहानियों की रचना की। इस युग में दिखाई दिए ताराशंकर बंदोपाध्याय, अचिंत्यकुमार सेनगुप्त, प्रमेन्द्र मित्र, बुधदेव बसु, मनीश घटक (युवनाश्व) प्रबोधकुमार सान्याल तथा भवानी मुखोपाध्याय। 'विचित्रा' तथा 'शनिवार की चिट्ठी' इन दोनों पत्रिकाओं के पन्नों पर दिखाई पड़े विभूति भूषण वंदोपाध्याय, माणिक बंदोपाध्याय, अन्नदा शंकर राय, बनफूल, विभूति भूषण बंदोपाध्याय शरतचंद्र बंदोपाध्याय, रवींद्रनाथ मैत्र, परिमल गोस्वामी, सजनीकांत दास, प्रेमांकुर आतर्थी, सरोज कुमार राय चौधरी, प्रमथनाथ बिशी, गजेन्द्र कुमार मित्र, आशापूर्णा देवी, मनोज बोस तथा विमल मित्र। इस युग के उदयमान लेखक परशुराम (राजशेखर बसु) उत्कृष्ट हास्य-व्यंग्य रस के लेखक थे।

'कल्लोल' युग के बाद के समय की बात करते समय जिस समय को हम लोग जानते-पहचानते हैं, उसकी पूर्व सीमा दूसरे विश्व युद्ध के घिरते बादलों के समय से लेकर उत्तरी सीमा की आजादी और देश के विभाजन (1939-47) तक का समय था। आंशिक रूप से ये दस वर्ष बंगाल के समाज एवं राष्ट्र में कालांतर का युग साबित हुए। अकाल, विमान हरण की घटनाएं, कंट्रोल तथा राशन, मिलिट्री सप्लाई, कालाबाजारी, सामाजिक जीवन की अधोगति, आर्थिक विषमताएं, नैतिक मूल्यों का विनाश, दंगे, स्वतन्त्रता, देश का विभाजन एव शरणार्थियों की बाढ़, इस छोटी सी अवधि में इतनी विनाशकारी घटनाएं घट गयीं।

इस युग में जो भी कहानियां लिखी गयीं, उनमें साहित्यक चेतना के अभ्युदय के साथ-साथ इस युग की उथल-पुथल का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। इस दौर का सामाजिक वातावरण अशांत और विक्षुब्ध रहा था। इस वातावरण ने उनकी दृष्टि को थोड़ा संकुचित किया, थोड़ा पैना बनाया और साथ ही, थोड़ा अपरिष्कृत भी रखा। 'कल्लोल युग' की रोमांटिक और बोहेमियन मानसिकता तथा पाल टूटे नाव-सा प्रेम अभियान इस युग की कहानियों में कहीं दिखाई नहीं पड़ता। इस युग में हमारे समाज में बड़ी जल्दी-जल्दी अनगिनत परिवर्तन आए। इस काल में समाज तथा व्यक्तिगत जीवन में जो उथल-पुथल, तथा समस्याएं पैदा हुई, उनसे परिवर्तन का जो प्रबल प्रवाह आया, उसने कहानीकार की बोधशक्ति को और तीक्ष्ण बना डाला। परम्परागत सामाजिक बंधन शिथिल पड़ गए, सम्बन्धों में अस्वाभाविकता पैदा हो गई, किसी सूक्ष्म अतृप्ति से आदमी पीड़ित हो उठा, रुचि में विकार आया, नई प्रतिबद्धताओं और वादों में जीवन-संग्राम का नया रूप उभरा—युद्ध पूर्व यह सब अकल्पनीय था। युद्ध मानो एक भयंकर भूकंप था। उसमें भद्र व्यवहार का आवरण, नीति का कवच, पारिवारिक मानमर्यादा, स्नेह-

ममता, धर्म-संस्कार—सब कुछ मानो मटियामेट हो गया। उसी के बीच सुनाई पड़ी नये समाज को गढ़ने के सपने की गूंज और नये संकल्पों की झंकार।

इन परिवर्तनों का आभास जिनकी रचनाओं में दिखाई पड़ा, वे हैं सुबोध घोष, सतीनाथ भादुड़ी, सतोष कुमार बोध, नारायण गंगोपाध्याय, नरेन्द्रनाथ मित्र, नवेंन्दु घोष, ननी भौमिक, सुशील जाना और ज्योतिरिन्द्र नन्दी। इसके साथ ही पहले आये हुए जो कहानीकार याद रखने योग्य हैं, वे हैं—जगदीश गुप्त, माणिक बंदोपाध्याय, अचिंत्यकुमार सेनगुप्त, प्रबोधकुमार सान्याल, प्रमुख कल्लोल गोष्ठी के लेखक विभूति भूषण बंदोपाध्याय, ताराशंकर बंदोपाध्याय, मनोज बसु, सरोज कुमार राय चौधरी, आशापूर्णदेवी, प्रमथनाथ बिशी, परिमल गोस्वामी, बनफूल, वाणी राय, सुशील घोष, चारुचन्द्र चक्रवर्ती, तथा प्रमुख पत्रिकाएं 'विचित्रा' और 'शनिवार की चिट्ठी' के लेखक।

इस काल के बाद ही आयी रक्ताभ या रक्तरंजित खंडित स्वतंत्रता। शरणार्थियों की बाढ़ आयी और आया व्यापक सामाजिक असंतुलन। स्वतंत्रता के तोरण द्वार पर आशा और आनद की जो वाणी उच्चरित हुई, उसको दबा कर शरणार्थियों और वंचितों का रुदन गूजने लगा। इस विक्षुब्ध तथा रक्तरंजित स्वदेश भूमि मे कहानीकारों की एक नयी पीढ़ी उभरी। ये थे—समरेश बसु, बिमल कर, रमापद चौधरी, सैयद मुजतफा अली, हरिनारायण चट्टोपाध्याय, प्रभात देव सरकार, शांतिरंजन बंदोपाध्याय, स्वराज बंदोपाध्याय, प्राण तोष घटक, सुधीरजन मुखोपाध्याय, सुशील राय, रंजन, शचींद्र नाथ बंदोपाध्याय, सुलेखा सान्याल, गौर किशोर घोष, आशुतोष मुखोपाध्याय, सर्वप्रिय घोष, आशीष बर्मन, अमिय भूषण मजूमदार, गौरी शंकर भट्टाचार्य, दीपक चौधरी, महाश्वेता देवी और भी अनेक।

इस युग के कहानीकार अपने तुरंत पहले के कहानीकार के सहयात्री रहे क्योंकि इन दो वर्गों के लेखकों को अलग कर नहीं देखा जा सकता। नरेन्द्रनाथ मित्र, नारायण गंगोपाध्याय, संतोषकुमार घोष, समरेश बसु, विमल कर, रमापद चौधरी, नवेन्दु घोष, ननी भौमिक, सुशील जाना, शांति रंजन बंदोपाध्याय, स्वराज बंदोपाध्याय, प्राणतोष घटक, आशुतोष मुखोपाध्याय – इन सभी का जन्म 1916 से 1922 के बीच हुआ था। दूसरे विश्व युद्ध के आरंभ के दौरान जब बंगाल तथा कलकत्ता के जीवन के हर पहलू में आमूल-चूल परिवर्तन हो रहे थे, तभी इन कहानीकारों ने अपने यौवन में कदम रखा। उस दिन से लेकर आज तक ये लोग डटकर लिखते चले आ रहे हैं। 1940 से 1970 के 30 वर्षों के दौरान लिखी गयी इनकी कहानियां समाज तथा व्यक्ति के जीवन के परिवर्तनों की गवाह बन गयी हैं।

इसके बाद के युग में, अर्थात् इस सदी के द्वितीय चरण में हम पाते हैं कि बांग्ला कहानीकारों का साहित्य पहले की अपेक्षा कुछ संकुचित हुआ है। इस अवधि में जो युवा कहानीकार हुए, उनका जन्म 1930 से 1940 के बीच हुआ। वस्तुतः ये नयी धारा के लेखक हैं। सैयद मुस्तफा सिराज, मती नदी, सुनील गंगोपाध्याय, श्यामल गंगोपाध्याय, बरेन गंगोपाध्याय, शीर्षेंदु मुखोपाध्याय, प्रफुल्ल राय, अतीन बंदोपाध्याय, दिव्येन्दु पालित, दीपेन्द्रनाथ बंदोपाध्याय, देवेश राय, संदीपन चट्टोपाध्याय, कविता सिंह, लोकनाथ भट्टाचार्य तथा शंकर इस अवधि के कुछ प्रमुख लेखक हैं।

इस नयी धारा के कहानीकारों का इसके तुरंत पहले के लेखकों के साथ कोई तालमेल नहीं, ये एक नये वर्ग के हैं।

इन लोगों ने पहले का कुछ नहीं देखा। इनकी साहित्यिक वृत्ति इन्हें विरासत में नहीं मिली। इनके साहित्य का जन्म हुआ, ब्लैक आउट, अकाल, दंगे, रक्त-रंजित आजादी के बीच तथा शरणार्थी शिविरों के इर्द-गिर्द। पहले के लेखकों की दृष्टि में ये लेखक एक अलग ब्लड ग्रुप के थे। पहले के लेखकों के साथ इनकी कोई आत्मीयता भी नहीं थी। जिस वातावरण में ये बड़े हुए उसमें संयुक्त जीवन का सौम्य स्तम्भ टूट चुका था, श्रद्धा-भक्ति मानो कोई रटाये गये मात्र रह गये थे। नारी और पुरुष के सम्बन्ध और ही तरह के हो गये, अर्थात् सम्बन्ध के मौलिक तकाजे तो पूर्ववत ही रहे, लेकिन उसमें निहित स्नेह समाप्त हो गया। बैरी विश्व में ये कभी-कभी साथ रहने का ढोंग तो रचाते पर असल में ये लोग पहले से भी अधिक एकाकी तथा निःसंग हो गये थे। अकेले और कुछ न होने पर अकारण ही हमेशा विक्षुब्ध और इन्होंने अपनी इस स्थिति का उपचार ढूंढ़ा विकारों में या मानसिक तनाव में।

पहले के लेखकों ने इन तरुण लेखकों को इसी रूप में देखा है। लगता है इन धाराओं के लेखक अलग-अलग द्वीप हैं। 'कल्लोल युग' के लेखकों तथा दूसरे विश्व युद्ध के लेखकों के बीच आधारभूत अंतर है। इन तरुण लेखकों और द्वितीय विश्व युद्ध के समकालीन लेखकों के बीच मूलतः दृष्टिकोण का अंतर है। 'कल्लोल युग' का रोमांटिकपन बाद के युग में नहीं रहा, पर जीवन में आनंद तथा मूल्यबोध के प्रति श्रद्धा थी। आज के तरुण लेखकों में ये बात भी नहीं है। इस क्षेत्र में अन्तर बहुत ज्यादा है, किसी-किसी क्षेत्र में तो वे शायद उभर ही नहीं सकते।

अंतर सिर्फ मानसिकता का ही नहीं, भाषा तथा शैली का भी है। केवल जीवन दृष्टि में नहीं, जीवन से जुड़ी चीजों, उपकरणों के अभिनव व्यवहार में भी। इससे यह प्रमाणित होता है कि रवींद्रनाथ में ही बांग्ला कहानी को चरम सिद्धि खोजना उचित नहीं होगा।

बांग्ला कहानी बार-बार आगे बढ़ी है, चौराहे पर आकर मुड़ने की घंटी भी बार-बार बजी है, परीक्षण-निरीक्षण में भी कभी मंदी नहीं आयी, जीवन को नये ढंग से देखने का उत्साह कभी खत्म नहीं हुआ। कुछेक निर्दिष्ट शर्तों को मानकर निर्दिष्ट पन्नों की संख्या के बीच निर्दिष्ट संख्या की कहानियों के निर्वाचन के तकाजे से जो संकलन मुझे तैयार करना पड़ा है वह सभी को पसंद आएगा, मैं ऐसी उम्मीद नहीं रखता। पर जहां तरह-तरह की शर्तों और सीमा रेखाओं को मानकर चलना पड़ता है, इसके अलावा और कोई चारा भी नहीं। रवींद्रनाथ और शरतचन्द्र के परवर्ती युग के बांग्ला कहानी के तीन युगों का गल्प संसार इतना वैविध्यपूर्ण और समृद्ध है कि किसी तरह के निर्वाचन से मन पूरा-पूरा भर ही नहीं सकता। इसलिए मेरे लिए पाठकों की सहानुभूति और प्रोत्साहन पर निर्भर रहने के अलावा और कोई उपाय नहीं।

कहानियों के इस संकलन से आधुनिक बांग्ला साहित्य के दो महारथियों की दो कहानियों (विभूति भूषण बंदोपाध्याय का 'आह्वान' और माणिक बंदोपाध्याय का 'नमूना') को आखिरी क्षणों मे हटाना पड़ा क्योंकि करीब साल भर की कोशिशों के बावजूद भी इन लोगों की कृतियों की कापीराइट की समस्या का समाधान नहीं हुआ। आशा है पाठकवर्ग मेरी इस अनिच्छा से हुई त्रुटि के लिए हमें क्षमा करेगा।

अरुण कुमार मुखोपाध्याय

आखिरी बात

ताराशंकर बंदोपाध्याय

लाट भरतपुर, परगना पूर्वी चौक, बड़ी भारी जायदाद है। पेड़ की पत्तियां डगरे की तरह, उसकी डालें सूप की तरह चौड़ी और मिट्टी तो मानो घिसे चंदन की तरह मुलायम -- शरीर पर मली जाय तो शरीर सुख से भर जाता है। फसल के बीज डालने भर की देर है—आंख झपकते ही खेत फसल से लहलहा उठते हैं। इसके अलावा भरतपुर में क्या नहीं मिलता ? "सोने की जायदाद" यह सिर्फ कोई कोरी बोली नहीं है। पहले तो लोग नदी किनारे रेत से सोने के कण खोज भी निकालते थे। सच में यहां मिट्टी के तले सोना है।

प्रजा तो सब की सब बेवकूफ है। खेती कर पेट भर लेती है। मार खाकर हंसती रहती है। कहती है, "तुम क्या हमारे पराए हो ?" पहनावे के नाम पर घुटनों तक छोटी धोती, माथे पर चंदन का तिलक, गले में तुलसी की कंठी, सांवला रंग, इन्हीं सब चीजों से उनकी बेवकूफी सिद्ध हो जाती है। खेती-बाड़ी करती है। मात्र किसान जो ठहरे।

जमींदार की तरफ के लोग-बाग कहा करते हैं—किसान पहले खाता पीता था, खेती किया करता था, तम्बाकू का कश खींचता, पूजा पाठ भी कर लिया करता और सोता था। पर अब वह युग नहीं रहा। कलियुग के चारों पहर पूरे हो चुके हैं। उसी का तो फल है कि इन दिनों उसे अधपेट खाना जुटता है, बीमारी में हांफता है, किसी तरह खेती करता है, कोई-कोई भगवान को बुलाता है, कोई-कोई तो वो भी नहीं। यानि कि कोई रोता है, कोई बैठे बैठे दांत भींचता है।

इन दिनों पद्मा पार के साहू लोग भरतपुर के जमींदार हैं। पहले यहां मंगलकोट के मियां लोगों की जमींदारी थी। साहू लोग उन दिनों यहां व्यापार करने के लिए आये थे। मियां के खानदान में जब घरेलू झगड़ा लगा तब उनके एक रिश्तेदार ने साहू लोगों से कुछ उधार लिया था। जब उधार हजार गुना

बढ़ता जाता है तब बचना मुश्किल हो जाता है। उस पर किसान प्रजा के जो मुखिया थे, उनमें से करीब सभी ने साहू की तरफ ही गवाही दी।

खैर, इन बातों को छोड़ दिया जाय। लेकिन एक बात है। अब तो वे लोग अपने ही गाल पर...। इस बात को भी यहीं छोड़ दिया जाय। पुरानी चीजों को निचोड़ने से कोई फायदा नहीं है। खुल कर कहने पर पोथी बढ़ती जायेगी। सीधे हाल की बात को कहना ही ठीक रहेगा—कि इन दिनों पद्मा पार के साहू लोग आज भरतपुर के जमींदार थे। भरतपुर के गांव के कचहरी, कचहरी में नाएब, बड़ी कचहरी में बड़े नाएब। अपने देश पद्मा पार से लठैतों का दल लाकर साहू लोगों ने यहां पर अपना पक्का इंतजाम कर लिया था। इसके अलावा साहू खानदान के कई रिश्तेदारों ने यहां दुकानें वगैरह खोलकर अच्छा खासा व्यापार फैला रखा था। कइयों ने कल-कारखाने भी बैठा लिए थे। यहां के कुछ लोग अब कारखाने में मजदूरी करते थे। इनमें से भी कोई रोता रहता था और कोई-कोई दांतों तले होंठ दबाता था। खैर, कोई रोए या कोई दांत दबाए—दिन तो बुरे भले ही कट ही रहे थे। कभी जमींदार के कर्मचारियों के साथ पेड़ों की मिल्कियत को लेकर झगड़ा-फसाद, तो कभी जमीन पर दखल पर आपत्ति, तो कभी सिपाहियों की खुराकी— इन सबको लेकर, तो फिर कभी साहू-बनियों से नमक की कीमत, तेल की कीमत, कपड़े की कीमत पर नोक-झोंक, कल कारखाने की मजदूरी को लेकर झगड़ा-फसाद, बाता-बाती, झूठ-झमेले के बीच दिन एक तरह से कट ही रहे थे। कोल्हू के बैल की तरह आंखों पर पट्टी बांधे सींगों को हिला हिलाकर एक ही तरह से चक्कर लगा लगाकर सबों का गुजारा हो ही रहा था। तेल तो निकल ही रहा था। साहू तेल ले लेते और जो बचता, वह बैल खाते।

पर अचानक ही भूकंप में हिलने की तरह सब कुछ एकाएक ही हिल गया। एक भयंकर कांड हो गया। साहू जमींदारों के साथ हल्दीबाड़ी के सांई जमींदारों की, जमीन की सीमा को लेकर फौजदारी का मुकदमा लग गया। बेमौके फौजदारी। न कोई बात, न चीत। कोई नोटिस नहीं, न कोई पत्री। सांइयों के लठैतों ने एकाएक जंगल झाड़ी को तहस-नहस कर, लाठी, गंड़ासे बल्लम लेकर भरतपुर के पास ही लाट-लाट धर्मपुर पर धावा बोल दिया। कचहरी में घुसकर मार-धाड़ खून-खराबा कर अपना दखल जमा लिया। साहू दल भरतपुर की कचहरी में आया। सांइयों के आदमियों के हाल को देखकर भरतपुर के लिए चिंता की बात हो गई। लाठियों में तेल लगा-लगाकर तलवार में सान चमका कर उन्होंने तैयारी की थी। इसमें किसी को शक की गुंजाइश नहीं थी कि वे भरतपुर में घुस कर हंगामा करेंगे। चारों तरफ हल्ला मच गया। भरतपुर की

कचहरी में जोर-शोर से तैयारियां होने लगीं ।

किसानों का दल इस सब से चौंक उठा। दोनों के बीच इस लड़ाई में सांड के पैर के नीचे जंगली घास की तरह उनका हाल था। वे चंचल हो उठे।

बूढ़ा लाल मोहन पांडे भरतपुर के किसानों का पंडा था। छोटे-छोटे कुतरे हुए बाल। दांत सभी झड़ गये थे। आहिस्ते-आहिस्ते बात करता था। मीठा-मधुर मुस्कराता था। चिन्ता में पड़ कर बूढ़ा अपने सर पर हाथ फेरता रहा।

भरतपुर लाट के लोगों ने झुंड में आकर बूढ़े को घेर लिया।

बड़े सम्मान से बूढ़े ने हाथ जोड़े। बिना दांत की हंसी हंसकर, जिस तरह मां की गोद में बच्चा हंसता है, वैसी हंसी हंस कर बोला, "आइए पंच।"

सब बैठ गये। फिर बोले, "एक बात है मालिक ?" बस उसी एक बात में उनका कहना खत्म हो गया। हुजूर भी सब समझ गये।

बूढ़ा सुख में भी हंसता, दुख में भी हंसता, चिंता में भी हंसता। बूढ़ा सोचते हुए मुस्कराने लगा।

गोरपुर के किसी ने कहा, "साहू लोग हमारी जमीन की मिल्कीयत नहीं मान रहे हैं। फिर हम अपनी सुविधा क्यों छोड़ेंगे ? साहू जमींदार है, सांई भी जमींदार हैं—अगर सांई जमीन पर हमारी मिल्कियत मान लें तो हम उनकी तरफ गवाही क्यों न दें हुजूर ?"

बूढ़े ने सर हिलाकर कहा, "नहीं पाप होगा।"

किसी ने कहा, "तो फिर आओ हम लोग भी मिल-जुलकर फौजदारी ठोंक देते हैं।"

बूढ़े ने सर हिलाया—"ऊं—हूं।"

"—क्यों डर लग रहा है क्या ?" एक छोकरा तुनक कर बोल उठा।

बूढ़ा हंसा। उस हंसी के आगे छोकरा दब-सा गया। बूढ़ा हंसकर बोला—"डर की कोई बात नहीं है रे। इससे पाप चढ़ेगा।"

"तो ? तो फिर क्या करने के लिए कहते हो ? किसमें पाप नहीं होता, यही बताओ ?"

"हूं। थोड़ा रुको भाई। मन से पूछूं। मन भगवान से पूछेगा तब न ?"

रतन लाल बोला, "जो कुछ भी हो, झटपट तय कर लो मालिक। जो तुम कहोगे मैं वही करूंगा।"

बूढ़ा हंसा। रतन पर बड़ा भरोसा था बूढ़े को। छोकरा बड़ा भला था और उतना ही हिम्मती।

ठुक् ठुक् करता बूढ़ा कचहरी में आ पहुंचा—"राम राम नाएब जी।"

"कौन, लाल मोहन ? आओ, आओ ।"

"हां, आया सरकार ।"

"कमर कस कर सब के सब जुट जाओ । सांई के बच्चों को मार-मार कर उनका भुरता बना देना पड़ेगा । कतार से उड़ा दो सब को ।"

बूढ़ा हंसा । "क्या कहते हैं नाएब जी ?"

"क्यों ?"

"वही तो । काटने पर तो खून बहेगा । लोग मरेंगे । पाप होगा ।" बूढ़े की आंखों से पानी टपकने लगा ।

बूढ़े के इस ढोंग से नाएब सर से पैर तक जल-भुन गया । फिर भी बड़े मालिक का आदमी ठहरा । इसलिए गुस्सा पी कर भद्र ढंग से बोला, "हूं । समझता हू । उनका खून बहने की बात पर तुम्हारी आंखों में आंसू छलछला रहे हैं । मैं सब समझता हूं ।" इतना कहकर उसने खसखसा कर कुछ लिखा । फिर बोला, "और हमारे लठैतों का खून हो रहा है । वे जख्मी हो रहे हैं । खून की गंगा बह गयी है, उसका क्या होगा—?"

बूढ़े के ओंठ थरथरा उठे । आंखों में दुगुने आंसू भर आये । बोला, "हे भगवान । जब से यह बात सुनी, तभी से तो रो रहा हूं नाएब बाबू । उफ ! हाय, हाय, हाय ! उन लोगों को कितनी चोट आयी होगी, जरा सोचिए तो । यह चोट मानो मेरी ही छाती में आ लगी है ।"

नाएब ने पैनी नजर से बूढ़े की तरफ देखा । सोचने लगा--यह आदमी ढोंगी और पाखंडी है या वाकई में कोई साधु ?

भेड़ के सींग से टकराने पर हीरे की धार भी टूट जाती है, उसी तरह नाएब की इस्पात सी मजबूत तीखी बुद्धि भी बूढ़े की मोटी बुद्धि के दरवाजे पर छेद नहीं कर पा रही थी । काफी देर तक उसकी तरफ देखने के बाद नाएब बोला, "तो फिर ? क्या करना चाहिए यही जरा सुनूं ?"

"मैं यही तो आपको बताना चाहता हूं ।" आंखों में आंसू लिए बूढ़े के ओंठों पर हंसी खिल आयी ।

"क्या कह रहे हो ?"

"कह रहा हूं, आप लोग जमीन पर हमारी मिल्कीयत को मान लीजिए । फिर सारे चौकीदारों और लठैतों को लेकर अलग हो जाइए फिर देखिए, हम लोग सांइयों को कैसे रोकते हैं ।"

"रोक लोगे ? फौजदारी का क्या समझते हो तुम लोग ? खेती करते हो, पेट भरते हो । लाठी पकड़ना भी आता है ? बर्छा चलाना आता है ?"

"बूढ़ा हंस पड़ा ।

"हंसता क्यों है ?"

"आपकी बात सुनकर हंस रहा हूं। लाठी-बर्छी तो हम पकड़ते ही नहीं हैं।"

"तो फिर रोकोगे कैसे ?"

"उनके आने पर हम अपनी पीठ बिछा देंगे। कहेंगे, लो, मारो लाठी। छाती आगे कर देंगे। चलाओ बर्छी हम पर। हमारा खून बहेगा। मिट्टी लाल हो उठेगी। हम मरेंगे। तब उन लोगों को अक्ल आएगी। छाती दुख से टनटनाएगी। आंखों में आंसू भर आएंगे। भगवान उनमें ज्ञान जगाएगा। वे जलाकर लौट जाएंगे।"

नाएब हा-हा कर हंस पड़ा। बोला, "यही है तुम्हारी अक्ल ?"

बूढ़ा ताज्जुब में पड़ गया। वह बिल्कुल भी नहीं सहमा। उसके दंत-विहीन चेहरे पर बचकानी हंसी खिल उठी। बोला, "होता है। ऐसा ही होता है। मेरे मन ने भगवान से पूछा। भगवान सब समझ गये। आप लोगों का दिल भगवान से कुछ नहीं पूछता न। नहीं तो आप भी मेरी बात समझ सकते।"

जैसा देवता, वैसी ही उसकी देवी। बूढ़े की बूढ़ी मानो सनके की सनकी थी। सारी बात सुनकर वह भी चिंता में पड़ गयी। बूढ़े की तरह उसे भी साहू के नाएब के लिए चिंता हो रही थी। "ए बूढ़े, यह तो बिलकुल ही सीधी सी बात है। क्या मालूम वे लोग समझते क्यों नहीं ?"

"यही तो बात है बुढ़िया।"

"अब क्या होगा ? तुम क्या करोगे ?"

"मैं ?" बहुत सोचकर बूढ़ा बोला। "हां बात कुछ तो बनी है।"

"क्या ?"

"मैं मरूंगा।"

"मरोगे ?"

"हां, मैं मरूंगा। अगर मैं मर गया तब उन लोगों के मन में दुख होगा। भगवान उन्हें अकल देंगे। तब हमारी बात वे ठीक-ठीक समझ पाएंगे ?"

बूढ़ी थोड़ी देर तक सोचती रही। सोचकर खुश हो उठी। हंसकर सिर हिलाकर बोली—"तुम ठीक कह रहे हो।"

"ठीक कह रहा हूं न ?" बूढ़े ने हंसकर बुढ़िया की तरफ देखा।

"हां, तुम ऐसा ही करो। मरो। मर कर उन लोगों को समझा दो।"

बाहर से रतनलाल ने पुकारा—"चाचा"

"आ बेटा आ।" बूढ़े लाल मोहन का चेहरा खुशी से भर गया।

रतन लाल हंसता हुआ आकर खड़ा हुआ। बोला, "सब लोग बाहर खड़े हैं

चाचा । क्या तय हुआ ? क्या करना पड़ेगा, बताओ ?" रतन मानो आग की लौ की तरह झुलस रहा था ।

बूढ़ा बाहर आकर हाथ जोड़कर बोला, "नमः पचों ।"

पर हंगामा उससे पहले ही हो गया । साहू बाबुओं के लठैतों, सिपाहियों, सब ने आ घेरा । साहू बाबुओं का सदर-नाएब चारुशील बड़ा जबर्दस्त आदमी था । वो किसी की परवाह नहीं करता था । उसने यहां के नाएब को हुक्म दिया, "उस पागल को पकड़ कर रखो । सिर्फ उस पागल को ही नहीं, रतन लाल, टतन लाल तथा उसके तमाम चेलों-चामुडों को बिलकुल रोक कर रखो ।"

बूढ़ा हंस कर बोला, "चलो ।" फिर रतनलाल तथा बाकी चेलो की तरफ देखकर बोला, "चलो बेटे ।"

बुढ़िया मुंह फाड़ कर हंसकर बोली, "और मैं ?"

साहू का आदमी बोला, "हां, हां, तुम्हारे लिए भी हुक्म हुआ है ।"

बुढ़िया बोली, रुको बच्चे । जरा सा सब्र कर बेटा । बूढ़े की कोपीन, अपने कपड़े और यह लौटा तो ले लूं । इस लोटे से पानी न पीऊं तो मेरी प्यास ही नहीं बुझेगी ।"

बूढ़ा हंसकर सिर हिलाकर बोला, "कुछ भी हो, औरत है न । लोटे का मोह नहीं छूटता ।"

साहू लोगों ने बूढ़े को रोक कर तो रखा, पर आदर से रखा । खातिरदारी में कोई कमी नहीं रखी । बूढ़ा तो आखिर वही बूढ़ा था । बंधनों के बीच भी हंसता रहा । भगवान को पुकारता और सोचता रहता । मन ही मन कहता, "भगवान, मेरे मन को कह दो मैं क्या करूं ? मर जाऊं ? मेरे मरने से ये लोग दुख पाएंगे ? तुम इन्हें ज्ञान दो ।"

बुढ़िया बंद कमरे के बीच ही घुर घुर कर घूमती फिरती रहती । बूढ़े के लिए खाना बनाती । बिस्तर के नाम पर कंबल को झाड़-झूड़ कर बिछाती, लौटा जगमगाकर मांजकर रखती । उसको यह सब कुछ अच्छा ही लग रहा था । बूढ़े को तो वह अपने पास ही पा रही थी । बाहर बूढ़े को हजार काम रहते । उसे क्षण भर की फुर्सत नहीं होती कि वह बूढ़ी से दो बातें भी कर सके । वह केवल भरतपुर की बातें करता, नहीं तो लोगों की बातें करता । आज यहां तो कल वहां । हमेशा लोगों से घिरा रहता ।

इसके कई दिनों के बाद ही बुढ़िया का भ्रम टूटा । बूढ़ा तो आखिर मैं वही बूढ़ा था न । लोगों की भीड़ नहीं थी । पर बूढ़े के माथे में चिंता की भीड़ कम नहीं थी । लोग बाहर से कहते, "बूढ़ा मानो एक चट्टान है ।" बूढ़ी के मन में

होता, बात कोई गलत नहीं है।

वह पुकारती, "ओ बूढ़े।"

"—ऊं।" बूढ़ा बुढ़िया की तरफ देखता। बुढ़िया को लगता, बूढ़ा उसकी तरफ नहीं देख रहा है, उसकी दृष्टि दूर पहाड़ के शिखर पर जो देव मंदिर है, उस मंदिर के शिखर पर उसकी आंखें अटकी हुई हैं।

"क्या सोच रहे हो?"

"सोच रहा हूं?" बूढ़ा हंसता।

"हंसो मत बूढ़े। तुम्हारी यह हंसी मुझे अच्छी नहीं लगती।"

"हूं।" छोटा-सा एक "हूं" कर बूढ़ा चुप हो जाता।

भय और विस्मय से बुढ़िया अवाक हो जाती! मन ही मन बुदबुदाती, "भगवान। बूढ़े को बचाकर रखो।"

अचानक एक दिन बूढ़ा बोला, "मैं मरूंगा।"

बुढ़िया को लगा जैसे उसकी छाती ही फट जाएगी। पर इस बात को तो मुंह से बोलने का उपाय नहीं था क्योंकि बूढ़ा उस पर हंसकर कहता, "छिः।" बुढ़िया उसी शर्म से मर जाती। वह सिर्फ इतना बोली, "क्यों? तुम मरोगे क्यों?"

"मरूंगा। साहू लोगों ने बात फैलायी है कि लोगों से मैंने ही दंगा-फसाद और फौजदारी करने के लिए कहा था। बाहर के लोगों के साथ इन बाबुओं के चौकीदारों और लठैतों की मारपीट हो गयी। हमारे आदमियों ने भी उन लोगों को पीटा है। बहुत नुकसान पहुंचाया है। बाबू लोग कह रहे हैं, यह सब मेरे ही सिखाने पर हुआ है।"

रतनलाल बोला, "इसके लिए तो बाबू के सिपाहियों ने लोगों को बड़ी निर्ममता से पीटा है।"

बूढ़ा सिर हिलाकर हंसा। बोला, "सिर्फ यही बात नहीं है, रतन। हमारे लोगों ने जब मारा, तब भी पाप हुआ। मैं मरूंगा। मर कर भगवान से कहूंगा, भगवान उनके इस पाप को तुम माफ करना। सिर्फ हमारा पाप नहीं, उन लठैतों के पाप को भी तुम क्षमा करना। और...।"

"और क्या चाचा?

बूढ़ा हंसा। बोला, "तो फिर वे समझ जाएंगे कि मैं पापी नहीं हूं।"

बूढ़ा मरण-प्रण कर बैठा। उसने खाना-पीना छोड़ दिया। चुपचाप पड़ा रहता। बुढ़िया की भी सारी बातें मानों खत्म हो चुकी थीं। वह चुपचाप बैठी बैठी देखती रहती। हाय, उसका बूढ़ा कहीं खो गया था। उसकी तरफ एक बार

देखने की भी फुर्सत नहीं थी। रोना तो शर्म की बात थी। बुढ़िया को रोने का भी उपाय नहीं था। दरवाजे के बाहर शोर होने लगा, "भगवान, हमारे मालिक को बचा लो।"

रतनलाल और बाकी सभी चेले उदास हो गये। बुढ़िया और नहीं सह सकी। वह बूढ़े को कुछ कहने की हिम्मत भी नहीं जुटा पाती। वह भगवान को मन ही मन पुकारती। कहती, "मेरे बूढ़े को बचा लो देवता। इतने सारे लोगों की तरफ देखकर दया करो। मेरी तरफ देखो भगवान।" बूढ़ी को लगता, भगवान का मन कम से कम बूढ़े के प्रति नरम है।

बुढ़िया को लगा, भगवान मानों हंस रहे है।

बूढ़ा सचमुच मरा नहीं। मरण के सारे लक्षण दिखाई पड़े। साहू बाबू लोगों ने बड़े-बड़े हकीम भिजवाए। उन्होंने भी कहा, "हमारे बस की बात नहीं है। बिना खाए आदमी जीता नहीं, जी नहीं सकता।" फिर भी बूढ़ा जी गया। गजब का बूढ़ा था। इस हालत में भी हर वक्त उसके होंठों पर बाल-सुलभ-सी हंसी बनी रहती। धीरे-धीरे मरण के सारे लक्षण मिट गये। आंखों का गंदला सा रंग साफ होकर कमल की पंखुड़ियों की तरह खिल गया। चेहरे का रंग निखर उठा। मां की गोद के बच्चे की तरह वह फिर से चमकने लगा। बूढ़ा बोला, "मैं जी गया। ईश्वर ने मेरे मन को समझ लिया। बोले, तेरा कोई पाप नहीं।"

बुढ़िया का चेहरा भी खिल उठा।

वह बोली, "बूढ़े, अब मैं मरूंगी।"

"क्यों री ?"

"मेरी तबियत खराब लग रही है। और...।"

"और क्या ?"

बुढ़िया कुछ बोली नहीं। सिर्फ मुस्करायी।

बुढ़िया सच में मर गयी। जरा सा बुखार हुआ, उसी में गुजर गई। मरते समय एकटक बूढ़े की तरफ देख रही थी।

बूढ़ा पत्थर का बूढ़ा था। लोग झूठ नहीं कहते थ। पर अचानक बूढ़े को लगा, 'लोगों का कहना झूठ था। झूठ था। सच नहीं था। सच कभी हो नहीं सकता था। 'बूढ़े की आंखों में आंसू थे। हां, हां, बूढ़े की आंखों में आंसू थे।

बुढ़िया ने कहा, "बूढ़े।"

बूढ़े की आंखें छलछला रही थीं, फिर भी उसके चेहरे पर मुस्कराहट थी। बोला, "बोल बुढ़िया, क्या कहना चाहती है, बोल।"

"मृत्यु बड़ी सुन्दर है बूढ़े। मौत बड़ी ही आनन्ददायक है।"

बूढ़ा हंसा । उसकी आंखों से आंसू टपटप कर झरने लगे । आंसू की बूंद बूढ़ी के कपोलों पर भी पड़ी । बूढ़े ने वे आंसू पोंछने चाहे । बुढ़िया बोली, "नहीं, रहने दो ।"

वोटर सावित्रीबाला

बनफूल

उसका नाम बड़ा अजीब-सा था, रिपुनाश। उसके बड़े भाई का नाम था तमोनाश। लेकिन काल की चाल ही कुछ ऐसी है कि उनमें से कोई किसी का नाश नहीं कर पाया। बर्बाद किया उन्होंने अपने-आप को। तमोनाश के जीवन में थोड़ी भी रोशनी नहीं घुस पाई। यहां तक कि अ···आ···, क···ख की चौखट भी नहीं लांघ सका। बिल्कुल निरक्षर। ब्राह्मण के लड़के होने के कारण दोनों लड़कों के संस्कृत नामकरण किये गये थे। उनके पिता थे टोल के पंडित, नाम था मोहनाश तर्क तीर्थ। संक्षेप में लोग उन्हें मोहन पंडित कहा करते थे। आजकल के समाज में संस्कृत के पंडितों की वैसे भी कोई कद्र नहीं है। बड़े ही दरिद्र थे वे। कभी-कभी पुरोहित का काम भी कर लिया करते थे। जब उनकी मृत्यु हुई उस समय तमोनाश छः साल का था और रिपुनाश तीन साल का। उनकी मां दूसरों के यहां रसोई बनाने का काम करके गृहस्थी चलाती थी। तमोनाश जब सोलह साल का हुआ, पक्का मस्तान बन गया। सारे दिन मस्ती में काट देता। गुंडों का एक गिरोह भी था। गिरोह में तमोनाश का नाम था 'तमना'। गुंडागर्दी कर तमोनाश कुछ कमा लिया करता था, मां के हाथ में भी कुछ रुपए थमा देता, कुछ मौज मस्ती में उड़ा देता। पर ऐसी मस्ती का जीवन वह ज्यादा दिनों तक चला नहीं पाया। गुंडागर्दी में ही किसी के छुरे से उसने अपनी जान गंवा डाली। उसका शव फुटपाथ पर कुछ देर तक पड़ा रहा, उसके बाद पुलिस की गाड़ी में उसे पोस्टमार्टम के लिए ले जाया गया। डाक्टरों ने उसके मृत शरीर को चीरा-फाड़ा, फिर डोमों के हाथों में सौंप दिया। तमोनाश की मां ने अपने पुत्र के शव का दावा नहीं किया क्योंकि लोग-बाग को इकट्ठा कर शव के दाह-संस्कार को सम्पन्न करने के लिए जितने रुपयों की जरूरत होती है, वो उसके पास नहीं थे।

ऐसे ही चारों तरफ उधार बाकी पड़ा था और उधार बढ़ाने की उसकी इच्छा

नहीं हुई। डोमों ने तमोनाश के शव में से अस्थियों को निकाल लिया और उसे साफ-सफाई कर ऐनाटमी के विद्यार्थियों के हाथों बेच कर कुछ पैसा कमा लिया। तमोनाश के जीवन की कहानी यहीं खत्म हुई। तमोनाश की मां सावित्री बहुत रोई भी नहीं। उसके चेहरे से एक दबी हुई-सी आग झलक उठती थी। उसकी कोई भाषा नहीं थी, वह दिखती भी नहीं थी पर थी बड़ी ही दारुण। जिस घर में सावित्री खाना बनाती थी, वे सज्जन तमोनाश के मरने के बाद उसकी तनख्वाह दो रुपया बढ़ा देने के लिए राजी हो गये पर सावित्री ने ही ना कर दिया। बस छोटा-सा जवाब दिया, इसकी जरूरत नहीं है।

रिपुनाश सड़क पर दिन भर मारा-मारा फिरता रहता। घर में जिनकी जगह नहीं है, सड़क पर घूम-घूम कर जो अपनी जिंदगी गुजार देते है, किसी भी तमाशे, किसी भी मोटर दुर्घटना या सड़कों की भीड़ की तरफ जिनकी नजर बरबस खिचती है, वे ही रिपुनाश के संगी-साथी थे। अपने दल में वह 'रिपुन' नाम से जाना जाता था। रिपुन 'तमना' की तरह मजबूत नहीं था। दुबला-पतला सा चेहरा। बाजार में यों ही घूमता रहता। बोझा ढोकर कभी-कभी कुछ पैसे कमा लेता। बीड़ी पीना सीख लिया था सो रोज एक बंडल बीड़ी पीने के बाद जो पैसे बचते मां के हाथ में लाकर दे देता। दिन इसी तरह बीत रहे थे। रिपुन की उम्र जब सोलह-सत्तरह साल की हुई तब एक रोज एक कांड हुआ। कापी बुकों का एक भारी बंडल लेकर वह किसी मोटरवाले बाबू के मोटर के कैरियर पर जचा कर रख ही रहा था कि उसे लगा उसके गले के अंदर खराश-सी हो रही है, फिर खांसी। मोटरवाले बाबू उसकी मजूरी के बारह आने पैसे देकर आगे बढ़ गये। फुटपाथ पर बैठकर रिपुन खांसने लगा। एकाएक खांसी के साथ जमे खून का एक लच्छा-सा गिरा। रिपुन ने थोड़ी देर तक उस खून की तरफ देखा फिर घर चल पड़ा।

सावित्री रिपुन को साथ लेकर मुहल्ले के डाक्टर के पास गई। डाक्टर ने छाती पीठ सब जांच परख कर बताया, उसे टी०बी० हुई है। डाक्टर ने यह भी कहा, "मुझे इसके लिए कोई फीस नहीं चाहिए पर दवा और सुई तो खरीदनी पड़ेगी। और खाना भी अच्छा खाना पड़ेगा, अंडा, मक्खन, मांस, मछली, फल आदि—।"

सावित्री चुपचाप डाक्टर की तरफ देखती रही। उसके चेहरे की दबी आग की लपट ने शायद डाक्टर के मन को छू लिया। उन्होंने कहा, "अगर तुम्हारे लिए ये सब करना मुश्किल हो तो इसका अस्पताल में भर्ती हो जाना ही ठीक है। तुम्हें एक चिट्ठी दे देता हूं। इसे लेकर अस्पताल में चली जा।"

चिट्ठी हाथ में लिए सात दिनों तक सावित्री अस्पताल की भीड़ में धक्के खाती

रही, पर हुआ गया कुछ नहीं। एक मरीज ने बताया, "यहां भी बिना पैसे कुछ नहीं होता। घूस देनी पड़ेगी।"

यह बात सुनने के बाद रिपुन फिर अस्पताल नहीं गया। इतने रुपए वह लाता भी कहां से! वह बिना इलाज दिन काटता रहा। उसने फिर से सड़क पर माल ढोने का धन्धा शुरू कर दिया। एक दिन उसके एक साथी ने कहा, "देख दिमाग में एक बात आयी है। अगर किसी तरह तू छः महीने अलीपुर जेल में बिता सका तो तेरा टी०बी० ठीक हो जायेगा—।"

"जेल जाने से टी०बी० ठीक हो जायेगा? तू क्या कह रहा है?" पहले तो रिपुन को विश्वास ही नहीं हुआ।

दोस्त ने बताया—"हरू जेल से अच्छा होकर लौटा है। उसको भी टी०बी० की बीमारी लग गई थी। वहाँ बढ़िया अस्पताल है। बिना पैसे इलाज हो जाता है। तू जेल ही चला जा।"

इसके कुछ ही दिनों के बाद रिपुन ट्राम में पाकिट काटते समय रंगे हाथों पकड़ा गया। लोगों ने उसे खूब पीटा और अंत में पुलिस के हवाले कर दिया।

अदालत में जज ने पूछा—"अपने बचाव के लिए वकील कर सकते हो। अगर वकील रखने की तुम्हारी औकात नहीं तो मैं अपनी तरफ से तुम्हें वकील दे सकता हूं।"

रिपुन हाथ जोड़कर बोला—"नहीं हुजूर वकील की कोई जरूरत नहीं। पुलिस जो कुछ कह रही है, सच कह रही है। चोरी करने के इरादे से ही मैंने उन सज्जन की पाकिट में हाथ डाला था।"

जज ने राय दी—"पचास रुपए जुर्माना, उसकी अदायगी न होने पर एक महीने की जेल।"

रिपुन हाथ जोड़ कर बोला, "धर्मावतार, रुपया मैं नहीं दे सकता लेकिन मुझे एक महीने की नहीं, आप छः महीने की जेल की सजा दे दीजिए।"

यह सुनकर जज भी हैरान रह गया। बोले, "तुम छः महीने की जेल की सजा क्यों चाह रहे हो?"

"मुझे टी०बी० हो गयी है सुना है। अलीपुर के जेल में टी०बी० का अच्छा ईलाज होता है। छः महीने में रोग ठीक हो जाता है।"

जज ने अपनी राय नहीं बदली। जेल के अस्पताल में रोग ठीक नहीं हुआ। रिपुन खांसते-खांसते एक महीने के बाद ही हवालात से बाहर आ गया। इसके बाद भी वह एक महीना और जिंदा रहा।

एक दिन आधी रात गये रिपुन खांसते-खांसते बिस्तर पर उठ बैठा। मां के पैरों पर खून की उल्टियां कर वह इस लोक को छोड़ चला।

सावित्री सन्न-सी बैठी रही। उसकी आंखों से आग की गर्मी भभक रही थी। उसने एक बूंद भी आंसू नहीं टपकाया।

इसके दो महीनों के बाद चुनाव का मौसम आया। सावित्री भी इस चुनाव की एक वोटर थी। उसके घर में एक गण मान्य उम्मीदवार आ पहुंचे।

सावित्री उसकी तरफ आग टपकती हुई नजर से बोली, "आपको वोट दूं? क्या उपकार किया है आपने हमारा? जब आप गद्दी पर थे, उस समय मेरे विद्वान पति एक मामूली भिखारी की मौत मरे। मेरे बड़े लड़के को हम पढ़ा लिखा नहीं पाये, आखिरकार वह गुंडागर्दी में छुरे से मारा गया। छोटा लड़का टी०बी० से मरा, उसका ईलाज तक नहीं हो सका। हर जगह सबको घूस चाहिए, मैं आपको वोट क्यों दूंगी? जाइये, मैं किसी को वोट नहीं दूंगी—।"

उम्मीदवार सज्जन ने कहना चाहा, "लेकिन देखिए गणतंत्र में...।"

पर सावित्री ने उन्हे अंत तक बोलने नहीं दिया। वह बीच में ही चिल्ला पड़ी, "निकल जाइए मेरे घर से—।"

वे सज्जन झटपट बाहर निकल गये। सावित्री ने धड़ाम् से दरवाजा बंद कर लिया।

जहाजी

अचिंत्य कुमार सेनगुप्त

नासिम को मां ने पीटा था। मां पीटती थी पीटे, पर वह क्यों पीटेगा ? वह कौन होता है ?

गाय, बछड़ा रखूं या नहीं, खेती करूं या नहीं, इससे उसे क्या ? जमीन बर्बाद हो जाये तो हो जाये, इससे उसे क्यों सरदर्द हो रहा है ? घर की छावनी, फुहार बदलने की जरूरत है या नहीं, यह हम खुद समझेंगे। और भीगना पड़े तो हम मां-बेटे दोनों भीगेंगे। अपने सर पर छाता लेकर उसे खड़ा रहने के लिए तो नहीं कहूंगा।

नहीं, गोलबानू ने कहा—अब से देखभाल गहरअली करेगा।

—कौन गहरअली ? नासिम ने तुनक कर कहा।

—बहुत बड़ा आदमी है। पांच कट्टे जमीन का मालिक है। दरवाजे पर कचहरी है। कई एक मुकदमे भी दायर हो गये हैं।

—उससे हम लोगों का क्या ?

—उसे पकड़ने से जमीन जायदाद ठीक-ठाक रहेगी। खाने-पीने का कष्ट नहीं रहेगा। फुहार के बदले कोरोगेट टीन की छावनी बनेगी।

—मुझे नहीं चाहिए यह सब कुछ, हम लोगों का यह टूटा हुआ घर ही अच्छा है। हम जैसा-तैसा खा कर रह लेंगे। तू उसे भगा दे।

बड़ी मार मारी गहरअली ने। उसमें गोलबानू ने भी साथ दिया।

अब्बा जान यदि आज जिंदा होते तो इस तरह से उसे कोई नहीं मार सकता था। खेत पर जाने के लिए भी कोई जो जबरदस्ती नहीं करता। वह अपना जाल लेकर तालाब में मछली पकड़ने निकल पड़ता। अब्बा जान कहा करते—तुझे बाजार में एक कटपीस की दुकान खोल दूंगा।

नासिम कहा करता—इससे तो अच्छा होगा कि तुम मुझे एक नाव खरीद दो। दरिया का पानी मुझे जमीन से ज्यादा अच्छा लगता है।

नाव खरीद कर देने की हिम्मत अब्बा जान में नहीं थी। नासिम उतना बडा भी नहीं था कि किराये की नाव लेकर खट कर कमा सकता। उसका वह मछली पकड़ने का जाल भी कब का फट चुका था। फिर भी उसका मन उस तरफ दौड़ता रहता। वह नदी किनारे चुपचाप घंटों बैठा रहता। उसके गालों पर आंसू टपक पड़ते।

उसने सुना था, उसकी मां गहरअली से निकाह करने वाली थी। एक ही घर का आदमी बन कर रहेगा वह। फिर नासिम की जगह कहां होगी? बरामदे में या पीछे के दरवाजे पर। लोग जब मां से पूछेंगे, यह कौन है? तब मां कहेगी—यह मेरे पहले आदमी का बच्चा है। नासिम से जब कोई पूछेगा—तू किसका भात खाता है? नासिम कहेगा—मैं गहरअली का भात खाता हू। नासिम की छाती जलती रही।

करीब एक मील दूर, जूट के खेत के पास, ब्राचलाइन का एक स्टीमर रुकता था। जेटी या फ्लैट नहीं था। स्टीमर को किनारे से लगाकर, उसे बादाम के पेड़ की जड़ के साथ बांधा जाता था। किनारे पर दो सीढ़ियां बिछायी जातीं। सीढ़ियों के दोनों तरफ से बांस की लग्गी पकड़ कर दो खलासी खड़े रहते। यात्री उतरते-चढ़ते रहते। बादाम के गाछ के नीचे छोटा सा टीन का बक्सा लेकर घाट सरकार टिकट बेचा करता। जो लोग उतरते, उनसे टिकट लेता। जो चकमा देकर चढ़ गये, उनसे मौका निकाल कर बातें कर लेता, उसके बाद जहाज बाबू के साथ बातचीत करने के लिए स्टीमर पर चढ़ जाता, हिसाब-किताब करने।

घाट सरकार के उतरने से पहले सीढ़ी हटायी नहीं जाती। एक सीढ़ी उठा लेने पर भी दूसरी रखी ही रहती। घाट सरकार को लग्गी की जरूरत नहीं पड़ती।

गांव की जमीन नीची थी। हर समय पानी जमा रहता। सिर्फ पेड़ का ही तना थोड़ा सूखा सा था। यात्री पानी मे ही चल कर गांव का रास्ता पकड़ते। हाथ से धकेल कर चलाने वाली एक डोंगी भी थी। माल वाल रहने पर उसकी जरूरत पड़ती। बच्चे तो कंधे पर या गोद में ही पार हो जाते। बीबी अगर छोटी-सी हो तो उसे गोद में उठाकर लोग पार हो जाते।

सीढ़ी उठा। दुतल्ले से जहाजी ने हुक्म दिया।

घाट सरकार अभी तक उतरा नहीं है क्या? नहीं। अभी तो उतर कर गया। आखिरी सीढ़ी भी हटा ली गयी. हड़हड़ाकर मोटे से सांकल में बंधा लंगर ऊपर की तरफ उठ आया।

एक आदमी जल्दबाजी में नहीं उतर सका है क्या? अरे। वह आदमी कहां है? दस बारह साल का एक लड़का है। पैसेंजर है क्या? कौन जाने? जहाज देखने के लिए उठ आया होगा किसी समय। अगले घाट पर पाता काटा में उतर

जाने के लिए कहना। पड़ती शाम में नदी की भाटा तरतराकर एक माल्ला माझी का नाव चल पड़ेगा। अंधेरा छा जायेगा तो वह घर किस तरह पहुंचेगा ? वेचारा। ना जाने मां-बाप पर क्या बीत रही होगी ?

छोटा-सा स्टीमर था। ऊपरी डेक पर सिर्फ तीसरा दर्जा ही था। सामने की तरफ प्रथम श्रेणी के नाम पर दो कबूतर के घोंसलेनुमा कमरे थे और उसी के सामने के खुले कोने में जहाज का व्हील था। नासिम सीधे वहीं पहुंच गया।

पहले तो लोगों ने देखकर भी उसकी अनदेखी कर दी थी, सोचा, जहाज़ के कलपुर्जे देखने के लिए चढ़ आया होगा। पर यह लड़का तो यहां से हिलने का नाम ही नहीं ले रहा था।

क्या चाहिए ? सिर पर किश्ती टोपी डाल कर हुक्का पी रहे जहाजी ने गर्दन को टेढ़ा कर पूछा।

—हुजूर को अगर नौकर चाहिए तो मुझे रख सकते हैं।

—तेरा देश कहां है ? जहाजी थोड़ी देर तक नासिम को देखता रहा।

—यहीं पर है हुजूर। कनकदिया नाम है।

—मां बाप हैं ?

जी, मेरा कोई नहीं है।

जहाजी थोड़ी देर और भी उसे देखता रहा। पूछा—काम-काज कुछ कर सकता है।

—क्या क्या काम है हुजूर ?

—यही, खाना-वाना पकाना, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, पोंछा लगाना। कर सकेगा तो काम पर लग जा। मुफ्त में कोई छोकरा मिल जाये तो बुरा क्या है ? जहाजी ने व्हील पर बैठे ईयाद अली से आंख मिलाई। कम से कम हुक्का तो भर सकेगा ! जरूरत पड़ी तो हाथ-पैर भी दबा देगा।

ईयादअली बोला—तनख्वाह कुछ नहीं मिलेगी।

—नहीं हुजूर। मुझे पैसे नहीं चाहिए।

जहाज में जगह मिल गयी। नासिम के लिए यही उम्मीद से अधिक था। बाप नहीं, चाचा नहीं, मालिक नहीं, फालतू में कहां न कहां के एक आदमी की मार जो खानी नहीं पड़ेगी—उसके लिए यही बहुत था। उसने सोच लिया, वह अनजाने के खिचाव में बहेगा, दिशाहीन बन कर। यही तो सबसे बड़ा सुख भी था।

जहाजी अपनी सफेद पतली दाड़ी में हाथ फेरते हुए बुदबुदाया—अच्छी तरह कामकाज करने पर इसी जहाज पर बहाल भी कर दूंगा। कौन कह सकता है, आज बिना पैसे का नौकर कल इस ज़हाज का जमींदार ही बन जायेगा।

लेकिन पहले ही दिन रात को नासिम जहाजी के हाथों से पिट गया। उससे एक कांच का बर्तन असावधानी से टूट गया था। बस, फिर क्या था, न कुछ कहना न सुनना। मुंह पर, गर्दन पर, पीठ पर, थप्पड़ पर थप्पड़, पड़ते रहे। नासिम फूट-फूट कर रो पड़ा। जहाजी बोला—ज्यादा गोलमाल करने पर हाथ पैर बांध कर काले पानी में फेंक दूंगा।

चोट से भी अधिक नासिम को ताज्जुब हुआ था। पर इसमें ताज्जुब होने की कोई बात नहीं थी। यही यहां का रिवाज था। जहाजी के हाथों सभी को मार खानी पड़ती थी। जो लोग सीढ़ियां हटाते, जो लोग लंगर डालने के काम में जुटे रहते या रस्सी बांधने के काम में, जो लोग रात में बिजली घुमाते, उन लोगों के काम में जरा सी भी गलती होती तो मार पड़ जाती। नीचे मिस्त्रियों का इलाका था। उसी के आसपास कोयले वाले, आग वाले, इंजन वाले काम करते रहते। पर पूरा अधिकार तथा शासन का भार जहाजी के हाथों में ही होता। किसी से कोई गलती हुई, किसी मशीन को घुमाते समय अगर किसी ने दूसरी मशीन घुमा दी, डंडे को खींचते समय दूसरा डंडा खींच लिया तो जहाजी के हाथों उसकी खैर नहीं। लात भी पड़ती। जात बेजात की गालियां देता, जूतों से पीटता और उससे भी चैन नहीं मिलता तो बर्खास्त कर देता।

और ऐसा वह करेगा क्यों नहीं? कंपनी सिर्फ जहाजी को ही तो जानती पहचानती थी। जहाज का वह जिला मजिस्ट्रेट था। सारी जिम्मेदारी उसी की थी। नदी में चलते समय अगर जहाज किसी नाव को डुबो दे तो उसका हर्जाना जहाजी साहब को ही भरना पड़ता था। आंधी तूफान में यदि स्टीमर डूब जाये तो उसका जिम्मेदार कौन होगा? कम्पनी का साहब नहीं। चालू जहाज की सारी जिम्मेदारी जहाजी साहब के हाथों में थी। और आंधी और तूफान में यदि स्टीमर को किनारे लगा सकता तो उसका पुरस्कार भी जहाजी साहब को ही मिलता। मिस्त्री और खलासी चाहे कितनी ही दौड़-धूप करें, चिल्लाचिल्ली कर लें, चाहे कितने ही फायदे और उस्तादी से काम करें, उन्हें रुपए की एक कतरन भी नसीब नहीं होती थी। सारे तमगे जहाजी साहब के गले में लटकते रहते।

अचानक क्या हुआ?

स्टीमर रेतीली जगह में अटक गयी थी। कुहासे में ठीक से ठौर नहीं लगा था। स्टीमर का चक्का मिट्टी में फंस गया था। जल्दी उठाये जाने की उम्मीद कम थी। बंदरगाह में खबर भेजना जरूरी हो गया। आज कम से कम सात-आठ घंटों की देर होने वाली थी। बीच में घाटों पर जो यात्री स्टीमर की उम्मीद लगाये बैठे थे, वे सारी रात धुआं देखेंगे और सीटी की आवाज सुनेंगे।

दोष किसका था ? गलती सुखानी की थी । दोष सेकंड मेट का था । लंबे-चौड़े जवान मर्द को मारने में मजा नहीं आता— जहाजी को अपने ही हाथों में चोट लगती । पर ये बच के जायेंगे कहां ? वह इस महीने की तनख्वाह ही नहीं देगा । उनको अपनी खुराक अपने पैसों से ही खरीदनी पड़ेगी ।

जहाजी इस जहाज का आखिर पूरा मालिक था । हर तरह का खर्च, छोटे से पेंच से लेकर बड़ी मरम्मत का काम, खलासी मिस्त्रियों की तनख्वाह मिलाकर सारा का सारा थोक रुपया कम्पनी जहाजी के हाथों में ही देती थी । उसके बाद वह कैसे क्या इंतजाम करेगा, यह देखना जहाजी का काम था । वह अपनी मर्जी से चाहे जिसे पूरी तनख्वाह देता और चाहे जिस पर जुर्माना कर देता था, अपनी मर्जी से किसी की खुराक के पैसे काट लेता तो किसी को नौकरी से निकाल देता । उसके खिलाफ न तो कोई शिकायत ही कर सकता था और न ही उसके फैसले के विरुद्ध फैसला । स्टीमर के अंदर के शासन को लेकर कम्पनी अपना सिर नहीं खपाती थी । कम्पनी को सिर्फ यही देखना था कि उसका स्टीमर एक घाट से दूसरे घाट तक माल और लोगों को पहुंचाकर उसे कितना मुनाफा पहुंचा सकता था ।

इसलिए पूरा स्टीमर जहाजी के इशारों पर चलता था । सारे कर्मचारी उसकी चमचागिरी किया करते थे । स्टीमर का जहाजी क्या था, मानो लाट साहबी की हुकूमत पा गया था ।

रोने से कोई फायदा नहीं । बगल से मकबूल ने कहा । ऐसी मार तो बहुत बार खानी पड़ेगी । मार खाते खाते ही तो तरक्की मिलेगी ।

मकबूल भी शुरू शुरू में नौकर के रूप में जहाज में घुसा था । खाना बनाने के काम पर नहीं, धोबी मोची का काम करने के लिए । तीन साल बाद उसे सीढ़ी मिली थी, उसके बाद जहाज और किनारे के बीच में पाट लगाने का काम, उसके बाद रस्सी का काम । बिना मार खाये जहाज में कोई उन्नति नहीं हो सकती थी ।

साहब की कृपा दृष्टि न हुई तो कुछ नहीं होने का । दस-बारह साल के बाद अगर साहब को दया आयी तो वह सर्टीफिकेट देता । फिर उस सर्टिफिकेट के जोर पर कोई जहाजी की परीक्षा में बैठ सकता था । बड़े ठाठ से जहाज के तीसरे मेट अफसरउद्दीन ने ये बातें कहीं । और वह सर्टीफिकेट न मिला तो सब व्यर्थ है । इसलिए भारी हाथों से जहाजी के पैरों में तेल लगाओ । फिर पास होकर निकल आने पर एक बार जहाजी बन जाओ, फिर किसकी परवाह उस समय फिर जमींदार और तहसील दार सब बराबर हैं ।

—नहीं भई नहीं । इसमें भी राज है । चटगांव के आदमियों पर जहाजी की

ममता कुछ अधिक ही है। बायलर का खलासी विलायत अली धीमी आवाज में बोला। जहाजी का अपना गांव चटगांव है न? कहता भी है चटगांव को छोड़कर जहाजी कहां मिलते हैं? कहावत भी तो है—जहाजी, सूखी मछली और दरगाह इन तीनों को लेकर है चटगांव। धान, डकैत और खालयानि नहर इन तीनों को लेकर है बारिसाल। जहाजी बनना कोई डकैती करने का काम तो है नहीं।

—तेरा घर कहां है रे छोकरे? सब ने एक साथ पूछा। नासिम ने उदास होकर कहा—इस देश में ही है। सुनकर सबके चेहरे उदास पड़ गये।

दूसरे दिन अब्दुल को बेहद मार पड़ी। पानी नापते समय उसने लोहे की एक छड़ खो दी थी। जहाजी जब किसी को मारता, उसे कोई छुड़ाने की हिम्मत नहीं करता। यह रोज का मामला था। सबको इसकी आदत सी पड़ गयी थी। फिर भी आंखों में आंसू की धार बह जाती। नदी के पानी में आंख धोते-धोते अब्दुल ने कहा—तनख्वाह से छड़ की कीमत और उसका ब्याज तो काट ही लेगा, ऊपर से मार-मार कर जख्मी कर दिया।

फिर भी इन सबको लेकर कोई प्रतिवाद नहीं होता, न ही विद्रोह। अपने बचाव में कोई दो शब्द भी नहीं कह सकता था। मार को रोक सके, इसलिए अपने हाड़-मांस को भी मजबूत नहीं बना सकता था। नासिम सोचता, ये लोग सभी शायद उसी की तरह मरे हुए मां-बाप के निराश्रित बेटे होंगे। पर ऐसी बात नहीं थी। सभी लोग सीढ़ी से शुरू होकर जहाजी के बंबे पर पहुंचना चाहते थे। सभी को जहाजी का सर्टीफिकेट चाहिए था। मार अगर सहेंगे नहीं, तो सर्टीफिकेट देने के लिए जहाजी का हाथ कलम क्यों पकड़ेगा?

इसलिए उस दिन पानी निकालते समय, मकबूल के साथ मजाक करते समय नासिम के हाथ से जब बाल्टी छूट गयी और उसके लिए उसे मार पड़ी तो उसे मार खाने में शर्म नहीं आयी। उसे अपमान का बोध भी नहीं हुआ। उस दिन उसने मकबूल के साथ, सारे खलासियों के साथ एक होने का अनुभव किया। मकबूल ने रोते हुए ही कहा—तुझे क्या? तेरी तो तनख्वाह नहीं। सिर्फ मार खाकर रह गया। पर मेरी तो पूरी तनख्वाह बाल्टी के बदले में कट जायेगी। और महीना लगने पर कहेगा, तनख्वाह एडवांस ले ले। रुपए में दो आने का ब्याज देना होगा। जहाज में बैठकर महाजनी का कारोबार करता है यह जहाजी। हम लोगों का भला चाहने वाला यहां कोई नहीं है। इतना कहकर मकबूल ऊपर की तरफ देखने लगा मानों ऊपर वाला इस दुखी जीव की फरियाद सुन रहा हो।

नासिम ने पूछा—तू दूसरे किसी जहाज में नहीं जा सकता?

—किस चक्कर में है तू? एक जहाज छोड़ने पर दूसरे जहाज पर जगह मिलेगी?

यहां सभी जहाजियों के बीच साठ-गांठ रहती है। तभी तो मार खाकर भी मुंह बंद किए पड़ा रहता हूं। एक बार अगर बर्खास्त हो गया तो बर्बाद हो जाऊंगा। पानी को छोड़कर हल पकड़ना पड़ेगा।

बगल से ईयादअली ने कहा—और तू किस जहाज में जायेगा ? सभी जहाजों का रिवाज तो एक-सा है।

ऐसे चाहे तो कोई भाग नहीं सकता ? नासिम ने पूछा।

सभी हंस पड़े। सीढ़ी से बंबे तक चढ़ने की साधना में जिन लोगों ने जहाज की नौकरी पकड़ी थी, उनके लिए ये बातें बेबुनियाद थीं।

भाग जाना कोई आसान काम नहीं है, नासिम। सेकेंड मेट ने गंभीर चेहरा बनाकर कहा।

तेरा नाम और पता साहब की नोटबुक में लिखा हुआ है। जैसे ही तू भागेगा, पुलिस को खबर दी जायेगी। कहा जायेगा जेब काट कर, पैसों का बेग लेकर, घड़ी चुराकर भाग गया है। जहाजी की तरफ से कम्पनी लड़ेगी। और फिर तू था जहाज में, रहेगा जेल में।

तो क्या नासिम के दिन इसी तरह कटेंगे ? इसी तरह एक सुर से पानी की आवाज सुन-सुन कर। तनख्वाह नहीं। रहने, सोने की जगह नहीं, इसी तरह दिन रात पानी में बहेगा वह ?

साहब को खुश रखने की कोशिश कर। इसके अलावा दूसरा कोई चारा नहीं। देख न। एक बार अगर सीढ़ी पकड़ सका तो—उसे समझ में नहीं आया कि वह जहाजी को कैसे खुश रख सकता था। उसके जिम्मे जो काम था, वह उसे करता, उसके अलावा वह साहब के हाथ-पैर दबा देता, गुसलखाने में जाने के पहले तेल मालिश कर देता, बालों को सहला देता। खाना पकाते समय सुखानी थोड़ी मदद कर देता, इसीलिए उसके हाड़-मांस अब तक जुड़े थे। फिर भी उसका मन नहीं लगता था। तनख्वाह भी कुछ नहीं थी। जुर्माने के तौर पर कुछ काट न सकने पर जहाजी को बड़ा अफसोस था। इसीलिए नासिम को कभी-कभी उपवास करना पड़ता था। उस दिन जहाजी मिर्च और प्याज का खर्च बचा लेता था। जहाज के कर्मचारियों को चावल, नमक, मिर्च, प्याज जहाजी देता था। बाकी अपनी-अपनी मर्जी के मुताबिक खाते। तेल, मसाले, मछली, सब्जी का खर्च सब के अपने जिम्मे था। महीने के अंत में तनख्वाह में से सबको उनके हिस्से का चावल, नमक, प्याज मिर्च का खर्च जहाजी काट लिया करता था। वह भी जहाजी अपनी मर्जी माफिक ही करता था।

एक काम कर। जहाजी के यहां चोरी कर ले। किसी ने फुसफुसाकर कहा।

इस स्टीमर के साथ बीच-बीच में एक बहुत बड़ा थैला बंधा रहता। उसमें

चावल, नमक और मिर्च लदा रहता। थैले के साथ आदमी रहते।

नहीं। नासीम को कुछ नहीं अच्छा लगता। उसे कोई उम्मीद भी नहीं थी। एक दिन छोड़कर हर दूसरे दिन स्टीमर एक ही रास्ते से होकर गुजरता रहता। जहां शाम को पहुंचना होता, वहां पहुंचने में आधी रात हो जाती। कभी दूसरे दिन सुबह। बस इतनी सी ही विधिक्ता थी। नहीं तो एक सुर से पानी की आवाज, यात्रियों की भीड़, लंगर और मस्तूल उठाते उतारते समय की हड़-हड़, सीढ़ी और रस्सी खींचते समय का चिल्लाना। नासिम को कुछ भी अच्छा नहीं लगता। कई दिनों के बाद घूमता हुआ एक दिन स्टीमर कनकदिया लौटा। नदी इतनी छोटी थी, उसकी धार इतनी कमजोर कि नासिम सोच भी नहीं सकता था। पहले उसे लगता, यह नदी न मालूम किस समुद्र में जा मिलती है—इस देश से दूर किस देश में।

नासिम एकांत के अंधेरे मे, नदी की तरफ ताकता हुआ चुपचाप अकेला बैठा था। घने काले पानी में तारे झिलमिला रहे थे। आज आधी रात स्टीमर कनकदिया पहुंचा था। नसीम को अपना घर याद आ गया। वह सोच रहा था, कहां है उसका घर-दुआर। उसका कोई घर नहीं था—वहां भूतों का अखाड़ा बन गया था। उसे सारी बातें याद आ रही थीं। मां की याद आ रही थी। उसने सोचा, उसकी कोई मां नहीं। उसकी मां तो बहुत पहले मर चुकी थी। मां के मरे हुए चेहरे के तरह ही थी वह काले पानी की चांदनी।

वह कोई बड़ी चोरी न कर सके, पर छोटी-मोटी चोरी तो कर ही सकता था। गांव का छोकरा कटारी हाथ में लिए नारियल बेच रहा था। जहाजी के लिए दस पैसे के नासमि ने दो नारियल खरीदे। जहाज पर पहुंच कर जब सीढ़ी हटा ली गयी, नासिम ने जहाजी से इकन्नी लेकर किनारे पर फेंकी। और छः पैसे फेंके।

नासिम ने जीभ निकाल कर उसका मजाक उड़ाया। नारियल बेचने वाले लड़के ने नदी से कीचड़ उठा कर नासिम की तरफ फेंका। जहाज तब तक छूट चुका था। कीचड़ के छींटे नासम्मि पर पड़े नहीं। जहाजी और नासिम दोनों एक साथ हंसने लगे।

इसी तरह मछली बेचने के लिए कोई आया। नासिम ने चतुराई से उसमें से थोड़ा सा उड़ा लिया। दूध बेचने वाला दूध हंडिया में लाया। नासिम ने उसे कहा, बांस के गिलास में नाप कर देगा और पैसे भी जहाज में जाकर देगा। वह भी उसने इसी तरह रख लिए। सबको वह एक ही बात कहता। सोचो मत, तुम्हारे पैसे कहीं नहीं जाते, मैं जहाजी साहब का नौकर हूं। इस तरह चलाकी का काम नासिम करने लगा था। इतने दिनों में नासिम को एक फतुआ मिला था और एक गमछा। लुंगी न जाने कब मिलेगी। एक दिन नासिम ने जहाजी से चार पैसे मांगे।

ऐसी हिम्मत की बात जहाजी ने जिंदगी में पहली बार सुनी थी। आंखें सर पर चढ़ाकर जहाजी बोला—क्या कहा, पैसे ?

ऐसी भी क्या हराम की बात कही थी नासिम ने ? डरी हुई आंखों से नासिम ने जहाजी की तरफ देखा।

क्या करेगा पैसे लेकर ?

चाय पीऊंगा एक प्याला।

नासिम का बस इतना कहना भर था कि जबर्दस्त एक थप्पड़ पड़ा उसके गालों पर। छिटककर नासिम दूर जा गिरा। जहाजी गरज उठा—बदतमीज, मुझसे बीड़ी मांगता है। बीड़ी खरीदेगा। कभी यह भी सुनूंगा कि बोतल खरीदेगा। ज्यादा बदतमीजी की तो नदी के गहरे पानी में डुबो दूंगा।

आंसुओं से धुल कर नासिम को फिर मां की याद आ गयी। उसके मर जाने पर मां का चेहरा कैसा लगेगा – अंधेरे में पानी की तरफ देखकर वह यही सोच रहा था। मां के मरे हुए चेहरे की बात सोच-सोच कर उसके मन में हिम्मत आयी। इतनी मार वह इसी ताकत पर बर्दाश्त कर पाया। 'मां' कहकर चिल्ला चिल्ला कर अगर वह रो न सके तो चुपचाप सहने के सिवा उसके पास और कौन सा उपाय था !

इतना अत्याचार होने पर भी कोई गुट नहीं बन पाता था। खुदा को छोड़कर और किसी से किसी की कोई शिकायत नही थी। जहाज की उस खोली से भी मुक्ति नहीं थी। कब सीढ़ी मिलेगी, कब पाट, रस्सी, लंगर, बिजली व मिस्त्री का इलाका, इसी आस में लोग दिन गिनते रहते। कौन किस तरह जहाजी का मन जीत सकेगा, ब्याज देकर हो या घूस देकर, चोरी से या मार खाकर, सब इसी चेष्टा में जुटे थे। जहाजी साहब अच्छी सरकार चला रहा था।

उसी रात नासिम ने किसी यात्री का एक जोड़ी जूता चुरा लिया। जहाजी ने उन जूतों को सीधे पानी में पहुंचा दिया। कहा—तेरी बुद्धि की बलिहारी जाऊं। मैं जूता पहन कर ठाठ से घूमूं और पुलिस मुझे पकड़ ले।

इसके दूसरे दिन नासिम ने टीन का एक सूटकेस चुराया। उसे भी जहाजी ने नदी में फेंक दिया। उस सूटकेस में मुकदमे के कागज़ पत्तर, परचे, दाखिलानामा और कुछ जरूरी कागज के नकल आदि थे।

नासिम किसी भी तरह जहाजी के मन का नही हो पा रहा। पर जहाजी की नजर नासिम के कानों में मानो रह रहकर कह रही थी, 'तू सकेगा'। तू मेरे मन का बन सकेगा। उसकी नालायकी पर गुस्सा खाने पर भी जहाजी ने इन दिनों उसे जब तब पीटना छोड़ दिया था, इसी बात पर नासिम आशा बांधे रहा।

जहाज की रोशनी में तेज नहीं था। बारिश को रोकने के लिए तिरपाल नहीं

था। औरत-मर्द के कमरे अलग नहीं थे। फिर भी सबकी आंखों में नींद थी। ऐसा कोई यात्री नहीं था जो ताश खेल सकता था या गाना गा सकता था या फिर हंसी-मजाक या गपशप कर सकता था। किसान-मजदूरों का इलाका था। बाढ़ की धारा की तरह जो लोग काम करते हैं, वे मांसपिंड की तरह नींद में बदहवास पड़े रहते हैं।

नींद की असावधानी में किसी की कमर से पैसों का थैला बाहर निकल आया था। नासिम ने अपने हाथ की सफाई से आहिस्ते से उस थैले को उठा लिया। एक बार सोचा गिनकर देख ले कि उसमें कितने पैसे हैं। एक बार उसके मन में आया, अगले स्टेशन पर उतर कर भाग जाये, पर क्या मालूम किस आकर्षण में मंत्रमुग्ध होकर वह जहाजी के पास ही खिंचता चला आया। जिस तरह शेर के मुंह में बकरा आ पड़ता है। जो आदमी सिर्फ मारना ही जानता था, हंसकर दो बातें नहीं करता था, हक का एक पैसा तक नहीं देता, उसे ही खुश करने के लिए नासिम व्याकुल हो उठा। फिर क्या था ? जो आदमी हर वक्त एक आदमी से दूसरे आदमी की शिकायत सुनता रहता, एक से दूसरे को अलग रखता था, उसी का मन जीतने के लिए छीना-झपटी शुरू हो गई। कौन किसका पत्ता काटे, उसी की प्रतियोगिता चलती थी।

मकबूल ने कहा—सिर्फ सात रुपए साढ़े नौ आने। इससे क्या बनेगा। दो बीस और सात अगर न हुए तो खेल पूरा नहीं होता, अपने साहब का तो यही कहना है।

फिर भी कपड़े लत्ते से तो नकदी ही ठीक है। सबसे अच्छा होता यदि जेवर, सोना, चांदी मिलता। उसकी तो कोई कीमत भी है। कागज के रुपए उसके आगे रद्दी हैं, फालतू हैं।

इतने दिनों में नासिम को एक लुंगी मिली थी। एक हाफ कमीज भी। पर किसान मजदूरों की बीवियों के पास गहने कहां से आयेंगे ? ज्यादा से ज्यादा नाक में लौंग, अंगूठी, पैरों में बिछुए, हाथों में कांच की चूड़ियां। सोना कहां से आयेगा।

नहीं। वो भी है। नयी बहू ससुराल जा रही थी। गले में सोने की हंसुली, हाथों में चूड़ियां, पैरों में चांदी के पायजेब, उंगलियों में गुजरी। फालसे के रंग की साड़ी पहने घूंघट डाले वह किसी कोने में सोयी पड़ी थी। बाराती लोग इधर-उधर छितराये थे। कौन किधर था, पहचानना मुश्किल था। जहाज में आज बड़ी भीड़ थी। लेकिन नासिम इसी भरी भीड़ में मौके की तलाश में लगा रहा।

आखिर नासिम नयी बहू के गले में हाथ रखने में सफल हो गया। उसे बड़ा नरम-नरम सा लगा। नासिम की उंगली कांपी थी। उसने हंसुली को जोर लगाकर खींचा।

"चोर" ! "चोर" !

भीड़ से टकराकर नासिम भाग पाता, उससे पहले ही यात्रियों ने उसे पकड़ लिया। उसके बाद सब ने मिलकर उसे पीटा। बड़ी मार पड़ी थी उसे। जो भी आकर पूछता, क्या हुआ है, दूसरे ही क्षण वह हाथ चला देता। चोर माल को लेकर भाग नहीं सका था। माल बिस्तर के पास ही फेंक कर भागा था। पर उससे क्या होता है ? औरत के शरीर पर हाथ जो लगाया था। हार तो उतारा था न गले से। मारो ! मारो ! चंदे के तौर पर मारो साले को।

बाबूजी . . . नासिम चिल्लाकर रो पड़ा।

अचकन पहने, किस्ती टोपी सिर पर डाले, चप्पल फटफटाकर जहाजी हाजिर हुआ। पूछा—क्या बात है ? क्यों मार रहे हैं मेरे लड़के को ?

लड़का ? सभी हक्के बक्के रह गये। जहाजी साहब का लड़का। किसी ने कहा—हमें तो यही मालूम था कि यह आपका नौकर है ?

नौकर। झूठ है। वह मेरी शादी के घर का बेटा है। मेरी मां की खोयी हुई संतान है उसे किसने मारा है ?

—उसने नयी दुल्हन के गहने चुराए हैं। गले से हंसुली उतारी है।

—झूठ है। यह हो ही नहीं सकता। चलो, मैं खुद जाकर बीवी से पूछता हूं। जहाजी नयी दुल्हन के पास जाकर खड़ा हुआ। पूछा—आपके गले से किसी ने हार उतारा था ?

परदे से मुंह ढक कर बीवी धीमी आवाज में बोली—नहीं। नींद की बेहोशी में गले से हंसुली खुल कर बिस्तर में गिर गयी थी।

लताबाड़ी स्टेशन नजदीक ही कहीं दिख रहा था। बारातियों को यहीं उतारना था। जहाज की गति धीमी हो गयी। लंगर हड़हड़ाकर नीचे उतर आया। पेड़ के साथ स्टीमर की रस्सी को कस कर बांधा गया।

सीढ़ी लगा, सीढ़ी लगा। जहाजी ऊपर से चिल्ला उठा। नासिम कहां है ? नासिम को बुलाओ। आज सीढ़ी वह पकड़ेगा।

खलासियों के बीच हुल्लड़ मच गया। इतने दिनों में ही नासिम की दीक्षा हो गयी। इतने कम समय में। चोरी करते समय पकड़े जाने पर तो उसकी किस्मत खुल गयी। और जो लोग पकड़े नहीं गये, वे गोते खा रहे हैं। सीढ़ी से पाट तक आने की भी तरक्की नहीं मिल रही थी। और यह आज सीढ़ी, कल पाट, बाद में सीधे जहाजी, जहाज का खुदा।

—पकड़। पकड़। वह अभी बच्चा है। अकेला कैसे सीढ़ी पकड़ सकेगा ? तुम लोग सब लोग मिलकर उसकी मदद करो। जहाजी ने तेज आवाज में हुक्म जारी किया।

सर्च लाइट की रोशनी में नासिम की गीली आंखें चमक उठीं। नयी दुल्हन लताबाड़ी उतर जायेगी। पैरों की पायजेब बजाकर वह चली जा रही थी।

रोशनी दूर-दूर तक बिखर गयी थी। पेड़ पौधों के पत्तों टहनियों पर। सीढ़ी लगाकर नासिम लग्गी पकड़े हुए था। दुल्हन से कह रहा था—संभल कर चलियेगा नहीं तो गिर पड़ेंगी। लग्गी पकड़िये।

नयी दुल्हन बिना लग्गी पकड़े ही आराम से चल रही थी। तभी पीछे से नासिम को किसी ने धक्का मारा। चौंककर उसने देखा, यह वही आदमी था, जिसने उसे सबसे अधिक मारा था। रोशनी में अब नासिम ने पहचाना, यह तो गहरअली था।

रोशनी से मुँह छुपा लिया था गोलबानू ने। घूंघट नीचे तक खींच लिया था। चादर को बुर्के की तरह पूरे शरीर में लपेट लिया था।

दूसरे के साथ मिल-मिलाकर नासिम एक के बाद एक सीढ़ी उठाने लगा। किनारे के मटमैले पानी की छाया में उसने अपनी मरी हुई मां के चेहरे को देखा। उसके ऊपर खड़ा जहाजी उसे खुली आवाज में शाबाशी दे रहा था। उसकी सफेद अचकन और सफेद दाढ़ी हवा में उड़ रही थी। जो सूरज को, दिन और रात को बनाता है, जहाजी ठीक उसी की तरह था।

रानी पसंद

अन्नदाशंकर राय

बड़े दिनों की प्रतीक्षा के बाद लौंच मिला। दौरे के कई काम अब भी बाकी रह गए थे। साल बीतने के पहले इन्स्पेक्शन का काम पूरा होना ही चाहिए। दोनों तरफ नदी के किनारे दीख रहे थे। सामने जोगिया मिट्टी वाले इलाके के पहाड़ों की कतार। कर्णफूली नदी पर लौंच चलने पर न जाने कितना रोमांटिक लगेगा। साथ में मैंने कागज़ कलम भी ले लिया था। काफी समय के बाद कविता लिखूंगा। मेरा सहयात्री सिर्फ वह लौंच था। नाम खारंग। साथ में सुखानी और उसके साथी और मेरा चपरासी जो खानसामे का काम भी करता था। उन लोगों को कड़ा हुक्म था कि कोई मेरे पास न आये।

डेक वाली कुर्सी पर बैठ कर मैं लंगर का गिराना देख रहा था कि हांफते-दौड़ते दारोगा साहब मेरे पास आये। हाथ में एक चिट्ठी थी—मामला क्या है? फिर कहां क्या हुआ? वे लोग क्या मुझे स्टेशन से बाहर कहीं जाने ही नहीं देंगे? चिट्ठी खोलकर देखा, ऐसी कोई बात नहीं है। कलकत्ते से कोई ऊंचा पुलिस कर्मचारी आया था। उन्हें भी राऊजान जाना था। अगर वे मेरे साथ जायें तो मुझे क्या कोई आपत्ति होगी? वही बात चिट्ठी में लिखी थी। नहीं तो उन्हें चटगांव में ख्वामखाह एक दिन बर्बाद करना पड़ेगा। पुलिस का लौंच कल तक लौटने वाला था।

असुविधा तो मुझे होती ही। पर लिखकर यह बात कही जा सकती थी? बस, कविता मैं लिख चुका। मैंने मन ही मन उसे गाली दी और दाँत निकाल कर हँसकर कहा—वह तो मेरा अहोभाग्य है।

दारोगा एड़ी से एड़ी ठोक कर लंबी सलाम मार कर चला गया। मैं लेटा-लेटा सोचता रहा, अगर मना कर देता तो ऐसी क्या बदतमीजी होती? ऐसा भी क्या जरूरी काम है कि लौंच के लिए एक दिन रुकने पर बिना पूरी होने वाली हानि हो जायेगी?

शिष्टाचार में खान बहादुर बेजोड़ थे। क्या कहकर वे अपना आभार प्रकट करते, इसके लिए बांग्ला भाषा में उन्हें शब्द ही नहीं मिले। उन्होंने अंग्रेजी और उर्दू का सहारा लिया। खान बहादुर पंजाबी मुसलमान थे। उम्र में काफी बड़े थे। मूंछ दाढ़ी रखते नहीं थे, इसलिए उम्र कुछ कम ही दिखती थी। खुशमिजाज दरियादिल किस्म के आदमी थे। इतने समय में ही वे जान चुके थे कि मैं एक साहित्यिक हूं। बोले—आप से परिचय करने की इच्छा बड़े दिनों से थी। पर परिचय इस तरह से होगा, वह कौन जानता था। सच में, मेरी जरा-सी भी इच्छा नहीं थी कि मैं आपके एकांत में बाधा डालूं। मैं तो एक दिन और रुकना चाहता था। पर एस०पी० साहब ने मुझे जबरदस्ती ठेल दिया आपके साथ जाने के लिए। खैर—पहले बताइये, आपने वो खबर सुनी है?

मैंने थोड़ा हैरान होकर कहा—नहीं तो। कौन सी खबर?

—खबर तो बहुत बुरी है। फिर वह सज्जन मेरे कानों के पास अपना मुंह लाकर बोले—नहीं तो साहब, ट्रंक कॉल पाकर मैं क्या यों ही कलकत्ते से दौड़ा आया हूं। अरे छिः छिः। शेम फुल। बेशर्म।

मैं बुरी तरह उत्सुक हो उठा। पर मुझे मालूम था, बात खान बहादुर खुद ही बतायेंगे। मैंने ऐसा दिखाया मानो दूसरों की बुराई सुनने में मुझे जरा भी रुचि नहीं।

—आप ठहरे साहित्यिक, बात-बात में आप लोग कहा करते हैं, सत्यम्, शिवम, सुंदरम्। पर पैंतालीस साल का मेरा अनुभव बताता है कि, जो सत्य है वह सुंदर नहीं। जो सुंदर है वह शिव नहीं। अगर मैं किसी दिन कोई किताब लिखूंगा तो मैं क्या लिखूंगा—सुनियेगा? लिखूंगा, खूबसूरत लड़कियां अक्सर बुरी होती हैं। इतना कहकर खान बहादुर ठहाका मार कर हंसने लगे। मैं भी हंस पड़ा। पर फिर तुरंत बोला—हमारे बंगाल के लिए आप ऐसा नहीं कह सकते।

उस सज्जन ने व्यंग से कहा—नहीं। बंगाल में नहीं। अरे भई, बंगाल में ही काम करते-करते बाल सफेद हो गये और वह जो राऊजान जा रहा हूं—।

—राऊजान?

—हां, राऊजान जा रहा हूं। क्या राऊजान बंगाल के बाहर है? धीरे-धीरे गपशप का हमारा सिलसिला जम गया। मैंने अपने खानसामे को बुलाया। उन्होंने कहा—नहीं दादा नहीं। आप मेरे मेहमान है।

मैं कैसे उनका मेहमान बना? लौंच तो तकरीबन मेरा ही है। पर मेरी बात सुनता ही कौन था? शाम की चाय का आर्डर उन्होंने ही दिया। लौंच तब तक सदरघाट छोड़ चुका था।

पासपास डेक की कुर्सी पर, पहाड़ की ओर मुंह फेर कर हम लोग जम कर

बैठ गये। खान बहादुर कहने लगे—वह जैसा-तैसा आदमी नहीं था दादा। एक पूरे सर्कल का इंसपेक्टर। कभी मैं उसका एस०पी० था। उसके काम की मैं तारीफ करता था, दिमाग का फिरा हुआ नहीं, कवि भी नहीं—माफ कीजियेगा मैं बेअदब हो रहा हूं। अच्छा आदमी था, चरित्र का भला, सुनाम था उनका। ऐसा आदमी नौकरी का मोह, बेटे-बेटियों को छोड़कर— बीबी नहीं थी, नहीं तो और भी अफसोस की बात होती। वह एक दिन एकाएक गायब हो गया।

—गायब हो गया ? मैं चौंक उठा।

—और क्या कह रहा हूं ? खान बहादुर ने रेशमी रूमाल से आंखों और चेहरे को साफ किया। बोले—गया तो था वह खून के मामले की छानबीन करने। पर जानते हैं वो बदतमीज लड़की बेहद बदमाश निकली। रंगून से ब्याह लाया था। जिस आदमी का खून हुआ, मैं उसकी बात बता रहा हूं। ऐसी सुंदर कि सुनते हैं कि पूरे बर्मा में वैसी नहीं थी। एक सौत है उसकी, यह बात मालूम होते ही उसने खसम के गले में छुरा भौंक दिया।

मैं चौकन्ना होकर सुन रहा था। ऐसी घटना तो मैंने नहीं सुनी थी।

—खैर, मैं जो कह रहा था। वो गया तो था खून के मामले की छानबीन करने। छानबीन तो दारोगा ने की थी, पर वह लड़की बंगला नहीं समझती थी। इसलिए इंसपेक्टर को भी जाना पड़ा। वह मामला ही उसका काल साबित हुआ। एक-एक कर कई दिन निकल गये, पर मामले की जांच खत्म नहीं हुई। आखिरी अध्याय में देखा गया कि मुजरिम भी फरार, अफसर भी फरार। हा. हा. हा.। हंसने की बात नहीं। नारी हरण के मामलों में मैंने कभी किसी को माफ नहीं किया। मैंने थोड़ा गरम होकर कहा—इतने दिनों से आप लोगों ने किया क्या है ? उसे गिरफ्तार क्यों नहीं किया। वह तो सिर्फ आपके डिपार्टमैंट की बात नहीं थी। कचहरी का मामला था।

खान बहादुर थोड़ा कड़ा होकर बोले—कचहरी का मामला है या नहीं, प्रश्न तो वही है। लड़की विधवा थी। इसलिए बहलावे में आ गयी—यह बात तो जमेगी नहीं। लड़की बालिग थी, इसलिए उसे चुरा कर ले भागा था, वह शिकायत भी नहीं टिकेगी। आप किस धारा के तहत उन्हें मुजरिम ठहरायेंगे ? जरा सुनूं तो सही !

मैं निरुत्तर रह गया। खान बहादुर एक तिरछी हंसी हंस कर बोले—अगर उन लोगों ने शादी कर ली तो ? नहीं भैया इतना आसान नहीं है। आप नौकरी से बर्खास्त कर सकते हैं। कलकत्ते के पुलिस के दफ्तर से उसकी व्यवस्था हो जायेगी। पर मुर्दे पर भी वार करने के लिए आपको पहले कानून पढ़ना पड़ेगा।

बात वाकई सच भी है। बड़ी सी मछली छिप से फिसल जाने जैसा कष्ट हुआ

मुझे। पर खान बहादुर ने इसके लिए बुरा नहीं माना। बोले—मैंने सुना है कि चटगांव के किसी पहाड़ी इलाके में वे लोग छुपे हुए हैं। वहां से पैदल का रास्ता पकड़ कर वे सीधे बर्मा चले जायेंगे। उसके बाद उस सुंदरी की कृपा कब तक उन पर बरसेगी, वह कौन बता सकता है। इसलिए सुंदर चेहरा देखते ही मैं दूर से ही सलाम ठोकता हूं।

कानून की किताब मेरे पास इस वक्त थी नहीं, इसलिए मैं बुलंदी से वह नहीं कह पा रहा था कि मुजरिम को फरार होने में अगर कोई मदद करता है तो कानून उसे भी सजा दे सकता है।

मेरा मन बोझिल हो रहा था, यह जानकर खान बहादुर बोले—ऐसा समय आ पडा है। शायद आप सोचते होंगे कि पुलिस का आदमी होने के नाते पुलिस के आदमी के लिए मेरे मन में हमदर्दी है, पर असलियत यह नहीं है। एक मर्द होने के नाते मैं मर्द का हमदर्द हूं। असल में उस लड़की ने ही नर-हरण किया है।

वह बात सुनकर मेरे अंदर जो फेमिनिस्ट था, उसने आपत्ति उठाई। उसने कहा—जिसमें जरा भी शालीनता है वह कभी नारी को दोषी नहीं ठहराता। पुरुष ही हमेशा से दोषी रहा है। पर किसी मामले में किसी का नहीं, दोष नियति का होता है।

—हां, हां। यह बात सही है। दोष नियति का है। खान बहादुर खुश होकर बोले।—ठीक उसी तरह की नियति का एक खेल मैंने अपनी जवानी में देखा था। घटना मेरे ही एक दोस्त के जीवन में घटी थी। मेरा वह दोस्त हिंदू था। आप शायद कहेंगे, यह क्या बात हुई? हिंदू कब से मुसलमान का दोस्त बना? पर आज से बीस साल पहले आज की तरह गंदी आबोहवा नहीं थी। महायुद्ध के बाद हम दो दोस्तों ने फौज से निकल कर जब पुलिस की नौकरी की थी, उस समय कौन हिंदू और कौन मुसलमान? अहा। वे दिन अब फिर नहीं लौटेंगे।

उनकी आवाज में अपनत्व था। यादों की सीढ़ियाँ पकड़कर वे बीस साल पहले के दिनों में लौट गये। वहां संचित मदिरा थी। अनमना-सा होकर बोले—घटना कितनी पुरानी है मुझे भी याद नहीं। एकाएक याद आ गयी। अब तो साफ-साफ दिख रहा है। सारा कुछ आंखों के सामने साकार हो उठा है।

मैंने उनकी तरफ देखा। यही वह खान बहादुर थे क्या? लग रहा था एक नौजवान अधसोया कोई सपना देख रहा हो। सनसना कर हवा चल रही थी और हवा को ठेलता लौंच बढ़ता चला जा रहा था। पानी को दो हिस्सों में चीरते हुए। तरंगें पीछे छूट रही थीं। खान बहादुर कहने लगे—

मेहरबान सिंह राजपूत घराने का था। मेरे पूर्वज भी राजपूत थे।

कोई कुछ भी कहे, खून का खिचाव कुछ और ही है। राजपूतों के बीच मुझे जितना अपनापन लगता था, इस देश के मुसलमानों के बीच उतना नहीं, परंतु हिंदू धर्म में मेरा विश्वास नहीं। धर्म के मामले में मैं कट्टर मुसलमान हूं। उन दिनों यह जो सारंग है, चपरासी, खानसामा मेरा अपना आदमी था। और मेहरबान सिंह मेरा दोस्त।

लेकिन उसके जैसा दोस्त उन दिनों मेरा और कोई नहीं था। रोज हम लोगों की मुलाकात होती थी। और वह मुलाकातें, गपशप और दिवास्वप्न देखने में गुजर जाती थीं। खेलने का शौक दोनों को ही था। शिकार का भी शौक था। उन दिनों आज की तरह सिनेमा का प्रचलन नहीं था। हम जहां नौकरी करते थे, वहां कभी-कभार कुछ दिनों के लिए सिनेमा लाया जाता। हम खूब सिनेमा देखते थे। तमाशा देखने भी जाया करते। पर दूसरे अफसरों की तरह कोठे पर मुजरा सुनने नहीं जाते थे। दोनों थोड़े धार्मिक किस्म के व्यक्ति थे। उसकी शादी की बात चल रही थी और मेरी बीवी उन दिनों अपनी मां के वहां गयी हुई थी। उसे पढ़ी-लिखी लड़की चाहिए थी, और उन दिनों लड़कियों को पढ़ाने का रिवाज नहीं था।

अब हुआ यह कि पंजाब के उस शहर के छावनी वाले इलाके में एक बड़े ठेकेदार रहा करते थे। लाखों की जायदाद थी उनकी। जब हम उस शहर में गये, तब उनका देहांत हो चुका था। उनकी जायदाद का आधा हिस्सा उनकी बड़ी पत्नी को मिला और बाकी का आधा हिस्सा छोटी पत्नी को। बड़ी पत्नी पूजापाठ लिये पड़ी रहती थी और छोटी विलास, आमोद-प्रमोद में दिन गुजारती। दोनों के ही बच्चे नहीं थे। दोनों अपने-अपने महलों में रहती थीं। दोनों के अपने-अपने नौकर-चाकर थे, गाड़ी-वाड़ी थी। दोनों का बिलकुल अलग बंदोबस्त था। उन्हें लोग बड़ी रानी, छोटी रानी कहकर संबोधित किया करते थे क्योंकि उनके पति को राजा का खिताब मिला था।

जब हम लोग वहां पहुंचे तो लोगों से सुना, सूरजभान जितनी खूबसूरत थी, वैसी सुंदरता कभी किसी ने देखी नहीं थी। पर खूबसूरत होने से क्या होता है, उसके चालचलन अच्छे नहीं थे। वह पर्दा भी नहीं मानती थी। क्लब में जाती थी। साहबों के साथ नाचती थी। स्टेशन पर जितने अफसर काम करते थे, सबको बुलाकर पार्टी देती थी। किसी ने उसे एक साड़ी दुबारा पहने नहीं देखा। दो-पांच सौ तो उसके पास जूतियों की जोड़ी ही थीं। वह बदन में मलाई लगाती और दूध से भरे हौज में नहाती थी। बाद में वही दूध बाजार में बिकता। शहर में चर्चा थी कि उसकी नेक नजर जिस पर पड़ी, उसकी हर इच्छा पूरी की जाती थी। चाहे वह कोई भी हो, इसका कोई विचार नहीं था।

वह धन नहीं चाहती थी, उपहार नहीं मांगती थी, सिर्फ उसे पसंद आना चाहिए। और उसे कोई पसंद आ जाये, यह कोई आसान बात नहीं थी।

नौकरी पकड़ने के बाद मेरे नाम से भी सूरजभान का निमंत्रण पत्र आया। मेहरबान से पूछने पर पता चला कि उसके नाम से भी पत्र आया है। गार्डन पार्टी थी। पर मेहरबान ने कहा वह नहीं जायेगा। पूछने पर बोला—ऐसी औरत से मैं मेलजोल नहीं बढ़ाना चाहता।

मैंने मजाक में कहा—एक तरह का आम है जिसका नाम है रानीपसंद। तुम्हें रानीपसंद होना अच्छा नहीं लगता?

—मैं कोई आम तो हूं नहीं। मेरा भी कोई आत्म-सम्मान है। युग-युग से पसंद पुरुषों ने ही किया है। पसंद का अधिकार पुरुषों का है। यहां तो मामला उल्टा है। सूरजभान अपनी आंखों से मुझे परखेगी और चाहे तो मुझे नापसंद भी कर देगी। कहते-कहते मेहरबान का खून गरम हो उठा।

—क्यों ? मैंने पूछा—स्वयंवर प्रथा तो राजपूतों की ही है।

—हां। पर स्वयंवर में जिसे पसंद नही किया जाता था, वे लड़कर छीन लेते थे। और आप किससे किसकी तुलना कर रहे है ? कहां किसी राजकुमारी का स्वयंवर और कहां किसी विलासिता की लीला मृगया।

इस बात को लेकर मेहरबान को मैंने ज्यादा परेशान नहीं किया। मैं अकेला ही पार्टी में चला गया।

हां। मान लिया। सूरजभान खूबसूरत थी। कैसे उसका वर्णन करूं ? मैं आपकी तरह कोई कवि नही। पर अंधेरी रात में आतिशबाजी होने पर आसमान जिस तरह सफेद हो उठता है, तरह-तरह के रंग बिखेरता है—क्षण भर के लिए देखने वाला भूल जाता है कि जो कुछ देख रहा है वह केवल बारूद और गंधक का खेल है, उसी तरह भरी भीड़ के मेले में सूरजभान का उदय हुआ। हर व्यक्ति थोड़ा सचेत हो उठा। दर्पण होता तो वे शायद तुरंत उसमें अपना मुखड़ा देखने लगते। क्या मालूम वही मुखड़ा रानीपसंद बन जाये।

उसके बाद से जब-जब निमंत्रण मिलता, मैं चला जाता। रानी पसंद होने के लिए नही। यों ही आतिशबाजी का खेल देखने के लिए। पर मैं मेहरबान को लेकर मुश्किल में पड़ जाता।

वह न जा ही पाता था और न ही बिना गये रह पाता और न ही बदली करवा कर भाग सकता था। उसका स्वाभिमान उसे जाने से रोकता था। उसका कौतुहल उसे रहने नहीं देता, और उसका कर्तव्य उसे भागने नहीं देता। मैं समझ रहा था कि वह छटपटा रहा है। मैंने उससे कहा, तुम छुट्टी लेकर घर हो आओ। शादी कर लो। वह चुपचाप सुनता रहा। जवाब नहीं दिया।

एक दिन सूरजभान ने मुझसे पूछा—अच्छा। मेहरबान सिंह तो आपके दोस्त हैं न ? वे क्यों नहीं आते ? आप उन्हें नहीं ला सकते ?

मैंने किसी तरह बात टाल दी। सच बात बता भी कैसे सकता था? हमेशा सच बोलना चाहिए, यह बात पाठ्य-पुस्तकों में ही शोभती है। वहां से लौट कर मैंने मेहरबान को सारी बातें खुल कर बतायीं। पूरी बात सुनकर मेहरबान विचलित-सा हो उठा। खुश होना चाहिए था या गुस्सा कुछ समझ नहीं पाया। मुझे अकेला छोड़ कहीं घूमने निकल पड़ा।

अगली बार सूरजभान की पार्टी में क्या देखता हूं—मेहरबान वहां मौजूद है। मैंने उसके साथ सूरजभान का परिचय करा दिया। दर्पण कहां से लाता ! रहता तो उसे लाकर देता। पर उसकी जरूरत नहीं पड़ी। सूरजभान की आंखें ही दर्पण थीं। उन सुंदर काले नयनों में मेहरबान ने अपने लजीले मुखड़े को देखा। दो-एक मूहूर्त के बीच कितनी बड़ी घटना घट गई यह मेरे अलावा किसी को पता नहीं चला।

मेहरबान को मैं चिढ़ाना चाहता था, पर हिम्मत नहीं पड़ी। उसके चेहरे को देखकर मैं घबरा गया। अब वह मशीन की तरह काम करने लगा। ड्यूटी पर जाता रहा सम्मान के साथ। मेरे साथ यारी में भी कमी नहीं थी, फिर भी अंदर ही अंदर वह बदलता जा रहा था। मैंने भी सोच लिया कि अगर अपनी तरफ से वह मुझे कुछ कहेगा तो मैं सुनूंगा, पर अपनी ओर से कुछ नहीं कहूंगा।

मैं समझ रहा था कि किसी के लिए उसका सारा तन-मन व्याकुल हुआ पड़ा है। पर यह कहने पर वह मानेगा नहीं। कहेगा कुछ और ही। कहेगा—उससे मुझे घृणा है। उसका सारा शरीर दूषित है। उसका साथ दूषित है। वह एक वेश्या के अलावा और क्या है ? रुपया नहीं लेती, यही तो फर्क है ? अगर मुझे इच्छा हुई तो मैं सीधा किसी कोठे पर चला जाऊंगा। वहां मेरी पसंद चलेगी। कीमत चुकाकर मैं आनंद उठाऊंगा। किस दुख से मैं सूरजभान के दरवाजे पर जाऊंगा। ऐसा करने पर तो वही मुझे पसंद करेगी, मुझे भोगेगी। मैं क्या 'रानीपसंद' हूं ?

इस तरह के कितने ही भाषण मैं दिन पर दिन सुनता रहा। उसके अंदर अंतर्द्वंद चल रहा था। उसे शांति नहीं मिल रही थी। पर मेरे सामने वह कबूल नहीं कर रहा था कि मन ही मन वह आकर्षित हुआ है। मैं ने भी सब कुछ समझते हुए कभी नहीं बताया कि मुझे कुछ मालूम है। मैं यही कहता रहा—कोई तुम्हें वहां बुलाने के लिए खुशामद तो कर नहीं रहा है। तुम्हारे वहां नहीं जाने से कोई बुरा भी नहीं मानेगा। सूरजभान जिस तरह सबको बुलाती है, तुम्हें भी बुलाती है। कौन उसे पसंद है, कौन नहीं, इसका वह इश्तहार तो

लगाती नहीं। वह सब तो इशारे से तय हो जाता है। आधी रात किसी खास जगह पर उसकी गाड़ी आकर रुकती है, किसी एक को उठाकर गाड़ी ओझल हो जाती है, शायद ही कोई ध्यान भी देता है। फिर उसे किसी और जगह छोड़ दिया जाता है।

—पाजी, बदमाश औरत। मेहरबान लालपीला होकर गाली देने लगा—डाकू कहीं की। 'हैवान औरत' इस तरह की कितनी ही खराब गालियां उसने दीं।

मैंने उसका खंडन किया। कहा—उसने तुम्हारा तो कोई नुकसान नहीं किया। तुम क्यों गंदी गालियां दे रहे हो। वह कौन सी सभ्यता है?

कई दिनों के बाद मेहरबान बोला—उस दिन तुम कह रहे थे न कि सब जगह-वगह ठीक हो जाती है। बाजार में एक पतली सी किताब मिलती है. उसमें इस प्रकार के अभिसार की बात कही गई है।

मैंने कहा—तुम्हें उसकी क्या जरूरत? तुम तो नहीं जा रहे हो। जा रहे हो क्या?

उसने मुझे पसंद नहीं किया। पर मेहरबान पर उसने कोई जादू-टोना कर दिया था। वशीकरण नाम की कोई विधा है, पहले मुझे यकीन नहीं था, पर बाद में विश्वास में बदल गया। मेहरबान मेरे बगल वाले मकान में रहता था। मैं उसके चाल-चलन पर नजर रखता था। रात दस बजे निकल कर वह रात गये घर लौटता था, उतरा हुआ चेहरा, पागलों जैसी दृष्टि। बातचीत में कोई तारतम्य नहीं। ऊल-जलूल कुछ कहता रहता था। उसकी जबान के अश्लील शब्द ही कुछ-कुछ मेरी समझ में आते थे। टोकरी भर-भर कर गंदी गालियां देता। गिनती में दिनों दिन उनकी संख्या बढ़ती रहती।

मन करता था उसके घर पर खबर दे कर किसी बड़े-बूढ़े को बुलाऊं। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं था। जो घटना चाहिए वह अभी घटा नहीं था। उसके बुरे ख्याल एक दिन में मिट सकते थे। अगर किसी सुंदर सी लड़की से उसकी शादी कर दी जाय। फिर स्यालकोट से लाहौर या अमृतसर, कहीं भी बदली हो जाने पर सूरजभान का ख्याल आतिशबाजी की तरह बुझ जाने वाला था। पर मेहरबान के बुजुर्गों को सूचित करूं, इसकी मुझे हिम्मत नहीं पड़ी। अगर वह नाराज हो जाय। वैसे तो वह ठंडे मिजाज का आदमी था पर गुस्सा आने पर उसे कोई होश नहीं रहता।

इसके बाद सूरजभान के यहां जो पार्टी हुई, मैं उसमें गया था। मेहरबान सिंह भी गया था। उस दिन मिलन-स्थल तय हो गया।

कई दिनों के बाद एक दिन मैं परेड के लिए कपड़े बदल रहा था कि मेहरबान सिंह ने आकर बाधा पहुंचाई। उसकी आंखों में, चेहरे पर विजय की चमक थी।

फिर भी उदासीन होने का ढोंग कर वह बोला—मैं तो मर गया रे।

मैंने भांप लिया कि इसका अर्थ क्या हो सकता था। फिर भी एकाएक सुनकर मैं भी घबरा गया। पूछा—क्यों क्या हुआ है ?

मेहरबान उदास आवाज में बोला—मैं रानी-पसंद बन गया हूं।

—अच्छा। मैंने गंभीरता से कहा—काम तो अच्छा नहीं किया। मैं तो तभी समझ गया था जब तुम परेड से गायब रहने लगे। ऐसा करने पर नौकरी नहीं बचा पाओगे।

उसने लंबी सांस ली। बोला—मैं असहाय हो गया हूं। मेरी नियति मुझे कहां घसीट कर ले जा रही है, नहीं मालूम। तुम तो मेरे दोस्त हो। तुम मुझे कोई सलाह दे सकते हो ?

—कैसी सलाह ? उसके प्रति सहानुभूति से मेरा दिल भर आया।

कांपते हुए उसने कहा—मैं कीमत चुकाना चाहता हूं यार। अगर नहीं दे सका तो मैं उसका बंदा बन जाऊंगा। मेरी इज्जत नहीं रह जायेगी।

मैंने सोचकर बताया—पर उसे कमी किस बात की है कि तुमसे वह रुपए लेगी? और उपहार के तौर पर अगर तुम पचास रुपए की चीज़ दोगे तो वह पांच हजार का उपहार लौटा देगी।

—मैं लाख रुपयों का तोहफा दूंगा। वह बड़ी तेजी से बोला—पर लाख रुपया कहां से लाऊंगा। किस खजाने में हाथ डालूं? दफ्तर का खजाना लूटने से कैसा रहेगा।

उसकी बात सुनकर मुझे आतंक हुआ। उसी दिन उसके घर वालों को काट-छांट कर एक चिट्ठी लिख दी। उस पर भी नजर-निगरानी रखी कि कहीं चोरी-वोरी न कर बैठे। परेड से गैरहाजिर रहने के लिए वह डाक्टर के पास चला गया था। मैंने डाक्टर को जाकर कहा—उसे अस्पताल में डाल दीजिए। हालांकि मैंने कुछ सोचे बिना ही यह कह दिया।

मेहरबान का बड़ा भाई उसे घर लिवा जाने के लिए आया। पर छुट्टी मंजूर हो तभी तो वह जा सकता था। था। उसने छुट्टी के लिए दरखास्त दी। मंजूरी के लिए थोड़े दिन रुकना पड़ा। इसी बीच एक विचित्र घटना घटी।

एक दिन सुबह उठकर मैंने सुना, मेहरबान सिंह लापता है। खोजबीन करने पर पता चला कि सूरजभान भी लापता है।

पूरे शहर में हल्ला हो गया। सूरजभान के भक्त कहने लगे—हाय ! हाय ! सामयिक मोह में आकर पूरी जिंदगी ही खराब कर ली मेहरबान ने।

पर कुछ लोग रस ले लेकर कहने लगे—सुंदरी राजकन्या और आधा राज मिलने पर हम लोग भी लापता हो जाते। सूरजभान भी कम बुद्धि नहीं रखती।

छोकरा खानदानी और खूबसूरत जो ठहरा।

यह सब सुनकर मेरा मन बुरी तरह उदास हो गया। बड़ा भाई रोते-रोते जब गया, मैं भी थोड़ी दूर तक उसके साथ-साथ गया। उन्होंने कहा भाग्य ही सब कुछ है।

मैंने कहा—किस्मत की बात है। जिसके नसीब में जो है, वह होकर ही रहेगा।

महीने बीतने लगे। मेहरबान की कोई खबर नहीं। दूसरी तरफ सूरजभान के घर पर भी अंधेरा छाया हुआ था। उसके कर्मचारी भी नहीं बता सकते थे कि वह कहां है। मैं अपने काम में जुटा रहा।

एक साल के बाद मेहरबान का पता मिला। उन दिनों वह अजमेर में रहता था। उसने मुझे अजमेर तीर्थ-यात्रा के लिए बुलाया था।

मै समझ गया कि उसे मेरी सलाह चाहिए। मैं छुट्टी लेकर अजमेर गया। पहुंचते ही मेहरबान अपने क्वार्टर में मुझे ले गया।

मैंने देखा, दोनों अच्छी तरह से रह रहे हैं। किसी की पत्नी बनकर सूरजभान बड़ी लजीली बन गयी है। मेरे सामने भी वह थोड़ा-थोड़ा पर्दा कर रही थी। मेहरबान से वहां मैंने जो कुछ सुना, वही बता रहा हूं।

—स्यालकोट से भागते-भागते वे लोग कई जगहों पर पहुंचे। जहां भी जाते, वहीं इस प्रश्न का सामना करना पड़ता कि दोनों का रिश्ता क्या है ? पति-पत्नी ? इसके जवाब में सूरजभान कहती--हां। पर मेहरबान अपने होंठ नहीं खोलता। किसी भी तरह से उसकी जुबान से यह नहीं निकला कि वे पति-पत्नी हैं। वह सिर्फ झूठ ही नहीं, अप्रिय भी था। पर ऐसा कुछ परिचय दिए बिना कहीं भी मकान मिलना मुश्किल था। नौकर-चाकर नहीं मिल सकते थे, सहायता नहीं मिलती, समाज नहीं मिलता। ऐसे में केवल बाजार में एक कमरा मिल सकता था। पर ऐसा प्रस्ताव देने पर सूरजभान तो जल उठती। वह भी कुछ कम गर्वीली नहीं थी। वह क्या कोई बाजार की वेश्या थी ?

पर उसके बाद जहां भी वे लोग जाते, थोड़े ही दिनों में लोगों को पता चल जाता कि ये लोग शादीशुदा नहीं थे। कुछ नौजवान तो अपना हिस्सा तक मांग बैठते। सौंदर्य एक ऐसी सामग्री है कि किसी को दिये बिना भोगने से कोई बर्दाश्त नहीं करता। रोड़े फेंककर वहां से दूर भगायेंगे। पुलिस से शिकायत करने पर पुलिस विवाह की गवाही मांगेगी, और नहीं तो फिर मोटी रकम। मेहरबान ने अब समझा कि किसी वस्तु को अकेला भोगने के लिए उस पर उसका कोई अधिकार भी होना चाहिए। सूरजभान को विवाहित पत्नी साबित करने के लिए उसे दलील देनी होगी।

वह ठहरा राजपूत का लड़का और शादी करेगा बनिए की विधवा से। वो भी अगर कोई सती-सावित्री होती तो कोई बात थी। छाती चीर कर उसे रुलाई आती। वैसे भी उसका सिर झुक गया था। अब क्या वह मिट्टी में मिल जायेगा? मेहरबान को लगा, भागने का कोई रास्ता नहीं। नौकरी तो मिलेगी नहीं। गांव लौटकर अगर खेतीबाड़ी करे, तो भी बड़ों का लांछन सहना पड़ेगा और यह सब सुनकर कौन उससे शादी करेगा? शादी किए बिना पत्नी से सहवास का भी कोई उपाय नहीं था। तो फिर क्या इस भरी उम्र में वह संन्यास ले ले। अगर वह नहीं भागता है तो दो ही रास्ते रह जाते हैं। या तो शादी नहीं तो हिस्सा बंटाना। इन दोनों से ही मेहरबान को वितृष्णा थी। और सूरजभान? मेहरबान को यकीन था कि वे दोनों ही सूरजभान को समान रूप से पसंद थे।

जान रहते हुए वह हिस्सा तो नहीं बांट सकता था। इससे तो मरना बेहतर था। दूसरा उपाय विवाह कर लेना था। विवाह के नाम पर उसकी आंखों में बाढ़ का ज्वार आता, उसका हृदय हाहाकार कर उठता। उसकी जात, कुल का गर्व, उसके पौरुष का अहम्, उसका नीति बोध सभी उसके विवेक को धक्का मार-मार कर उसे चूर कर रहे थे।

अगर मजबूरी न होती तो वह ऐसा हरगिज नहीं करता। विवाह? उस रांड से। बनिये की विधवा से। अपवित्र नारी मे। पर उसे मजबूर होना पडा—हिस्सेदारों के दावों को खतम करने के लिए। बिना बंटवारे के निश्चित मन से भोगने के लिए, अविभाजित किंतु रूप से अधिकृत होने के लिए। शादी के तुरंत बाद ही उसने ऐलान किया—सूरजभान को पर्दानशीन होना पड़ेगा।

सूरजभान को इसकी उम्मीद नहीं थी। पर शादी के लिए वह मेहरबान के प्रति आभारी थी। कोई राजकुमार उसको ब्याहेगा, वह तो उसके शैशव का सपना था। ऐसी अलौकिक घटना के लिए उसे थोड़ा कष्ट तो उठाना ही पड़ेगा।

पत्नी को पर्दे में छुपाकर मेहरबान थोड़ा निश्चित हुआ। इसके बाद उसे जीविका की तलाश करनी थी। इसके लिए उसने पंजाब से बाहर जाना निश्चित किया जहां उसे छुप-छुपकर जीना न पड़े। घूमते-घूमते वह अजमेर ही पहुंचा। अपना जंगी रिकार्ड दिखाकर उसे रेल में नौकरी भी मिल गयी। तनख्वाह अधिक नहीं थी, पर रोटी तो अपनी थी।

वहां पर आकर एक नई समस्या उठ खड़ी हुई। रेल की नौकरी में महीने में बीस दिन सफर करना पड़ता था। पत्नी को हर बार ले जाना मुश्किल था। अकेली छोड़ कर जाने में बुरी भावनाएं आ घेरती थीं। सात राजाओं का धन, इतना कीमती माणिक जिसके घर पर हो और घर का मालिक घर से बाहर हो तो मौका पाकर अगर सेंध काट कर कमरे में कोई घुस आये तो—? थाने के

खाते में रिपोर्ट दर्ज करानी पड़ेगी—पर रिपोर्ट में असल में क्या चोरी चला गया—वह तो लिखवाने वाली बात थी नही। जिसकी चोरी हुई वह तो उस समय सफर पर होगा।

तो फिर मेहरबान क्या करे? घर संभाले या बाहर? पत्नी को रखे या नौकरी को। पर सूरजभान के मन में कोई समस्या नहीं थी। उसे देखने पर लगता था, उसे निश्चितता है। वह राजकुमार का सपना देखा करती थी, राजकुमार उसे मिल गया था। लेकिन मेहरबान ने क्या यह सब कुछ चाहा था? उसने क्या ऐसा सपना देखा था?

ठीक ऐसे ही समय मे अजमेर से मेरी बुलाहट आयी। सलाह-मशविरे के लिए।

उन दोनों की शादी हुई है, जानकर सच में मुझे खुशी हुई थी। मैं मुसलमान था। मेरी गृहस्थी के रूप में खास कुछ नहीं था। मेहरबान नाराज हो सकता था, इसलिए उसे उस तरह की कोई सलाह भी मैंने नहीं दी। मेरी सलाह के बिना उसने जो कुछ भी किया, ठीक ही किया था। पर इतनी ईर्ष्या? इसका अर्थ मैं समझ नही पाता था। इतना संदेह? जिसके साथ सारी जिंदगी गुजारनी है, पल-पल उस पर अविश्वास करने से कैसे क्या होगा?

इसके जवाब में मेहरबान बोला—क्या करूं। वह जो ठहरी भयंकर सुंदर। अगर वह खूबसूरत नहीं होती तो मैं शक नहीं करता। बदसूरत होती तो विश्वास करना मेरे लिए आसान होता।

मैं समझ गया, असली डर उसे सौंदर्य से है। वह डर उसके मन से कैसे निकले? सात आठ बच्चे हो जाने पर? कोई खराब बीमारी हो जाने पर या फिर जवानी ढल जाने पर? पर यह सब होने के लिए तो बहुत सयय ठहरना पड़ेगा। सूरजभान हम लोगों की उम्र की थी। समय से पूर्व जड़ बनने में उसे कोई जल्दी नहीं थी।

मैंने कहा—भाई, कुछ भी कहो, पत्नी कुरूप हो जाय, यह कामना कभी मत करना। किसी देवता ने अगर तुम्हारी बात सुनकर तुम्हारी मनोकामना पूरी कर दी तो तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।

मैं समझ गया कि उसकी बुद्धि फिर गयी है। तेजाब से जलाकर बीबी को कुत्सित बनाया जा सकता है या नहीं, वह यही भांप रहा था। उसने बताया कि वह यह सब इस तरह से करेगा मानो वह कोई आकस्मिक घटना हो। मैंने कड़ी आवाज में उसे धमकाया, पर मन ही मन मैं खुद भी सिहर गया। मैने कहा—अगर ऐसी बात है तो तुम उसे तलाक दे दो, नहीं तो ऐसे ही अलग-अलग रहो।

पर वह कहां मानने वाला था। बोला—पुलिस की नौकरी पर रहता तो

तनख्वाह और पेंशन को लेकर और ऊपर का मिलाकर कई लाख कमा लेता। सारे खर्चे छोड़कर भी लाख रुपए तो रहते ही। पुलिस की नौकरी छोड़ कर वह लाख रुपए समझ लो मैंने उसे दहेज में दिया है। मुफ्त का तो नहीं अपनाया उसे। तो मैं फिर क्यों तलाक देने लगा ? और कैसे छोड़ना-बोड़ना ? नियति ने हमें एक धागे में पिरोया है।

एकाएक मेरा दिमाग खुल गया। मैंने कहा—अच्छा ! एक बात बताना। अगर सूरजभान तुम्हें एक लाख रुपए वापस लौटा दे तो तुम उसे छोड़ दोगे ?

मेहरबान बिलकुल हक्का-बक्का रह गया। अवाक् नजरों से मेरी तरफ ताकने लगा। क्या सोचा उसने वह तो उसी को मालूम होगा। बोला—मजाक कर रहे हो ?

—नहीं ! मजाक नहीं। मैंने कड़ाई से कहा। तुम्हारी समस्या का एक यही समाधान है।

मेहबान आर्त होकर बोला—अगर तुम उसे यह बात बता देते हो तो सच मे वह एक लाख रुपए मेरी तरफ फेंक देगी। और मैं उससे खरीद लिया जाऊंगा। 'रानी-पसंद' बन जाऊंगा।

मेहरबान के मन की बात यह थी कि सूरजभान उसकी मालकिन न कहलाये। वह स्वयं सूरजभान का मालिक कहलायेगा। जिस पर सूरजभान खूबसूरत नायिका नहीं बन सकती। उसे बदसूरत पत्नी बनकर रहना होगा, तभी मेहरबान निश्चित, आराम का जीवन जी सकेगा। पर सूरजभान को यह बात कह कर तो बतायी नहीं जा सकती थी।

ख्वाजा साहब की दरगाह पर नजराना देकर मैं अजमेर से चला आया। उसके कुछ दिनों के बाद एक दिन अचानक देखा, सूरजभान का महल रोशनी से जगमगा रहा है। अचानक यह क्या हुआ ? क्या हो सकता था ? रानी क्या लौट आयी ? और भी कोई साथ में आया या नहीं ? उसके साथ और तो कोई नहीं था।

खान बहादुर कहने लगे—उसके बाद मेहरबान से मेरी मुलकात नहीं हुई। कोई चिट्ठी पत्री भी नहीं। मैं पंजाब से तबादला लेकर बंगाल आ गया। यहां विभाग में मेरी नियुक्ति हुई थी। उसके बाद से तो बस इसी प्रवेश में बस गया हूं। जहां तक मुझे मालूम है, मेहरबान की कहानी यहीं पर खत्म है।

'यहीं पर खत्म है।' मेरा कौतूहल नहीं मिटा। मैंने कहा—कहिए न साहब, उसके बाद क्या हुआ। सूरजभान का क्या हुआ ? मेहरबान का क्या हुआ ?

लौंच पानी को चीरता हुआ आगे बढ़ रहा था। पानी के छींटे हम लोगों पर पड़ रहे थे। कब हम लोगों ने चाय पी ली, पता ही नहीं चला। रात के खाने

के लिए मैं उन्हें कह चुका था। खान बहादुर आखिर मेरे मेहमान थे।

खान बहादुर बोले—अरे भई, कहने में कोई आनंद नहीं। आदमी को पहचानते-पहचानते बूढ़ा हो गया पर उस समय तो नहीं पहचानता था न ? इसलिए आश्चर्यचकित रह गया था।

—क्यों ? क्यों ? मेरा कौतूहल संभाले नहीं संभल रहा था।

वह आदमी सच में ही अपनी पत्नी के चेहरे पर तेजाब डालने गया था। एक बूंद उसके गाल या गर्दन पर पड़ी भी थी। इसलिए सूरजभान अब और पार्टियां नहीं बुलाती। कहीं निकलती भी नहीं। वैसे उसको कोई हानि नहीं पहुंची थी। सूरजभान के पास कोई लाख रुपए थे, उन्हें मेहरबान के हाथों में पकड़ाकर वह सीधे रेलवे स्टेशन पर पहुंची और स्यालकोट आ गयी।

घृणा से मैंने दोनों हाथों से अपने कान ढक लिए। आगे सुनने की इच्छा नहीं हुई।

—मेहरबान रुपए जेवर संभालने में जुट गया। पीछा करते हुए भागता भी कैसे ? कौन-सी चीज ज्यादा कीमती थी ? रुपए जवाहरात या औरत ? समय आने पर देखा गया कि रुपए ही ज्यादा कीमती हैं।

खान बहादुर ने खेद प्रकट किया। मुझे लगा उनकी सहानुभूति औरतों के साथ है। मैंने कान से हाथों को थोड़ा हटाया। पर वह मेरी गलती थी।

अंधेरा घना हो रहा था। पहुंचने में अब भी थोड़ी देर थी। यह कहानी अगर खत्म हो गयी तो क्या लेकर हम लोग समय काटेंगे ? मैंने कानों पर से हाथ हटा लिए।

खान बहादुर बोले—जो कुछ हुआ तो ठीक ही हुआ। थोड़े पर से बात निकल गयी। मेहरबान किसी दिन उसका खून भी कर सकता था। सुंदरी हमेशा चंचल होती है। कभी किसी वक्त थोड़ा सा इठलाती और अपनी जान से हाथ धो बैठती। बच गयी, वही क्या कम है। तेजाब के दाग से अगर थोड़ा-बहुत नुकसान उसे पहुंचा तो समझ लीजिए, वह उसके पापों की सजा है।

मैंने कुछ नहीं कहा। पाप तत्व में मेरी कोई आस्था नहीं। पाप की सजा भी पापी ही दे, यह भी मेरे लिए असहनीय बात थी। मेहरबान क्या कोई कम पापी आदमी था।

देखिए खान बहादुर बोले—आप खुद सोच कर देखिये नारी को आखिर कौन सा नुकसान उठाना पड़ा। हानि जो कुछ हुई, पुरुष की ही हुई। उन रुपयों से तो उसकी क्षति-पूर्ति नहीं हो सकती। कभी न पूरी होने वाली क्षति थी। नौकरी पर होता तो अब तक वह आई०जी० डी०आई०जी० नहीं तो कम से कम तो होता ही। हाय री तकदीर। नसीब में जो है वो तो होकर ही रहता है। और

रेल की नौकरी, वह भी कहां रही ? लाख रुपयों को देखते ही तो उसका दिमाग भन्ना गया। उसने फिर शादी कर ली उन रुपयों को दहेज में देकर। लड़की किसी संभ्रांत सरदार परिवार की थी। उन लोगों ने उसे अंगरेजों की नौकरी नहीं करने दी। देशी राज में फौज में दाखिला करवा दिया। उसमें ओहदे की गरिमा के अलावा और क्या है जी ? कहिए न ?

मैं गुमसुम होकर बैठा रहा। क्या कहूंगा, सोचकर भी समझ में नहीं आ रहा था।

अब हमारे इन्सपेक्टर का हाल क्या होता है, यही देखना है। वे भी एक और रानी-पसंद है। लड़की सुना है असामान्य सुंदरी है। सुंदर होगी तो बुरी भी होगी इसमें हैरानी की कोई बात नहीं। जो जितनी बुरी है, वो उतनी ही खूबसूरत—कहकर खान बहादुर ने लंबी सांस ली।

भागा हुआ

प्रेमेन्द्र मिश्र

आज का दिन बड़ा खराब है। सर्दी के दिनों में अगर बादल छाये रहें तो उससे अधिक अजीब-अजीब सा शायद और कुछ नहीं हो सकता। पानी ठीक से बरस नहीं रहा था और मेघों से ढका आकाश और बुझी-बुझी सी धरती मुर्दे की तरह निर्जीव पड़ी थी। सोमेश यदि आज अचानक नहीं आता तो दोपहरी मेरी कैसे कटती मालूम नहीं। सोमेश भी आज कैसा दिख रहा था।

अखबार के पन्नों को उलट-पलट कर सोमेश की तरफ सरकाते हुए मैंने कहा, एक ताज्जुब की बात गौर की है तुमने ?

—क्या ?

—आज के अखबार में एक साथ सात खोए हुए व्यक्तियों के लिए विज्ञापन हैं।

सोमेश ने कोई कौतूहल नहीं दिखाया। जैसे बैठा था वैसे ही उदास बैठा-बैठा सिगरेट का धुआं छोड़ता रहा। निस्तब्ध कमरे में सिर्फ धुएं की कुंडलियां धीरे धीरे गोलाकार चक्कर काट कर ऊपर की तरफ उठ रही थीं। बाकी सब कुछ स्तब्ध। बाहर की निर्जीवता जैसे हमारे मन पर भी हावी हो रही थी।

अजीब-सी इस निस्तब्धता को तोड़ने की गरज से मैंने कहा, खोए व्यक्तियों वाले विज्ञापनों को देखकर मुझे बड़ी हंसी आती है। अधिकतर मामलों में क्या होता होगा, मालूम है ? बेटा नाटक-वाटक देखकर रात देर गये घर लौटता होगा। और ऐसी उमर में वह अक्सर ऐसा ही करता। रात को खाना खाने के वक्त बाप ने बेटे की खोज-खबर ली होगी। अपनी पत्नी से कहा होगा—बाबू साहब गये किधर ? तुम्हारा सुपुत्र दिखायी नहीं पड़ा।

फिर पत्नी को धमका कर बोला होगा—यह बेकार का रोना-धोना बंद करो। ऐसे लड़के का चला जाना ही ठीक है।

मां की सिसकियां बढ़ गयी होंगी।

फिर बाप ने दांत भींच कर अपनी दबी इच्छा की बात कह डाली होगी—चला जाता तो जान में जान आती। पर देखना, शाम को जरूर लौट आयेगा। ऐसा बिन पैसे का होटल कहां मिलेगा!

मां ने रोते हुए कहा होगा—इतनी ठंड में क्या मालूम सारी रात कहा पड़ा हुआ है। कहीं कुछ कर न बैठे। मुझे तो डर लगता है।

हूं···डर। बाप ने मजाक में बात को टाल दिया होगा। बोला होगा—तुम्हारे बेटे ने कुछ नहीं किया होगा, कुछ नहीं। किसी दोस्त के यहां मजे में रह रहा होगा। जैसे ही दिक्कत होगी, लाट साहब दर्शन देने पहुंच जायेंगे।

मां फिर भी रोती रही होगी। बोली होगी—आप तो जानते ही हैं कितना स्वाभिमानी लड़का है मेरा।

आगे की कहानी फिर इस तरह बढ़ती है।

लड़का नहीं ही लौटा। बाप नाराज होकर घर से बाहर निकल पड़े। शाम को दफ्तर से लौटने के बाद ऐसा लगा कि मामला गंभीर है। बेटा तब तक घर नहीं लौटा था। मां ने बिस्तर न छोड़ने का प्रण लेकर बिस्तर पकड़ लिया था।

—उफ! परेशान हो गया हूं। इससे तो बनवास अच्छा है। कहकर बाप अखबार के दफ्तर में जा पहुंचे।

अखबार के दफ्तर का मामला बड़ा पेचीदा होता है। कहां क्या करना है, कुछ पता नहीं चलता। थोड़ी देर तक विमूढ़ होकर इधर-उधर भटकने के बाद दफ्तर के किसी एक कमरे में घुसकर किसी निरीह चेहरे के एक सज्जन के पास जाकर थोड़ी हिम्मत जुटाकर बोले—आपके अखबार में मैं एक खबर छपवाना चाहता हूं।

निरोह चेहरे वाले सज्जन ने अचानक सिर उठाकर देखा। फिर व्यंग से बोले—खबर। क्यों, हम लोग जो खबरें छाप रहे हैं वे आपको पंसद नहीं? हम क्या इतने दिनों से राम के बनवास यात्रा की खबर निकाल रहे थे?

लड़के के बार-बार अनुनय-विनय से पिघल कर छुपाकर जोड़ी गयी पूंजी में से मां ने बेटे को कुछ रुपए निकाल कर दिये थे। जानबूझ कर झूठ बोलने में मन ही मन कष्ट पा रही थी, इसलिए वह चुप ही रही।

बाप बोलते बोलते चले गये—इतनी रात गये भी साहबजादे के घर लौटने का वक्त नहीं हुआ। पिछली बार तो फेल करके मेरा सिर ही खरीद लिया था। इस बार भी मुझे किस तरह कृतार्थ करेगा, मैं ही समझ सकता हूं। पैसे मेरे फिजूल के नहीं कि नवाबजादा मर्जी माफिक उन्हें उड़ाये। निकाल दूंगा, इस बार उसे जरूर निकाल बाहर करूंगा।

यह मामला शायद इस मुंहजोरी के साथ ही समाप्त हो जाता, पर ठीक उसी समय एक गुणवान लड़का आ पहुंचा। बाप झोंक में थे ही और अपना मान

बचाने के लिए कुछ बोलना भी था। इसलिए बोले—ऐसे बेटे की मुझे कोई जरूरत नहीं। जा निकल जा।

कुछ कर सके या नहीं, स्वाभिमानी लड़का पिता के इस आदेश को तुरंत मानने के लिए तैयार हो गया।

मां बेचारी किस तरफ संभाले, कुछ समझ न पाकर कातर भाव से बोली—आह! खाना खाने के वक्त यह सब कहने की क्या जरूरत है? आप बाद में भी तो कह सकते थे।'

बाप मां को डपटते हुए बोले—तुम्हीं ने अपनी शह देकर इसे कहीं का न रखा। प्यार-दुलार से इसका दिमाग आसमान पर चढ़ा दिया है तुमने।

मां आंचल से आंखें पोंछने लगी और बेटा इस विशाल दुनिया में निरुद्देश्य यात्रा पर निकल पड़ा।

दूसरे दिन मामले ने बड़ा गंभीर रूप ले लिया। उस रात से मां ने रोटी का टुकड़ा तक मुंह में नहीं रखा। आज भी बिस्तर से उठेगी, ऐसा नहीं लगता था। हो सकता है बाप भी सारी रात नहीं सोया हो। पर अब वह किस मुंह से कुछ बोलता?

विमूढ़ पिता असहाय नजरों से चारों तरफ देख रहा था। बगल में बैठे जिस सज्जन का चेहरा देखकर उन्हें लगा था कि कठोर प्रकृति के होंगे, उन्होंने ही बड़ी सहानुभूति के साथ कहा—अहा क्या कर रहे हो। ये सज्जन क्या कहना चाहते है यह तो सुनो। आप बैठिये।

पिता एक कुर्सी पर अटपटे भाव से बैठ गये। अब उस सज्जन ने पूछा—आप किस खबर के बारे में बताना चाह रहे थे?

—जी, वो असल में कोई खबर नहीं—यही कि मैं एक विज्ञापन देना चाहता हूं।

—विज्ञापन? किस चीज का विज्ञापन? आपको कितनी जगह चाहिए? कॉपी लाये हैं?

पिता और भी विमूढ़ भाव से बोले—जी, आप उसे विज्ञापन भी ठीक-ठीक नहीं कह सकते। असल में मेरा लड़का घर से भाग गया है।

उसकी बात खत्म भी नहीं हो पायी थी कि टेबिल की दूसरी तरफ से एक सज्जन ने कहा—ओ समझा। आप क्या लिखाना चाहते है विज्ञापन में—चेहरे का वर्णन, या घर लौट आने के लिए विनती।

पिता को मानों अब कोई किनारा मिला। बोले—जी हां, लौट आने का अनुरोध करूंगा। उसकी मां बहुत रो रही है।

—समझा, समझा। नाराज होकर घर से चला गया है।

फिर उन सज्जन ने कागज का एक पेड पिता की तरफ बढ़ाते हुए कहा—

लीजिये इस पर जो लिखना है लिखकर दे दीजिये।

—लिखकर दूं ? पिता के चेहरे से लगा मानो कोई विपत्ति उन पर टूट पड़ी है।

सज्जन को दया आ गयी। बोले—ठीक है हम लोग लिख लेंगे। आप सिर्फ नाम पता वगैरह दे जाइये।

नाम, पता तथा बेटे का हुलिया देने के बाद पिता बोले—थोड़ी अच्छी तरह लिख दीजियेगा। उसकी मां ने कल से पानी तक नहीं पिया है।

—यह सब कहने की जरूरत नहीं है। मैं ऐसा लिख दूंगा कि पढ़कर लड़का रो देगा। आप निश्चित रहिए।

आश्वस्त होकर पिता घर लौट आये। पर आंसुओं से सिंचा विज्ञापन निकलने के पहले ही वे देखते क्या हैं कि लड़का घर पर वापस लौट आया है। पश्चाताप से पीड़ित होकर वह घर लौट आया हो, ऐसा सोचने की जरूरत नहीं। वह घर पर रहने के लिए नहीं आया था। जाने के पहले सिर्फ अपनी कुछ किताबें ले जाने के लिए आया था।

अब की बार माँ बिगड़ गयी। बोली—"हां, हां, जायेगा क्यों नहीं। कुल को आग लगाने वाला तो तू है ही। दुनिया में जैसे कभी-किसी लड़के को डांट नहीं पड़ती है। तू कहां का पैगंबर है ! कल सारी रात पल भर के लिए भी ये सोये नहीं। सोच-सोच कर एक ही रात में चेहरे का क्या हाल बना लिया है देखा भी है तूने। ऊपर से मिजाज दिखाकर चले जाने की धमकी दे रहा है।

पिता कमरे के अंदर आते हुए धीरे-गम्भीर स्वर में बोले—छोड़ो भी। मत डांटो।

मां डपट कर बोली—तुम चुप रहो जी। ज़्यादा लाड़ भी अच्छा नहीं। थोड़ी सी डांट क्या पड़ी घर छोड़ जाने की धमकी देने लगा। क्या हिम्मत है।

अधिकतर खोए हुए व्यक्तियों के बारे में जो विज्ञापन छपते हैं, उनके पीछे का इतिहास यही है।

सोमेश का सिगरेट खत्म हो गया था। इतनी देर में मेरी कोई बात उसके कानों में पहुंची, ऐसा मुझे लगा नहीं। वह स्थिर निश्चल बैठा था।

थोड़ी नाराजगी के साथ मैंने कहा—तुम्हें हो क्या गया है, कहो तो ? लगता है—मैं खामख्वाह बकता गया।

मेरी बातों का जवाब दिये बिना सोमेश अपने फैलाये पैरों को समेट कर बैठ गया। सिगरेट का बचा टुकड़ा उसने हाथ से फेंक दिया फिर बोला—शायद तुम नहीं जानते कि इस तरह के विज्ञापनों के पीछे कई सचमुच की ट्रेजेडी भी रहती हैं।

हो सकता है। मैं कहां ना कह रहा हूं। कभी-कभी सच में ही जो एक बार चला जाता है, वह फिर वापस नहीं लौटता।

सोमेश थोड़ा हंसकर बोला—नहीं, मेरे कहने का यह मतलब नहीं है। घर लौट आने की ही एक चरम ट्रेजेडी की बात मैं जानता हूं।

मैंने उत्सुकता से पूछा—क्या मतलब !

सुनो बताता हूं।

बाहर तब तक बारिश शुरू हो चुकी थी। खिड़की के शीशे में से सड़क अस्पष्ट और अवास्तविक सी लग रही थी। लग रहा था, हम लोग सारी दुनिया से अलग-थलग पड़े हुए है।

—पुराने अखबारों की फाइलें अगर उलट-पलट कर देखो तो पाओगे कि कई साल पहले यहां के प्रधान समाचार-पत्र के पन्ने में हर रोज लगातार एक विज्ञापन निकला करता था। वह कोई विज्ञापन नहीं, मानो एक सम्पूर्ण इतिहास था। हर रोज धारावाहिक रूप से पढ़ने पर ही इस कहानी को पूर्ण रूप से जाना जा सकता था। छपे अक्षरों पर कान रखने पर एक करुण आर्तनाद सुनाई देता था।

विज्ञापन अवश्य ही खोये हुए व्यक्ति का था। पहले तो बेटे के घर लौट आने के लिए मां का कातर अनुरोध था। अस्पष्ट ठिठुराई-सी भाषा, पर उन्हीं वाक्यों में जो व्याकुल भाव था उसे पढ़े बिना समझना मुश्किल है। धीरे-धीरे मां का कातर अनुरोध निराशा की लंबी सांसों में बदल कर अखबार के पन्नों में विलीन हो गया। उसके बाद पिता की गंभीर आवाज सुनायी पड़ी। थोड़ी कांपती हुई, पर गंभीर और शांत आवाज—शोभन लौट आओ। तुम्हारी मां बिस्तर में पड़ी है। तुम्हें क्या जरा-भी कर्तव्य-बोध नहीं है ?

लेकिन इसके बाद भी विज्ञापन बंद नहीं हुआ। पिता का स्वर भारी होता गया, मानों उसकी आवाज रुंध गयी हो।—शोभन अब भी अगर घर नहीं लौटोगे तो मां से मिल नहीं सकोगे।

पर शोभन का हृदय इससे भी नहीं पिघला। लोगों ने देखा विज्ञापन पहले की तरह ही निकल रहा है, सिर्फ पिता अपने को संभालने की हिम्मत हार बैठे हैं। अब उनकी आवाज कातर हो गयी थी। कातर ही नहीं नितांत कमजोर—शोभन क्या तुम्हें मालूम नहीं कि हमारे दिन कैसे कट रहे हैं। लौट आओ, बेटे, हमें और दुख मत दो।

विज्ञापन धीरे-धीरे हताशा से हाहाकार कर उठा। फिर बिल्कुल बदल गया। अब शोभन को संबोधित कर कुछ नहीं लिखा रहता था। साधारण एक विज्ञप्ति सी निकलती थी। "इस तरह का, इस चेहरे-मोहरे का, ऐसी उमर का एक लड़का पिछले एक साल से लापता है। उसके बारे में खबर देने वाले को ईनाम दिया

जायेगा। फिर ईनाम की मात्रा दिन पर दिन अखबार के पन्नों में बढ़ती गयी। दुबला पतला सोलह-सतरह साल का लड़का, गर्दन में दाहिने कान के पास एक चिन्ह। जीवित या मृत—

इतनी सी खबर देने वालों को भी ईनाम दिया जायेगा।

इतना कहकर सामेश थोड़ी देर के लिए चुप हो गया। बारिश के छींटों से खिड़की का शीशा धुंधला पड़ गया था। कमरे के अंदर ठंड बढ़ गयी थी। लग रहा था, कंबल ओढ़ लूं तो अच्छा रहेगा।

मैंने कहा—यह तो रहा विज्ञापन का इतिहास, असल मामले के बारे में कुछ जानते हो क्या ?

जानता हूं। मैं शोभन को जानता था। वह किसी स्वाभिमान के वश में आकर घर छोड़कर चला गया था, तुम ऐसा मत समझ लेना। उसके साथ ऐसी परिस्थिति थी कि घर छोड़कर चला जाना ही उसके लिए नितांत आवश्यक था। बस बहाना चाहिए था। दुनिया में दो-चार व्यक्ति निर्लिप्त मन लेकर ही जन्म लेते हैं। वे दिल के कड़े नहीं होते, बल्कि उनका हृदय बड़ा तरल होता है और तरल होने के कारण ही ऐसे लोग पकड़ में नहीं आते। उनके मन में किसी बात की छाप नहीं पड़ती। सुनकर तुम्हें आश्चर्य होगा कि अखबार में छपे विज्ञापनों को पढ़ने के बाद भी उसने उनके अनुरूप कोई कदम नहीं उठाया। कभी पढ़ लिया होगा फिर भूल गया होगा। घर से बाहर जिन समस्याओं और असुविधाओं का सामना करते हुए कोई भी व्यक्ति घबरा उठता है, उन्हीं समस्याओं में उसे मुक्ति का स्वाद मिलता था। लोग चाहे कुछ भी समझें, शोभन अपने को एक छोटी-सी गृहस्थी का दुलारा लड़का नहीं समझ सका। पर जिस दिन विज्ञापन बंद हो गये, उसका उदासीन मन भी विचलित हो उठा। विज्ञापन भी बड़े असाधारण ढंग से एकाएक बंद हो गये थे। ऐसा नहीं कि वे चलते-चलते थककर एकाएक रुक गये हों, अचानक एक भयंकर दुर्घटना के कारण समाचार-पत्र के पन्ने मूक हो गये। शोभन के चेहरे के वर्णन के बदले अचानक एक दिन निकला—

"शोभन तुम्हारी मां से अब शायद तुम्हारी मुलाकात नहीं हो पायेगी। वह सिर्फ तुम्हें याद करती है।"

इसके बाद फिर कभी कोई इश्तहार नहीं निकला।

उसके बाद दो वर्ष गुजर गये। शोभन एकाएक एक दिन अपने गांव, अपने घर लौट आया। एक बात से शोभन के स्वभाव का थोड़ा परिचय तुम जान सकोगे। पहले मैंने कहा नहीं। शोभन किसी साधारण मध्यमवर्गीय परिवार का लड़का नहीं था। उस परिवार को सम्पन्न कहना भी शायद सही नहीं होगा। उन लोगों की पुरानी जमींदारी, बुरे दिनों से गुजर कर भी अच्छी तरह टिक गयी थी।

शोभन उस परिवार का एकमात्र उत्तराधिकारी था।

सोमेश थोड़ा हंसकर आगे बोला—दो साल के स्वतंत्र जीवन-यापन का कष्ट अस्वीकार करने के बावजूद उसके चेहरे पर उसकी छाप थी। दो साल में वह बहुत बदल भी गया था। फिर भी उसी के कर्मचारी लोग उसे नहीं पहचानेंगे, यह आशंका उसे नहीं थी।

अपने गांव पहुंचकर शोभन सीधे घर पहुंचा, पर दरवाजे से अंदर घुसते ही पहले पुराने मुनीम जी ने उसे रोका। पूछा—किसे चाहिए ?

शोभन हंसकर बोला—किसी को भी नहीं। घर के अंदर जाना चाहता हूं।

मुनीम जी ने तीक्ष्ण दृष्टि से उसकी तरफ देखते हुए मुस्कराकर कहा—तो यह बात है, पर इतनी जल्दी भी क्या है ? आइए बाहर बैठक में आकर बैठिए।

शोभन आश्चर्यचकित होकर बोला, आप क्या कह रहे हैं मुनीम जी ? बात क्या है?

—नहीं, नहीं, कुछ भी नहीं हुआ है।

—मां तो अच्छी है न ? शोभन की आवाज में व्याकुलता थी।

मुनीम जी उसी तरह रहस्यमय ढंग से मुस्कराते हुए बोले—बिलकुल अच्छी है। आइए मेरे साथ।

शोभन फिर बोला—लेकिन मेरा अंदर जाना ही ठीक है।

मुनीम जी कठिन आवाज में बोले—नहीं, ठीक नहीं है। आप मेरे साथ आइए।

शोभन विमूढ़ भाव से मुनीम जी के पीछे-पीछे चलकर बाहर बैठक में जाकर बैठ गया। पिछले दो साल में कुछ बदला-बदला सा लग रहा था। बही-खाते लिखने वाला पुराना गुमाश्ता अब रह नहीं गया था। दो नये आदमी बैठे-बैठे बही-खाता लिख रहे थे। केवल पुराने परिचित खजांची को देखकर उसका मन थोड़ा संभला। मुनीम जी शोभन को एक कुर्सी पर बैठाकर खजांची से बोले—यह साहब अंदर जाना चाहते है।

मुनीम का स्वर शोभन को अस्वाभाविक-सा लगा। खजांची ने नाक पर से चश्मा थोड़ा ऊपर सरकाकर शोभन की ओर देखते हुए कहा—ओह, आज यही साहब आये हैं क्या ?

—हां, बस अभी-अभी ही आये है।

शोभन धीरज खो बैठा। अधीर होकर बोला—आप लोग क्या कहना चाहते हैं, साफ-साफ कहिए। मां को क्या कुछ हुआ है ? पिताजी कैसे हैं ?

चारों तरफ से सभी की नजर शोभन पर थी। थोड़ी देर तक सभी चुपचाप रहे। फिर मुनीम जी बोले—वे लोग ठीक-ठाक हैं, पर इस समय आप उन लोगों से नहीं मिल सकते।

शोभन बुरी तरह नाराज हो उठा। बोला—क्यों नहीं भेंट हो सकती ? आप

लोगों का दिमाग खराब हो गया है क्या ? मैं चला अंदर ।

शोभन उठ खड़ा हुआ । पर मुनीम दरवाजे के पास आकर शांत भाव से बोला—देखिए, खामख्वाह मजाक मत कीजिए । इससे कोई फायदा नहीं ।

एकाएक शोभन के सामने सारी बातें स्पष्ट हो उठीं । वह विस्मय से भयभीत आवाज में बोला—क्या आप लोग मुझे पहचान नहीं पा रहे हैं ?

सभी चुप रहे ।

—मैं शोभन हूं । आप लोग नहीं पहचान पा रहे कि मैं शोभन हूं ?

मुनीम जी इस बार बोले—आप थोड़ी देर रुकिये । मैं अभी आ रहा हूं । इतना कहकर वह बगल वाले कमरे में जाकर दराज खोलकर कोई चीज लाये और उसे शोभन के हाथों में रख दिया । यह शोभन का ही पुराना एक मामूली सा फोटो था । थोड़ा धुंधला पड़ गया था ।

मुनीम जी बोले—इसे आप पहचानते हैं ?

शोभन विस्मित होकर बोला—यह तो मेरा ही फोटो है । आप ही लोग अच्छी तरह मिलाकर देखिये । उफ ! क्या असहनीय बात है—कहकर वह अपने बाल मुट्ठी में पकड़ कर बैठ गया ।

मुनीम जी भी उसकी बगल में बैठ गये । बोले—देखिये बुरा मत मानिए । आपके साथ थोड़ा-बहुत चेहरा मिलता है । पर इसके पहले भी दो जन आये थे । उनसे भी चेहरा मिलता था, यहां तक कि तिल भी था । इन बातों को लेकर हम लोगों को हंगामा करना मना है, इसलिए हम लोग कोई हुज्जत नहीं करेंगे । अब आप जा सकते हैं ।

शोभन ने घबराहट भरी नजरों से सब की ओर देखा । सभी की नजरों में अविश्वास था ।

शोभन कातर होकर बोला—मैं सिर्फ एक बार अपने मां-बाप से मिलना चाहता हूं । आप लोग यकीन नहीं कर रहे हैं पर एक बार मुझे मिलने तो दीजिए ।

मुनीम जी बड़ी निराशा से हाथ उल्टा कर बोले—तो फिर सुनिए । शोभन सात दिन पहले मर चुका है । उसके मरने की खबर हम लोगों को मिली थी ।

यह सुनकर शोभन हंस पड़ा । बोला—उसकी मृत्यु कैसे हुई ?

शोभन की अनदेखी कर मुनीम बोले— सड़क पर गाड़ी के नीचे दबकर शोभन की मृत्यु हुई थी । उसका नाम, पता, परिचय, कुछ भी नहीं मिला था पर दुर्घटना के समय जो लोग वहां मौजूद थे, उनमें से कुछ लोगों ने अखबार में हम लोगों के दिए हुए विज्ञापनों को पढ़कर हमें सारी सूचनाएं दीं । हम लोगों ने अस्पताल में भी खबर की । वहां के डाक्टर द्वारा दिये गये वर्णन से हमारी शंका मिट गयी ।

इसके बाद शोभन क्या करता पता नहीं पर उसी समय पिता घर से बाहर

निकल रहे थे। कोई आदमी आंधी से उखड़े वृक्ष जैसा इस तरह दिख सकता है, यह उपमा साहित्य पढ़कर भी शोभन के मन में पहले कभी नहीं आयी थी। उनके चलने के ढंग से लगता था मानो उन पर किसी भयंकर दुर्घटना की छाप थी।

कोई कुछ समझे इसके पहले ही शोभन दौड़कर कमरे से निकल गया। मुनीम और बाकी कर्मचारी भी उसके पीछे-पीछे दौड़े। शोभन ने पिता के पास जाकर पुकारा—पिताजी !

वृद्ध व्यक्ति चौंक कर रुक गये। उनके चेहरे में वेदना की जो गहरी छाप थी, उसे देखकर शोभन के हृदय में मानो छुरी चल गयी।

शोभन बोला—पिताजी, मुझे पहचान रहे हैं न ?

बूढ़े पिता लड़खड़ाते हुए एक कदम आगे बढ़कर फिर चौंक कर रुक गये। तीव्र भावावेग के कारण वार्धक्य की शिथिल मुखाकृति विकृत हो उठी। तब तक मुनीम और बाकी कर्मचारी लोग भी आ धमके।

बूढ़े ने कांपते हुए हाथों को उठाकर कांपती हुई आवाज में पूछा—कौन ?

मुनीम शोभन के कंधे पर दृढ़ स्थिर हाथ रखकर बोले—नहीं, कोई नहीं है। पिछली बार की तरह—। यह तीसरी बार है।

कोई कर्मचारी बोला—हम लोग तो उसे रोक रहे थे, पर पता नहीं कैसे हाथ छुड़ाकर . . . ।

बूढ़े ने उसे रोककर कहा—उसे कुछ मत बोलो। चले जाने दो। फिर कातर नयनों से शोभन की तरफ देखते हुए बूढ़ा अंदर की तरफ चला गया।

शोभन विमूढ़ सा खड़ा रहा। मुनीम जी उसे कुछ कह रहे थे, पर उसे कुछ सुनाई नहीं पड़ रहा था। कब तो वह फिर बाहर बैठक की तरफ आकर बैठ गया, उसे कुछ नहीं मालूम।

थोड़ी देर बाद उसका विमूढ़ भाव कट गया, घर के अंदर से कोई कर्मचारी मुनीम को आकर कुछ कह रहा था। सुनाई ठीक से कुछ पड़ नहीं रहा था पर शोभन ने देखा कि मुनीम के हाथ में बहुत सारे रुपए थे। वह बिनती भरी आवाज में शोभन से बोला—आपको एक काम करना होगा। घर की मालकिन की हालत बड़ी खराब है। बेटे के मरने की खबर भी उन्हें नहीं मालूम। उन्हें बताया ही नहीं गया। अभी भी बेटे को देखने की आस लगाए बैठी है—शायद इसीलिए वह मर कर भी मर नहीं पा रही हैं। उन्हें शान्ति नहीं मिल रही है। आपको सिर्फ उनका खोया हुआ बेटा बनकर एक बार उनसे मिलना होगा। उनकी बुझी-बुझी नज़रों में फर्क पकड़ मे नहीं आयेगा। और फिर खोये हुए बेटे के साथ आपका बड़ा ही सादृश्य भी है। मृत्यु पथ के यात्री को थोड़ी सी सांत्वना पहुंच जाय—इसके लिए स्वयं जमींदार साहब ने आपसे कातर विनती की है। इससे

आपको तो कोई हानि नहीं।

इतना कहकर मुनीम जी ने नोटों का बंडल शोभन के हाथों में ठूंस दिया।

सोमेश थोड़ी देर चुप रहा। बाहर बारिश की आवाज के अलावा और कोई आवाज नहीं थी। अंत में मैंने ही कहा—सोमेश, तुम्हारे कान के पास एक तिल है।

सोमेश कुछ हंसकर बोला—इसीलिए इस कहानी को गढ़ना मेरे लिए आसान हुआ।

पर पता नहीं क्यों—ठंड की इस बदरायी, ठिठुरती, अंधेरी, अस्वाभाविक शाम को सोमेश की हंसी पर विश्वास करने को मेरा जी नहीं चाहा।

धंसान

सतीनाथ भादुड़ी

छाती से ज़बरदस्ती छीनकर परसादी को जाना पड़ा था उसे नदी में फेंकने के लिए। इस तरह से जो चला जाता है, उसे जमीन में नहीं गाड़ा जाता—इसीलिए तो नदी में प्रवाहित करने के लिए जाना पड़ा।

जब तक घर पर था, परसादी रोया नहीं। आंख की कोरों में आंसू आते ही दूसरी तरफ मुंह फेर कर पोंछ लेता था ताकि कहीं मनचनिया देख न ले। इतनी देर में उसने मनचनिया की तरफ एक बार ताका तक नहीं था।

आंखें चार होने पर कहीं लजा न जाय। ऐसे समय में किसी की ओर देखा भी जाता है! एक तो मनचनिया शोक और शर्म से गड़ी हुई है, ऐसे समय दुख का बोझ बढ़ाना ठीक नहीं। परसादी घर से बाहर जाकर रोया था।

इतने दिनों तक लोगों को यही मालूम था कि उसकी घरवाली को बच्चा नहीं हो सकता। कितने तावीज, टोटके, दवा आदि किये होंगे उसने। मरने के बाद थोड़ा पानी मिले, इसकी चाह किसे नहीं होती। पर जब उसे लगा कि अब ईश्वर की कृपा उस पर है, तब से तो वह अधीर मन से हर दिन गिनता रहा था। मनचनिया को लेकर वह क्या करे समझ नहीं पाता। पूछता ही रहता—क्या खाने को जी चाहता है? लड़का होगा या लड़की? शक्ल किस पर जायेगी? हिलता है क्या? जली हुई मिट्टी खाने का मन करता है क्या? फिर कितनी ही तरह की कल्पनाओं का ताना-बाना बुनता। दाई से ही क्या-क्या नहीं फुसफुसाकर पूछता रहता। मुहल्ले के लोग-बाग उसके उतावलेपन को देखकर आपस में हंसी उड़ाते।

उसके बाद तो बुध से बुध तक चौदह दिन, फिर बृहस्पतिवार, शुक्र और शनि। इन सत्तरह दिनों के तो मानो उसके हाथों में स्वर्ग ही आ गया हो। सत्तरह दिन के बाद जिसकी चीज़ थी, उन्होंने छीन ली। आदमी कर ही क्या सकता है।···जाता क्यों नहीं—जाता है, किस-किस कारण से कितनों के बच्चे मर जाते

हैं ।···गुड़ की गगरी में डूबकर बच्चे को मरते हुए सुना है, गरम दूध की कढ़ाई में पड़कर मरते सुना है ।···पर इस तरह से मरना···उफ । रत्ती भर का तो बच्चा है ।···बिलकुल नीला पड़ गया था । सांस लेने की जी-जान कोशिश से उसकी आंखें फैल कर मानो बाहर निकलना चाह रही थीं । अहा रे··· ।

···चाट रहा था क्या ?···डर की अनुभूति होने के पहले, विपत्ति क्या है यह जानने के पहले ही वह मां की छाती पर से उतर पडा एकाएक ही ।···मक्खन सी मुलायम छाती के दूध की धार के नीचे घुटन भरा अंधेरा । उस अंधेरे में बच्चा आखिर का रोना भी नहीं रो पाया ।

मनचनिया को काफी देर के बाद पता चला । कितनी देर के बाद क्या पता । उसे अजीब-सी ठंडक का अनुभव हो रहा था, पर क्यों ? कभी-कभी ऐसी ठंडक उसे लगती तो थी । नींद में शरीर पर कंबल खींचत समय भी मनचनिया को दूसरे प्राणी की याद नहीं आयी । नींद मनचनिया की कमजोरी थी ।···फिर भी उसे लगा उसे ठंडा-ठंडा क्यों लग रहा है ? 'कालीस्थान' में घंटी बज रही थी इसका मतलब था सुबह होने में देर नहीं । वह फड़फड़ा कर उठ बैठी ।··· पोतड़ा भीगने पर भी कंबल के नीचे इतनी ठंड नहीं लग सकती···यह ठंड कुछ दूसरे ही ढंग की थी । एकाएक उसकी छाती कांप उठी । लालटेन जलाने में उसने चार दियासलाई की तीलियों को जला डाला । लालटेन की बत्ती तेज कर बिस्तर की तरफ ताकने के साथ ही साथ उसके मन की क्षीण आशा भी बुझ गयी । उसका चीखना सुनकर परसादी जाग उठा, पर क्या उस छोटी-सी जान में गर्मी वापस लायी जा सकती थी ? कुछ भी नहीं किया जा सका । सत्तरह दिन के मांस के टुकड़े को छाती की चक्की में मसल डालने में अब और डर नहीं था मनचनिया को । आंसू से उसी छाती को उसने धो डाला ।

मनचनिया की बूढ़ी कुतिया परसादी के पीछे-पीछे थोड़ी दूर तक गई थी । वह लौटकर मनचनिया के पास आकर बैठ गयी । रंग की काली थी, इसलिए नाम था उसका कारिया । कारिया मनचनिया की आंसू भरी आंखों की तरफ ताक रही थी । उसके घने बिखरे बालों की तरफ देख रही थी । यह बूढ़ी कुतिया बड़े दिनों से इस घर में रह रही थी । वह इस घर के बारे में सब समझती थी, आदमियों की तरह ।

बाप के घर से गौना होने के बाद दूसरी बार जब मनचनिया ससुराल आयी थी, इस कुतिया को साथ ले आयी थी । ले तो क्या आयी थी, कारिया अपने आप ही उसके पीछे-पीछे चली आयी थी । यह बात भी आज की नहीं, बड़ी पुरानी बात थी । मनचनिया की शादी चार साल की उम्र में हुई थी । गौना शादी के पंद्रह साल बाद में हुआ था । गौने के पैसे जुटा कर परसादी बार-बार

ससुर के यहां खबर भेजता रहा। ससुर चुप्पी साधे रहता। देर होती गयी। लोग-बाग दस तरह की बातें बनाते रहे। उन दिनों मनचनिया गांव के तहसीलदार के यहां बच्चे संभालने का आया का काम करती थी। लोग ये भी कहते कि बाप बेटी की कमाई खाना चाहता है। यह भी कहते कि मनचनिया का काम सिर्फ आया का ही नहीं था। यह सुन कर परसादी का खून खौल उठा। एक तो उम्र की गर्मी, तिस पर पैसे की गर्मी। एक दिन वह तेल से पकाई मजबूत लाठी लेकर ससुर के यहां जा पहुंचा और झगड़ कर लाठी-लठोवल कर वह अपने हक की पत्नी को वहां से ले ही आया। गांव के बाहर जब बैलगाड़ी रेड़ी के खेत के करीब पहुंची तो देखा कि काली कुतिया भी साथ-साथ चली आयी है।

—किसकी कुतिया है रे?

यह था परसादी का पहला वाक्य अपनी पत्नी के साथ।

—मेरी। डरी-डरी सी मनचनिया ने जवाब दिया।

—तेरी?

मनचनिया का चेहरा-मोहरा विशाल था, पर उससे क्या होता। वह डर गयी। पति कड़े मिजाज का था। लड़कर उसे अपने घर ले जा रहा था। थोड़ी देर तक सहमने के बाद उसने पूछा—उठा लूं उसे?

—रह सकेगी?

—रह लेगी।

चलती गाड़ी से कुतिया को उठाने की कोशिश करते देख पति ने कहा—अहा! क्या कर रही है। तू समझती नहीं। थोड़ा और आगे सरक के बैठ।

शरीर का कपड़ा संभाल कर मनचनिया ने कुतिया को खींच कर ऊपर उठाया। उसने दिखा दिया कि मोटी होने पर भी वह कामकाज में सुघड है। अगर उसके चेहरे को लेकर कोई टोका-टाकी करता तो वह कुंठित हो जाती, और कपड़ा संभालती अपने शरीर का भार छुपाने के लिए। पहले ही दिन से परसादी की नजर से यह बात छुपी नहीं रही।

—सिर पर कितना वजन लेकर घूम सकती है?

—एक मन उठा लेती हूं।

फिर तुरन्त मन भर का टोकरा सिर पर लाद कर मनचनिया ने बताना चाहा कि वह ऐसा कर सकती है। परसादी उसकी सहमी हुई आंखों को देख कर बोलचाल में थोड़ी सावधानी बरतने लगा। बोला—हरदाहाट हमारे यहां से तीन कोस पर है। वहां से थोक के भाव सब्जी खरीद कर शहर जाकर बेचता हूं।

पति के साथ मनचनिया की यही पहली बातचीत थी। उसकी कुतिया और उसके भरे शरीर को लेकर बातचीत। उसके बाद पति चाहे कितनी ही हाट-

बाजार या सब्जी तरकारी की बात कहे, मनचनिया ने पति की बात के पीछे के इशारे को भांप लिया।

बात यहीं खत्म नहीं हुई। थोड़ी दूर आगे आकर तहसीलदार के दो सिपाहियों के साथ भेंट हुई। दोनों परसादी के लिए ही ठहरे हुए थे। मालिक का संभवतः हुक्म था मार-पिटाई करने का। पर उन्होने थोड़े में ही रिहाई दे दी। मालिक की बदनामी के लिए थोड़ी गाली-गलोज की और अंत में मजाक में बोले— दो-दो काली कुतियों को लेकर जा रहा है यहां से, हमारा गांव तो खाली हो जायेगा।

—मोटी कुतिया लेकिन पतली कुतिया से खायेगी ज्यादा। देख लेना।

अपनी ही बातों के रस में दोनों सिपाही हंसकर लोट-पोट हो गये। इस घटना को भी अब दस साल हो गये थे। उसके बाद से अब तक वह कुतिया यहीं रही। तब से यहां के लोगों को मनचनिया की याद आते ही उसकी काली कुतिया की भी याद आती। कुएं पर, 'हरदा हाट' में या किसी गृहस्थ के घर, मनचनिया जहा भी जाती वह कुतिया भी उसके पीछे-पीछे जाती। सिटकी-पिटकी सी कारिया और उसकी मोटी मालकिन की बात बच्चे आपस में बोलते और हंसते रहते। न मालूम बच्चे क्यों इतने निष्ठुर होते है। कभी अगर पसीने से तर-बतर होकर मनचनिया तरकारी का टोकरा उठाकर सड़क पर से आ रही होती, बच्चे कंचे खेलना छोड़ आंखों ही आंखों में इशारा करते। कोई सुर में चिल्लाता म-न-च-नि-या। दूसरा लय मिलाकर कहता ल-द-ब-दि-या। मनचनिया लदबदिया, मनचनिया लदबदिया। कारिया पूंछ झुका लेती। मनचनिया जब नजदीक पहुंचती तब गिरोह के सबसे शैतान दो बच्चे सड़क के दोनों किनारे खड़े हो जाते। एक मनचनिया के एक तरफ, दूसरा दूसरी तरफ। फिर वे मनचनिया की चाल की नकल उतार कर उसी चाल से चलने लगते और साथ ही लय और सुर से कहते— लदर बदर। लदर बदर। लदर बदर।···

मनचनिया मन ही मन मर जाती। उसकी जीभ में धार की कमी नहीं थी। कोई और बात होती तो पलट कर मनचनिया भी बहुत कुछ सुना देती। गाली-गलौज़, चिल्ला-चिल्ला कर ऐसी मुसीबत खड़ा करती कि बच्चे तुरंत भाग उठते। पर ये बोल तो उसके शरीर के बेढबपने को लेकर थे। मनचनिया के चेहरे पर अजीब सी मुस्कराहट छा जाती। शरीर का कपड़ा उस समय संभाल नहीं सकती थी क्योंकि दोनों हाथों से वह टोकरा थामे रहती थी। लड़कों से रिहाई पाकर थोड़ी दूर आगे बढ़ने के बाद कारिया की पूंछ फिर खड़ी हो जाती। लड़कों की तरफ मुंह फेर कर दो बार वह भों-भों कर चिल्लाती। गिन कर सिर्फ दो बार और फिर अति परिचित सी कोई सुगंध सूंघते हुए चलना शुरू कर देती।

पिछले कई महीनों से मनचनिया का यह कुंठित भाव कुछ कम-सा हो गया

था। जब नयी संभावना से दुनिया का रंग बदलता हुआ दिखाई दे तब भारी बोझा भी हल्का लगने लगता है, अशोभन चीज भी शोभने लगती है, मन की ताकत बढ़ जाती है। उसे अपने सौष्ठवहीन शरीर का कोई अर्थ अब मिल गया था . . . पर यह सुख भी कितने दिनों का रहा ?

सत्तरह दिनों का राजपाट खत्म हो गया मनचनिया का। . . . जिस शरीर को लेकर आजीवन वह बेचैन रही, जिस अभिशाप के बोझ की कुंठा से लोगों के आगे उसे सर झुका कर रहना पड़ता था, उसी ने उसके साथ चरम दुश्मनी की थी। दुश्मन। . . . दुश्मन कहीं का।

घर के आगे बरामदे मे पैर फैला कर मनचनिया बैठी हुई थी। बूढ़ी कुतिया उसके पैर चाट रही थी। कारिया की आंखों में आंसू थे या मैल, पता नहीं चल रहा था। अनजाने में मनचनिया का हाथ कुतिया के शरीर पर चला गया। वह हाथों से उसे सहलाने लगी। कारिया की पीठ के खुरदरे रोएं मनचनिया की उंगलियों के बीच से सरकने लगे। छाती के रोएं पीठ के रोओं से नरम होते हैं। पसलियों की हड्डियां उसकी उंगलियों में चुभ रही थीं। फिर कारिया के सूखे स्तनों पर उंगुली फेरते समय मनचनिया ने अच्छी तरह गौर किया। लगा मानो छोटे-छोटे मस्से हैं। थोड़ी कोशिश न कर देखने पर काले रोओं के बीच एक बार तो वे स्तन नजर ही नहीं आते थे। कारिया के कानों के कीड़े से भी छोटी थीं उसके स्तन की चूचक। उम्र ढल जाने से पिछले साल से बच्चे होने बंद हो गये थे बूढ़ी कारिया के . . . पर यह भी तो अच्छा था . . . हजार गुना अच्छा था।

कारिया घूर-घूर कर देख रही थी। एक बार मनचनिया के चेहरे की तरफ, और दूसरी बार गर्दन टेढ़ी कर मनचनिया की फिरती हुई उंगुलियों की तरफ मानो कुछ समझने की कोशिश कर रही हो। मनचनिया का रंग-ढंग ठीक लाड़ की तरह तो नहीं लग रहा था। तो फिर ? छाती की चूचियों में उसे गुदगुदी लग रही थी।

दुख की बात तो जरूर थी, पर इस तरीके से पेट से जने बच्चे का मर जाना— कितनी शर्मनाक बात थी, कहकर समझाया नहीं जा सकता। सरकारी कुएं के किनारे सारे लोग उसको ही लेकर बातें कह रहे होते। न मालूम क्या-क्या कह रहे होते। घर से निकलने की हिम्मत मनचनिया जुटा नहीं पाती। लेकिन फिर भी क्या चैन मिल पाता ? मुहल्ले वाले उसे ढांढ़स बंधाने के लिये आते। पर वह सब समझती थी। वे खाक सांत्वना जताने आते। किसी को आते देख, चद्दर ओढ़ कर चटाई पर वह पड़ जाती। जो मर्जी सुना जाओ, वह किसी बात का जवाब नहीं देती। परसादी जब घर होता, मुहल्ले वालों से मनचनिया को तंग न करने के लिए कहता। एक बुढ़िया ने ढांढस बंधाने के बहाने मनचनिया को गाढ़ी नींद

से उठा दिया पर परसादी ने बीच में ही उसे टोक कर चुप करा दिया। चटाई से सट कर कारिया आठों पहर बैठी रहती। जान-पहचान के लोगों के आने पर भी एक-दो-बार भौंककर अपनी नाराजगी जाहिर कर देती।

पत्नी की मानसिक हालत का अंदाज परसादी को उसकी एक बात से लगा। जमीन में आंख गड़ा कर बड़ी कुंठा के साथ उसने परसादी से सरकारी कुएं से पानी भर लाने के लिए कहा।

—पीने का पानी ? परसादी ने पूछा।

मनचनिया चुप रही।

—नहाने का पानी चाहिए ?

मनचनिया की आंखें भर आयीं। अपने नहाने के लिए पति को कहीं सरकारी कुएं से पानी लाने के लिए कोई औरत कह सकती है ? एक तो वह मोटी थी, बिना नहाए रह नहीं सकती। तिस पर पूरे शरीर से सड़े हुए दूध की महक। अपना ही मन घिना जाता था। शर्म का घूंट पीकर उसने पति को नहाने का पानी लाने के लिए कहा। कुएं पर जाकर लोगों के बीच पानी लाने में उसे और भी शर्म आयेगी। परसादी मिट्टी का घड़ा लेकर जा रहा था। मनचनिया ने बाल्टी भी आगे बढ़ा दी। मर्द आदमी घड़ा लेकर सरकारी कुएं पर पानी लेने के लिए जाये—मुहल्ले वाले क्या कहेंगे !

अपनी सहज बुद्धि से परसादी को लगा, पत्नी को थोड़ा अनमना रखने की उसे हर समय कोशिश करनी चाहिए। आंगन में साग-सब्जियां लहलहा रही थीं, मनचनिया के अपने ही हाथों से रोपी हुई। अगर उसी की थोड़ी देखभाल करे तो मन थोड़ा बहल सकता था। पर वह करती कहां थी ? बरामदे में बैठी-बैठी रात-दिन वह क्या-क्या सब सोचती रहती थी, वही जानती थी। सुबह उठकर हर रोज वह सेम की फलियां आदि तोड़ती बाजार ले जाने के लिए। पिछले तीन दिनों से मनचनिया सेम तोड़ना ही भूल गई थी।

जैसे ही थोड़ा मौका मिलता, परसादी गप-शप में मनचनिया को उलझाए रखने की कोशिश करता, पर बात शुरू करने से थोड़ी देर बाद ही बात खत्म हो जाती। करने के लिए बात ही यही मिलती, और बात शुरू करने के थोड़ी देर के बाद ही जो चला गया, उस पर बात करने की इच्छा होती, पर उस बात को तो करना मना था। दूसरी बात छेड़ने पर अनजाने में ही बाधा पड़ती। सब्जी के बाजार भाव पर बातचीत करना दोनों की हमेशा की आदत थी। परसादी कहता —इन दिनों सेम का बाजार भाव अच्छा जा रहा है। एक महीने के बाद सेम को कौन पूछेगा, कुत्ते के कान के समान कड़ी सेम की फलियों को। सतपुतिया सेम में मुनाफा अधिक है क्योंकि यह फलती भी अधिक है, एक-एक गुच्छे में सात-सात

सेम की फलियां लटकती है। आंगन में जो सेम की फली है, वह दशहरे के पहले से फल दे रही है—तुझे याद है मनचनिया उस बार खगरिया हाट के दशहरे के मेले में से मैं तेरे लिए दही बड़े....।

कहता-कहता परसादी चुप हो जाता। उसे यह बात नहीं उठानी चाहिए थी, उस समय तो मनचनिया के पेट में वह बच्चा था। मनचनिया ने दही बड़े खाने की इच्छा प्रकट की थी। परसादी ने बात पलट डाली। बोला—हां, हां, बे-मौसम की साग सब्जी में ही मुनाफा अधिक मिलता है। सेम अभी से फलने लगे हैं। पुरानी बेल है शायद इसीलिए। पिछले साल की जड़ है। तू तो इसे उखाड़ फेंकना ही चाहती थी। मेरे कहने से ही तो बैसाख के महीने से उस पर तूने पानी देना शुरू किया। कहा था कि नहीं, बोल ?

सब सुन कर मनचनिया के चेहरे के भाव कैसे होते। यह देख परसादी चुप हो जाता।

—लौकी की बेल कितनी लहलहा कर छप्पर पर छा गयी है, देखा है तूने ? कितनी मोटी है डाल, बूढ़ी उंगली से भी मोटी। रोज चावल का मा गिराती है न जड़ में, तभी तो ताकत है। पर इतनी बढ़ेगी तो उस डार पर क्या फल पकड़ेगी। उसके डंठलों को काट-काट कर बेच डालना ही ठीक रहेगा।

परसादी समझ ही नहीं पाता कि उसने यह क्या कह दिया, क्योंकि सुनते ही पत्नी का चेहरा मुरझा जाता। परसादी की बात अधूरी की अधूरी रह जाती। वह उठ पड़ता। इतना संभल संभल कर कहीं बातें की जा सकती थीं ?

सिलाई वगैरह करने पर शायद मन बहले, इसलिये मनचनिया के कुर्ते के लिए परसादी बाजार से लौटते समय छींट का कपड़ा खरीद लाया। मनचनिया देखकर बोली—धोने के बाद यह कपड़ा छोटा पड़ जाता है।

—इतना कसा हुआ कुर्ता डालती क्यों है, थोड़ी ढीली सिलाई कर। कहते समय मन में कुछ विचार नहीं था। पर मनचनिया ने आंखें झुका लीं। परसादी सोच कर आया था कि वह जम कर बातचीत करेगा, पर सब गोलमाल हो गया। पत्नी का अपराध-बोध से पीड़ित चेहरा उसकी नजरों से छुपा नहीं रहा।

परसादी ने अपनी कोशिशों में कमी नहीं की। दूसरे दिन परसादी एक कुत्ते का पिल्ला लेकर बाजार से लौटा। पीलिया बिल्कुल ही छोटा सा था। बस आंखें खुली ही थीं। मनचनिया ने पूछा—यह क्या ले आये ?

—कारिया तो बूढ़ी हो गयी। कब मर खप जायेगी, क्या पता। अभी से एक नया कुत्ता पालना ठीक रहेगा। सड़क किनारे पड़ा-पड़ा कूं कूं कर रहा था, उठा लाया।

मनचनिया उस दिन हाट में जाने की तैयारी कर रही थी। आखिर कब तक

घर पर बैठी रहती । उसके जैसे लोगों का घर बैठने से काम नहीं चलता । और ऐसे समय पति कुत्ते का पिल्ला ले धमका । क्या मुसीबत है । अब तक जब हर साल कारिया के कई-कई बच्चे होते थे तब कभी पिल्ला रखने का ख्याल तक नहीं आया । कितने पिल्लों को तो सियार खा गये, कुछ गली-मौहल्ले के बच्चे उठा ले गये । कितना भी बचा खुचा क्यों न खाने को दो, कुत्ता पालने में खर्च तो लगता ही है । नहीं तो एक गृहस्थ के कूड़े के ढर से दूसरे गृहस्थ के कूड़े के ढेर में आठों पहर चक्कर मारता फिरेगा । फिर भी मर्द जब अपने हाथों से उठा लाया है तो जगह तो देनी ही पड़ेगी ।

सिर पर से टोकरा उतार कर मनचनिया ने कुत्ते के पिल्ले को हाथों में लिया । घर से निकलने में उसे शर्म आ रही थी । अच्छा ही हुआ, थोड़ा और समय हाथ लगा इस पिल्ले के आने से । एक शाम बाहर न जाने का बहाना पाकर मानो वह जी गयी ।

पिल्ला बिल्कुल ही नन्हा-सा था । नाक से इधर-उधर सूंघ रहा था । कुछ उसकी धीमी आवाज भी सुनाई पड़ रही थी । वह कपड़ों में मुंह छुपाना चाहता था । पतली सी जीभ से उंगलियों और हथेली की चमड़ी को चाटने लगा । मनचनिया के शरीर की महक मानो उसे भा गयी । दूध की खट्टी-खट्टी महक मानो उसकी जानी-पहचानी थी । इस कुत्ते ने खोयी महक पहचान ली । अपने सहज अनुभव से वह समझ गया कि यह महक उसे दूध की धार की खोज बतायेगी ।

—बाप रे बाप । एक मिनट चुप नहीं बैठ सकता । गोद से उतार कर मनचनिया ने उसे दबोच कर बैठाया ।

कारिया के गले से घर-र-र की एक आवाज निकली मानो नए आगंतुक का का रंग-ढंग उसे पसंद नहीं आया । मामला आखिर था क्या—कारिया बैठी-बैठी इसका ही अंदाज लगा रही थी । वह एक बार जाकर पिल्ले को सूंघ आयी । उस सूंघने में उसे क्या मिला, यह तो उसे ही मालूम । फिर एक जम्हाई लेकर वह बरामदे से नीचे उतर कर आंगन में जाकर ऊंघने लगी । पिल्ले के मामले में वह बिल्कुल उदासीन बनी रही ।

मनचनिया के हाथ में पिल्ले के नरम-नरम रोएं लिपट रहे थे । उसे आराम-सा महसूस हो रहा था । रोएं में उंगली फेर कर आराम के अलावा उसके शरीर में एक सिहरन-सी हो रही थी । बुरा नहीं लग रहा था । उंगलियों के पोरों में नरम-गरम उत्ताप के बोध ने मनचनिया को थोड़ा अनमना कर दिया ।

निचोड़-निचोड़ कर दूध तो रोज फेंकना ही पड़ता था । टीन के डब्बे के एक ढक्कन में दूध निकाल कर मनचनिया ने पिल्ले के आगे रखा । वह चुक ...चुक...

कर दूध चाटने लगा। यह आवाज कितनी मीठी थी। दूध पीते-पीते वह एकटक मनचनिया को देखे जा रहा था। सहसा आँगन में ऊंघ रही कारिया के कान खड़े हो गये। उसकी उदासीनता कट गयी। वह दूध के ढक्कन के पास दौड़ी हुई आयी।

—तू यहां क्यों आयी? भाग, भाग जा। मनचनिया ने डांटा। कारिया ने घें घें ए-ए की आवाज निकाली।

—यह तेरे पीने की चीज है जो गुस्सा दिखा रही है! इत्ती-सी छोटी जान के साथ बैर करती है। शर्म नहीं आती, जा भाग जा।

—घर-र-र-र।

यानि यह व्यवस्था कारिया को पंसद नहीं आयी। पर हुक्म मानने के सिवा उपाय भी क्या था।

घर के कामकाज से निबट कर मनचनिया टोकरा उठा कर आंगन से बाहर निकली। कारिया से बोली—तू क्यों उठ रही है? तू रह। आज तुझे मेरे साथ चलने की जरूरत नहीं। जा, जा कह रही हूं। घर के अंदर जा।

कह कर दरवाजे की संकल बाहर से लगा कर मनचनिया जब बाहर निकल गयी तब कारिया चिल्ला-चिल्ला कर मुहल्ला इकट्ठा कर रही थी।

जिस कारण से घर से बाहर निकलने में मनचनिया को शर्म आती थी, वही हुआ उसके साथ। हंसी की खुराक मिलने पर बच्चों को जैसे और कुछ चाहिए ही नहीं। आज भी मनचनिया को आते देख बच्चों ने खेलना बंद कर दिया। बोले—आज मोटी तरकारी वाली अकेली है, क्यों रे। उसकी सुखंडी कुतिया कहां गयी? आज उन्होंने कविता के बोल बोलकर मनचनिया के चाल की नकल तो नहीं उतारी, पर आपस में पूतना राक्षसी की बात उठाकर हंसी-मसखरी करने लगे। मनचनिया ने अपने कानों से सब सुना। फिर आंख-कान बंद कर किसी तरह से वह वहां से भागी। फिर जिस घर में वह सब्जी बेचने जाती थी, उस घर की औरतों ने खोद-खोद कर उस घटना की एक-एक बात पूछ डाली।... जिस बात को पुलिस तक ने नहीं सोचा था, वह इन्होंने सोच ली। क्या मालूम। यह नहीं तो कोई मां यह सब बातें उससे पूछ सकती है, जिसकी कोख अभी-अभी जली हो। उसके मरद ने उसे अभी कुछ दिनों तक घर-घर जाकर साग सब्जी बेचने के लिए मना किया था। कहा था—तेरा मन करे तो बाजार में सब्जी लेकर बैठ। उसने ठीक ही कहा था। उस समय परसादी की बात वह समझ नहीं पायी थी। सोचा था, घर-घर घूमने में थकान ज्यादा है, शायद इसी कारण उसने मना किया होगा।

उसके बाद तो मनचनिया किसी गृहस्थ के घर न जाकर तरकारी लेकर

सीधी बाजार में चली जाती थी ।

उस दिन पति-पत्नी घर साथ ही लौटे । दरवाजा खुलने की आवाज पाकर कारिया पूंछ हिलाती हुई आयी नहीं । कहीं कोई आहट तक नहीं थी । मामला क्या है ? मनचनिया ने जब बत्ती जलाई तो देखा कि आंगन में कारिया हाथ पैर फैला कर सोई पड़ी है, और वह पिल्ला उसकी सूखी हुई छाती को जी जान से चाट रहा है । बीच-बीच में सिर से गोता लगाकर, एक चूचक से दूसरे चूचक को चूस रहा है । मनचनिया ने पास जाकर पिल्ले को उठाया तो कारिया खड़ी होकर अपना बदन झाड़ने लगी । मानो कहना चाह रही थी—तुम्हारे कहने के मुताबिक मैंने काफी देर तक इसे संभाला है । एक करवट सोए-सोए सारा बदन अकड़ गया है । अब अपनी चीज आप ही संभालो । फिर जमीन सूंघते हुए कारिया घर से बाहर निकल गयी ।

—इसका एक नाम तो अभी से रखना पड़ेगा । मैंने तो सोचा है इसका नाम बच्चा रखूंगी ।

—हां, बच्चा नाम तो अच्छा ही है । बच्चा, अरी ओ, बच्चा ताक रहा है टुकुर-टुकुर । उंगली मत चाट, बेवकूफ कहीं का, यह कोई खाने की चीज है । भूख लगी है क्या ? वो तो लगेगी ही । बहुत देर भी तो हो गई है । दूध पीते बच्चे को तो हर घंटे भूख लगती है । आ जा मेरे पास ।

परसादी बोला—पिल्ला जब कूं कूं की आवाज निकालता है तो इसके माने उसे भूख लगी है ।

मनचनिया बोली—वे ऐसे भी कई बार कूं कूं करते हैं ।

मनचनिया के होंठों पर मुस्कराहट थी । यह मुस्कराहट यदि न होती तो उसकी बात का इशारा परसादी नहीं समझ पाता । पांच दिन के बाद आज वह पहली बार मुस्करायी थी ।

—ये बातें तो तू ज्यादा समझती होगी । कुत्ता पाल-पाल कर ही तो तेरी हड्डी पक गयी है ।

दूसरे दिन, दिन भर वह पिल्ला कारिया की छाती चाटता रहा । कारिया सारे दिन शरीर को ढीला कर सोयी पड़ी रही, मानो आराम कर रही हो ।

मनचनिया जब सिर पर टोकरी लाद कर घर से निकली तो बूढ़ी कुतिया आज भी उसके साथ नहीं गयी । आज उसे डांट कर रोकना नहीं पड़ा—वह अपने आप ही नहीं गयी । बाजार से लौटने के बाद भी मनचनिया ने देखा, कारिया उसी मुद्रा में पड़ी थी और वह पिल्ला सिर से गोता लगा-लगाकर उसके स्तनों को चूस रहा है । स्तन की चूचियां अब तिल के समान नहीं रह गयी थीं, थोड़ी बड़ी हो चुकी थीं । स्तन का पिछला हिस्सा भी थोड़ा बड़ा हो चुका था । थोड़ी ललाई

भी आ गयी थी। मनचनिया ने सोचा, कहीं छिल तो नहीं गयीं ? पिल्ला सिर्फ चाट थोड़े ही रहा था, नाखून से नोच-खरौच भी रहा था। उंगली से छूकर देखा मनचनिया ने। यह छिलने के कारण नहीं था। शिरा उपशिराओं की लाल बेंगनी महीन रेखाएं मानो ऊपर की तरफ ठेलकर उठना चाह रही थीं। चमड़ा मुलायम हो गया था। कारिया की दृष्टि से ऐसा लगा, जैसे मनचनिया के कौतूहल को वह शक की नजर से देख रही है। मानो कह रही हो—आंखें फाड़ कर, देखने का है क्या—पहले कभी देखा नहीं है क्या ?···

टीन के डब्बे का ढक्कन उठाकर बरामदे से मनचनिया ने पुकारा—बच्चा, बच्चा आ तु-तु-तु-कुर-कुर-. . . ऐ बच्चा।

बच्चा समझ गया यह कैसी पुकार थी। वह धीरे से बरामदे पर चढ़ गया। वह मनचनिया को धकेलते हुए उस पर चढ़ना चाह रहा था। घुटने के कपड़े पर उसके नाखून रगड़ खा रहे थे।

—रुक न बाबा। थोड़ा भी सबर नहीं। क्यों आया ? जा कारिया के पास जा। नयी मां मिल गयी है तुझे, चाट जाकर उसकी छाती, फिर क्या सूंघ रहा है ?

क्या चीज, किस काम आती है . . . उस तरह से जो चला जाता है उसकी बात याद आती है, क्या यह भुलाया जा सकता था।...

कारिया अब आंगन से गर्दन उठाकर देख रही थी। उसकी आंखों का कीचड़ कहां गया ? वह मनचनिया की बात सुन रही थी। उसके हाव-भाव, रंग-ढंग सब पर गौर कर रही थी। जब मनचनिया ने टीन का ढक्कन उठाया, कारिया के कान खड़े हो गये।

पिल्ले से रिहाई पाकर कारिया के लिए एक चक्कर बाहर लगा कर आना स्वाभाविक था, पर अब ऐसा न कर वह पूंछ के बल बरामदे के नीचे जाकर बैठ गयी। बड़ी व्यग्र होकर वह बच्चे के लौटने की प्रतीक्षा में बैठी थी। . . . टीन के ढक्कन को चाट-चूट लेने के बाद पिल्ला भी कूं-कूं कर चारों तरफ सूंघ रहा था।

—हुआ तो ···। यह लाड़ नहीं था। मनचनिया की इस आवाज में किसी विपत्ति का सुर था, यह कारिया को मालूम था। टप् से कारिया कूद कर बरामदे में चढ़ी और पिल्ले को गर्दन से दांत से पकड़ कर उतार लायी। लगा कि मन ही मन वह बोल रही थी—चल अपनी जगह पर चल। वहां चाहे जो मर्जी कर।

ठीक पहले की जगह पर ले जाकर उसने बच्चे की गर्दन को थोड़ा चाट कर सहला दिया, फिर करवट लेकर आराम से सो गयी।

—ले . . . अब ले ले।

अब क्या करना था, यह पिल्ले को बताने की जरूरत नहीं थी।

बांस का खूटा पकड़ कर हैरान खड़ी-खड़ी मनचनिया यह सब देखती

रही।... बूढ़ी कारिया की चाह अब भी मिटी नहीं थी। मक्खियां बच्चे को तंग कर रही थीं। शरीर बिना हिलाए कारिया सिर झटकाकर मक्खियों को मारने की कोशिश कर रही थी।... शरीर को हिलाने से पिल्ले को दूध पीने में दिक्कत होगी या उसके अपने ही आराम में बाधा पहुंचती, कौन जाने? बूढ़ी कुतिया की छाती का परिवर्तन क्या परसादी ने देखा था? मनचनिया की बड़ी इच्छा हुई कि वह पति को बुलाकर दिखाये, पर संकोच के कारण वह नहीं बुला सकी।

बात लेकिन परसादी की नजर से भी छुपी नहीं थी, पर क्या यह बात मनचनिया के सामने उठायी जा सकती थी?... उस रात कितनी ही बार मनचनिया की नींद खुल गयी। सियार की महक पाकर सारी रात कारिया भी चिल्लाती रही।

सुबह उठकर देखा तो आंगन सूना। कारिया और उसका पिल्ला कहीं नहीं दिखे। कहां जा सकती थी? 'सतपुतिया' सेम की बेल के नीचे संदूक के समान काठ का एक कमरानुमा था। कभी मनचनिया ने बतख पाले थे। उन्हीं के रहने के लिये यह काठ का घर मनचनिया ने बनाया था। उसने देखा—कारिया उसी कमरे में बच्चे को लेकर सोयी हुई थी। कमरा चारों तरफ से बंद था। बतखों के घुसने के लिए एक छोटा-सा दरवाजा था। वह दरवाजा इतना छोटा था। कि कारिया भी बड़ी मुश्किल से उसके अंदर घुस पायी होगी। मनचनिया ने सिर झुकाकर देखना चाहा, पर अंधेरे में अंदर कुछ दिखायी नहीं दिया। घ-र-र-रर।... मानो कारिया कह रही हो, यहां किस चीज़ की जरूरत है?

—अरे कारिया मर। चुप भी कर। मनचनिया सेम की फलियां तोड़ने लगी। थोड़ी-सी आहट होने पर कारिया अंदर से गरजती। परसादी ने कहा—कारिया क्यों इतना भौंक रही है?

—कारिया को कुछ पसंद नहीं आ रहा है।

—क्यों 'सतपुतिया' सेम की बेल उसके इलाके में है क्या?

—लगता तो ऐसा ही है।

—नया लड़का जो मिल गया है।

—हां, सात जन्मों की संतान है।

इस मामले पर पति को ज्यादा कुछ कहने का मौका न देने के लिए मनचनिया गगरी लेकर सरकारी कुएं पर चली गयी।

परसादी ने भी चैन की सांस ली। अनजाने में एक अजीबो-गरीब स्थिति पर आकर दोनों की बातें अटक गयीं। आज उन दोनों को "हरदा हाट" में तरकारी बेचने के लिए जाना था। थोड़ा जल्दी निकलना था, इसलिए परसादी चूल्हा सुलगाने लगा। पटुए की लकड़ी तोड़ने की आवाज पाकर कारिया जोर-जोर से

भौंकने लगी।

—बाप रे बाप। परसादी ने सोचा—तेरे लिए तो कुछ कर ही नहीं सकता।

सच में—कौआ आकर छप्पर पर बैठे तो कारिया चिल्लाती, परसादी आंगन में चल-फिर रहा होता तो भी चिल्लाती। घर की छत पर चील बैठती तो भी चिल्लाती। दरवाजे के बाहर बिल्ली को देखती तो चिल्लाती।... लगता था सभी उसके दुश्मन थे। कोई भी उसके लिए मुसीबत खड़ी कर सकता था। वह संभाल-संभाल कर रख रही थी अपने बच्चे को, सब की आंख बचाकर। मुसीबत की गंध पाते ही भौंक कर उसे डराओ। आंख-नाक, कान चौबीस घंटे खुले रखो। किसी का कोई भरोसा नहीं। दुश्मन के आक्रमण के पहले ही उसके ऊपर झपटना पड़ेगा, मौका फिसल जाने पर वह हार जायेगी।

नाली की छोर पर एक नेवले को देखकर कारिया बतख का कमरा छोड़ दौड़कर बाहर आ गयी। चूल्हा जलाते हुए परसादी ने ध्यान से कारिया को देखा। कारिया की आंखें लाल थीं। नया बच्चा होने के सारे लक्षण उसके शरीर पर और उसके चाल-ढाल में स्पष्ट थे। वह पिल्ला भी कारिया के पीछे-पीछे बतख के कमरे से बाहर निकल आया। नेवला डर के मारे भाग गया था, फिर भी कारिया का उछलना, कूदना, भौंकना बंद नहीं हुआ। दूध के भार से उसकी छाती जमीन को छू रही थी। चलते-चलते भी वह पिल्ला कारिया की छाती चाट रहा था।

पर वो क्या ? ठीक तो देख रहा हूं... कोई गलती तो नहीं... पर यह कैसे संभव हुआ।... वह दोनों तो फिर बतख वाले कमरे में घुस गये... परसादी हैरान रह गया।

जानवरों में ऐसा हो सकता है, यह बात उसे मालूम नहीं थी। क्या मनचनिया ने देखा ? मनचनिया को जाकर यह खबर दी जाय ? परसादी की तो इच्छा हो रही थी कि वह मुहल्ले वालों को बुलाकर यह तमाशा दिखाये। पर इसका भी उपाय नहीं था। उसका बोलना तो बंद था।...

हरदा हाट जाते समय मनचनिया ने कुत्ते पर बात छेड़ी। खाने के लिए बुलाने पर भी आज कारिया बतख के कमरे से निकली नहीं थी। न तो उसने खुद खाया और न ही बच्चे को खाने के लिए आने दिया। उसे बच्चे के लिए ही चिंता हो रही थी।

...अरे बिना खाये-पीये क्या कोई रह सकता है ? कहते-कहते भी परसादी मनचनिया को इससे अधिक कुछ स्पष्ट नहीं कर पाया। मनचनिया समझे तब न। समझी ही नहीं।

घर लौटते-लौटते शाम हो गयी। उतना छोटा-सा बच्चा सारा दिन भूखा रह गया, मनचनिया मन ही मन छटपटा गयी। टीन का ढक्कन लेकर वह बत्तख वाले

कमरे की तरफ गयी । पुकारा—बच्चा, बच्चा आ . . . तु-तु . . . तु-कुर-कुर-र- ।

परसादी कमरे के अंदर से बोला—वो अब आ चुका ।

और सच में बच्चा आया नहीं ।

छोटे से दरवाजेनुमा रोशनदान में से कारिया मुंह निकाल कर भौंक रही थी । दांत निकाल कर मानो काट खाने को दौड़ रही थी ।

तू क्यों खामख्वाह चिल्ला रही है, चुप हो जा ।

पर हाथ बढ़ाते ही कारिया पागल हो उठी । यह मनचनिया की परिचित कारिया नहीं थी, यह उसका दूसरा ही रूप था । मनचनिया कुछ समझ-बूझ पाये, इससे पहले ही कारिया ने नोच खरोंच कर उसे काट-फाड़ डालना चाहा । मनचनिया छिटक कर लौकी की बेल पर जा गिरी । उसकी साड़ी को कारिया ने टुकड़े-टुकड़े कर डाला । हाथ से खून की धार बह रही थी । परसादी लाठी लेकर दौड़ा हुआ आया, पर मनचनिया का किसी तरफ भी ध्यान नहीं था । कारिया जब तक बत्तख के कमरे में घुस न गयी मनचनिया की दृष्टि कारिया की छाती पर से हटी नहीं . . . कारिया की छाती में दूध आ गया । . . . जब कारिया उस पर झपटी थी उस गरम, भींगे-भींगे थुल-थुल मांस पिंड का भार उसके हाथ पर लग गया था । वह बिल्कुल गीला था । दूध टपक रहा था कारिया की छाती से । अभी भी उस जगह पर मनचनिया के हाथ पर दूध लगा हुआ था ।

मनचनिया के अपने अभिशाप का बोझ भारी से भारी पत्थर से भी भारी हो उठा ।

सीमा-रेखा की सीमा

आशापूर्णा देवी

सभी हार कर लौट चुके थे।

आखिरकार सतीनाथ स्वयं तीन तल्ले चढ़ कर ऊपर आये। तीखी आवाज में बोले—बदतमीजी की भी कोई सीमा होनी चाहिए, छवि। शादी में इकट्ठी हुई भरी भीड़ के सामने जो बदतमीजी तुमने की है, हद से बाहर है। इतने सारे रिश्तेदारों के सामने तुमने मेरी इज्जत मिट्टी में मिला दी। अपने को भी हास्यास्पद बनाया। अब भी दया करो और नीचे चली आओ।

तीन तल्ले के इस छत पर कमरा बनाने की इजाजत नहीं थी, फिर भी छवि के लिए ही यह टाईल वाला कमरा बनाया गया था। छवि की इस टाईल वाले कमरे की बत्ती नहीं जल रही थी। सिर्फ नीचे शादी के मंडप की तेज रोशनी की टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएं दरवाजे को थोड़ा-सा आलोकित कर रही थीं।

छवि उसी दरवाजे को पकड़ कर खड़ी थी। उसके हाथ की उंगलियां और गाल का थोड़ा-सा हिस्सा दिखाई पड़ रहा था, पर इससे छवि के चेहरे का भाव पढ़ा नहीं जा सकता था।

यह भी नहीं समझ में आ रहा था कि छवि अब भी कठोर बनी रहेगी या नरम पड़ जायेगी। सतीनाथ के स्वयं बुलाने पर भी अगर छवि पर कोई असर नहीं हुआ तो यही समझ लेना पड़ेगा कि छवि भी अपने पति की तरह पागल हो चुकी है।

हालत नहीं सुधरी। छवि विचित्र सी सूखी आवाज में बोली—भैया तुमने खामख्वाह तकलीफ उठायी। मैं तो कह ही चुकी हूं . . .।

—जानता हूं। सतीनाथ क्षुब्ध तथा गुस्से भरी आवाज में बोले—जानता हूं। सारे घर के लोग एक-एक कर तुम्हारी खुशामद करने आये थे और तुमने सब को भगा दिया। कह दिया—खाऊंगी नहीं, नीचे नहीं उतरूंगी। सुना, तुम्हारी भाभी तुम्हारे आगे हाथ जोड़ कर गयी, फिर भी तुम्हें . . . छवि का चेहरा अब भी

दिखाई नहीं पड़ रहा था। अगर छवि कमरे के अंदर से थोड़ा बाहर निकल आती तो शायद दिखाई पड़ता, पर छवि बाहर निकल कर नहीं आ रही थी। मानो कमरे के दरवाजे के आगे किसी ने लक्ष्मण रेखा खींच दी हो। चौखट लांघते ही जैसे सीता रावण के हाथ में पड़ जायेगी।

और दरवाजा बंद कर एक बार बिस्तर पर निढाल हो कर पड़ जाये, छवि को ऐसा मौका ही नहीं मिल रहा था। शाम से ही एक के बाद एक लोग उसे बुलाने के लिए आ रहे थे।

—अरे, ओ छवि। आ न एक बार नीचे, देख पांच सौ आदमी आ चुके हैं। कितने लोग तुझे ढूंढ़ रहे हैं... देख आकर तेरे भैया का कितना खूबसूरत दामाद आया है। एक बार आकर देखेगी नहीं तू ?

—बुआ ! कन्यादान के कमरे में तुम कुछ रखना भूल गई हो, पिताजी गुस्सा कर रहे हैं। जल्दी से आ जाओ...। पर अब छवि अटल रही।

छवि का स्वाभिमान टूट नहीं रहा था। छवि सिर्फ इतना ही बोली—सिर में दर्द हो रहा है।

हालांकि सारे दिन सब कुछ ठीक-ठाक ही रहा था। शुरू से ही शादी का हर काम छवि खुद संभाल रही थी...। रसोई घर से लेकर भंडार घर, पूजा का कमरा, सब जगह चरखी की भांति छवि फिरती नजर आती, पर इन्हीं सब के बीच शादी की शाम किस क्षण वह घटना घट गयी, और उस छोटी सी घटना को तूल देकर छवि ने स्वाभिमान से बिस्तर पकड़ लिया था--यह किसी के ध्यान में नहीं आया। ध्यान आया कन्यादान के समय।

छवि कहां है ? कहां है छवि ?

गठबंधन की हल्दी और कौड़ी छवि कहां रख गयी ? और कन्या का लज्जा-वस्त्र ? जरूरत के समय कुछ नहीं मिल रहा था।

हालांकि तुरंत ही सब कुछ मिल गया। सब कुछ पास में ही रखा हुआ था। पर पास बैठ कर हर चीज कोई पकड़ा दे, फिर तो कोई दिक्कत नहीं होती न ?... और सिर्फ गठबंधन की हल्दी-कौड़ी, और कन्या का लज्जावस्त्र ही क्यों, छवि सारे नियम कर्म भी तो जानती थी। दुल्हन की मां क्या-क्या संभालती ? आये हुए मेहमानों को भी तो उन्हें ही संभालना था।

पर सब कुछ जानते हुए भी असली मौके पर छवि गायब हो गयी। छिः-छिः। ताने खाये हुए पति को सांत्वना देने गयी थी शायद। पर यह भी कोई समय था ? सतीनाथ सोच रहे थे—पागल, बावला आदमी, न जाने कब क्या कर बैठे ? उसे नींद की गोली खिलाकर निश्चित होकर तू नीचे उतर आ ? शादी के बाद तू अपने पति को नींद से जगाकर खिलाना, उस पर प्यार दिखाना।

पर यह तो बर्दाश्त के बाहर की चीज है। घर भर कर लोगों के सामने तू अपना मिजाज दिखाती पति को लेकर कमरे में बैठी हुई है? कह रही है, वह नहीं खायेंगे तो मैं भी नहीं खाऊंगी। छिः छिः! भाई का ऐसा अच्छा जंवाई आया, मन में इतना आनंद आल्हाद हुआ और तूने शादी की रस्म तक नहीं देखी। खाना खाने में भी नखरे दिखा रही है। इतना बड़ा उत्सव, इतना बड़ा खाना-वाना, पर तुम दोनों जने उपवास कर पड़े रहोगे। भतीजी के मंगल-अमंगल का ख्याल भी नहीं है तुझे? भाई भावज का सर नीचा करेगी? नीचता की भी क्या कोई सीमा नहीं होती?

भाई तुझ से बीस साल बड़ा है, पिता के समान। पिता की तरह ही उसने तुझे पाल-पोस कर बड़ा किया है, शादी भी की है। और फिर बारह महीने तीसों दिन तुझे और तेरे पागल पति को पाल रहा है। तेरे लिए कमरा बनवा दिया है। ऐसे भाई ने अगर तेरे पागल को डांटा धमकाया भी है या एक धक्का ही दिया है, तो उसके इस व्यवहार को ही तू याद रखेगी। तेरे मन में एहसान नाम की कोई चीज़ नहीं।

ऐसा अनुचित व्यवहार करने के बाद भी छवि कैसी दिख रही होगी, यह देखने के लिए ही शायद छवि के टाईल वाले कमरे के आगे रथ यात्रा जैसे समय की भीड़ लगी थी।

कुछ लोग उससे सहानुभूति भी जता रहे थे। हालांकि वह भी चुपचाप ही।

क्योंकि जिसका घर है, उसके विपक्ष में अगर कुछ कहना भी हो तो चुपचाप ही कहना चाहिए। चुपचाप ही कहा जा सकता था, 'अहा।' कहा जा सकता था—छोटा बहनोई पागल है, नासमझ है, तभी तो वैसा कर बैठा, पर तुम तो विलक्षण ज्ञानी आदमी हो, लड़की की शादी करने बैठे हो, ऐसे शुभ दिन में तुम्हें क्या उसे गर्दन से पकड़ धक्का मार गिराना चाहिए था? मजबूरी में बहन तुम्हारे पास पड़ी हुई है, तभी तो ऐसा कर सके तुम। पैसे वाली भाग्यवान बहन अगर होती तो क्या ऐसा कर सकते थे?

पर ये ही लोग नीचे जाकर उल्टा राग अलाप रहे थे।

और वे लोग ऐसा करते भी क्यों नहीं? वे कोई ईसा मसीह तो थे नहीं, चैतन्य महाप्रभु भी नहीं थे कि उनके शरीर में गुस्सा नहीं भरा होता। उस सहानुभूति के जवाब में अगर छवि आंखों से आंसू न टपकाये और ऊपर से बोले—यह सब बातें मुझे अच्छी नहीं लग रही है, आप लोग नीचे जाइये—तो फिर? तो फिर क्या ईसा मसीह और चैतन्य को भी गुस्सा न आता?

पर यह तो थी सांध्य लीला। जब काफी रात बीत चुकी, बाहर के लोग चले गये, खाना खाने के लिए सिर्फ घर के लोग बच गये, जब सतीनाथ अपने दामाद

के रूप और गुण पर मोहित हो रहे थे, तभी वे एकाएक पूछ बैठे—क्षितीश ने खाना खाया ?

उसी समय उन्हें याद आया कि बेवकूफ की तरह एक गंदे तौलिये पर दुनिया भर की पूरियां, मिठाइयां, चाप आदि लेकर सभी मेहमानों के बीच क्षितीश खाने बैठ गया था। यह देखकर क्षितीश को गर्दन पकड़ कर निकाल दिया था उन्होंने।

काम उन्होंने गलत किया था, यह एहसास सतीनाथ को भी था, पर उनका भी तो हाड़-मांस का ही शरीर था।

बारात वाली बस आयी ही थी। कन्यादान के लिए सतीनाथ सुबह से उपवास किये बैठे थे, उद्वेग और उत्कंठा से पीड़ित, आशंका से ग्रस्त समय में ऐसा कुत्सित दृश्य देख कर सह जाना क्या आसान काम था ? सतीनाथ भी सह नहीं पाये थे। पर पागल इससे अपने को अपमानित समझ बैठेगा, इसकी भी उन्हें आशंका नहीं थी।...घूम फिर कर हलवाई के पास जा बैठेगा, ऐसा ही उन्हें अन्दाज था। मालूम तो उन्हें तब चला जब शादी के समय छवि एकाएक गायब हो गयी। छवि के बिना सिर्फ उन्हें ही असुविधा हुई हो, सो बात नहीं, सारा घर विच्छृंखल दिखाई देने लगा। सब की जबान पर 'छवि छवि' की रट लगी हुई थी।

उसी दौरान, कन्यादान के समय बड़ी साली ने छवि की गैर-हाजिरी के कारण को स्पष्ट किया। बोली—क्या मालूम भाई, सुन रही हूं तुमने अपने बहनोई को गर्दन पकड़ कर निकाल बाहर किया। इसीलिए तुम्हारी बहन दुखी होकर अपने पति को लेकर अपनी कोठरी में जा बैठी है। तब से नीचे नहीं उतरी है। गुस्से में सारा खाना आंगन में बिखेर कर चली गयी है। माना वह तो पागल है, पर तुम्हारी बहन, वो तो पागल नहीं।

इस बात को सुनकर सतीनाथ भी गुस्से से पागल हो उठे। करते भी क्या ? कन्यादान के आसन पर बैठे थे, इसलिए उचित व्यवस्था नहीं कर पा रहे थे। पर इस समय उनके मन में उदारता का सुर बज रहा था, इसलिए उन्होंने पूछा—क्षितीश ने खाना खाया है ? अनुकूल, संध्या आदि करीब पचासों लोगों ने छवि से जाकर खुशामद की। कहा--सब के बीच आकर बैठो, सब के साथ बैठकर खाना खा लो। पर छवि अडिग रही। पहाड़ की तरह स्थिर बनी रही। उसे कोई नीचे उतार नहीं सका।

इस बदतमीजी की पूरी कहानी जब उन्होंने फिर पत्नी से सुनी तो उसके बाद भी उनके मन में उदारता का राग बजेगा, इसकी उम्मीद नहीं की जा सकती थी। वह गुस्से में तिलमिलाकर तीन तल्ले पर चढ़ कर आये और बोले तुम्हारे आगे हाथ जोड़ता हूं छवि। चल, सब लोगों के साथ-साथ खायेंगे। क्या

छवि की आवाज कांप उठी ? या सतीनाथ के मन का भ्रम था ! शायद भ्रम ही था। छवि ने साफ-साफ आवाज में कहा—यह सब क्यों कर रहे हो भैया ! मैं कह तो रही हूं कि मुझ में खाना खाने की हिम्मत नहीं है। मैं नहीं खा सकूंगी। दर्द से सिर फटा जा रहा है।

सतीनाथ की आंखों के सामने एकाएक पागल बहनोई के खाना बिखेरने का दृश्य उभर आया, और साथ ही एक और बात। पागल हो या बावला, वह छवि का पति तो था। वह नरम आवाज में बोले—ठीक है। मत खा। पर हम लोगों के बीच एक बार आकर बैठ तो। क्षितीश का खाना ऊपर भिजवा रहा हूं। उसे खिलाकर तू चली आ।

छवि उसी तरह अडिग खड़ी रही। बोली—वो नहीं खायेंगे भैया।

सतीनाथ का धैर्य टूट गया। नीचे उतरते वक्त कड़ी आवाज में बोले—बेईमान तो ऐसे ही होते हैं।

उनके उतरने के साथ ही साथ अमल ऊपर उठ आया। खाना खिलाने का अंत तक का भार उसने अपने ऊपर लिया था। पर एक सामान्य लड़की के धनुष भंग से प्रण के कारण घड़ी की सुई बारह बजे से एक तक पहुंच गयी।

अमल इन लोगों का रिश्तेदार नहीं था, कुछ भी नहीं था, मुहल्ले का था बस। इतनी जिम्मेदारी उसे अपने सिर पर लेने की जरूरत भी नहीं थी, फिर भी उसने ली। अपने सिर पर। आदत से मजबूर होकर भी। पर इससे ज्यादा रात हुई तो उसके अपने घर के लोग भी क्या कहेंगे।

सीढ़ियों पर चढ़ते समय अमल सतीनाथ से धक्का खाते-खाते बचा।

सतीनाथ ने एक बार देखा, फिर क्षुब्ध होकर व्यंग भरी आवाज में बोले—अरे तो तुम बाकी थे ?

सतीनाथ नीचे उतर गये।

मुहल्ले के पड़ोसी, हमेशा की जान-पहचान। सतीनाथ हैरान नहीं हुए, पर उन्हें उम्मीद भी नहीं थी।

उम्मीद अमल को भी नहीं थी।

उसने भी सब सुन रखा था। घटना से लेकर टिप्पणी तक। पर फिर भी उसको अपने ऊपर कुछ भरोसा था। एक बार उसको देखने का कौतूहल भी हो रहा था। इतना कठोर होने पर भी कैसी दिखती है छवि, शायद यही देखने की इच्छा अमल को हो रही थी।

छवि उस समय आहिस्ते से दरवाजा बंद करने जा रही। सोच रही थी अब शायद वह थोड़ा सो सके।

अमल को देखकर उसका हाथ रुक गया। दरवाजा आधा ही बंद रहा।

अमल ने सोचा, झट से एक दियासलाई जला लूं, देखूं कैसा दिख रहा है उसका चेहरा। पर उसने ऐसा किया नहीं। सिर्फ बोला—बत्ती जलाओ न।

छवि ने पहले की ही तरह शुष्क आवाज में कहा—क्या जरूरत है ?

—जरूरत कुछ भी नहीं है, पर तुम भूतग्रस्त सी लग रही हो—इसलिए।

छवि ने कोई प्रतिवाद नहीं किया, चंचलता भी नहीं प्रकट की। कैशोर्य की स्मृति की मर्यादा के लिए थोड़ा मुस्करायी भी नहीं। उस आधे छाये अंधकार में छवि छवि की तरह ही खड़ी रही।

छवि के कमरे के अंदर की चीजें अमल देख नहीं पा रहा था। आधे उढ़काये हुए दरवाजे पर हाथ रखकर छवि खड़ी थी, इसलिए कमरे के अंदर झांकने की व्यर्थ चेष्टा कर अमल बोला—क्षितीश बाबू सो रहे हैं क्या ?

अब छवि बिना कारण ही थोड़ा हंसकर बोली—हां।

—मैंने सुना है छवि, सतीनाथ भैया ने उन्हें थोड़ा ऐसा-वैसा कुछ कहा है। पर तुम्हें इतना नहीं करना चाहिए था। सुनकर इतनी शर्म आ रही थी।

अब छवि सचमुच हंस पड़ी।

और अमल को एक बार फिर लगा, सच में छवि भूतग्रस्त सी लग रही है। उसका हंसना भी कितना विचित्र था। हंसकर ही बोली छवि—मेरी बेशर्मी पर तुम्हें क्यों शर्म आयी अमल ?

क्या अमल सचमुच में दियासलाई की बत्ती जलायेगा ? देखेगा सिर्फ बेशर्म ही नहीं, अत्यन्त निष्ठुर इस छवि का चेहरा कैसा दिख रहा है ?

अंधकार की छाया में छवि को पहचानना भी मुश्किल था।

छवि का भैया ठगा गया था। अनजाने में एक अधपगले लड़के के साथ उसने बहन की शादी कर दी थी। फिर भी छवि ने कभी भाई के खिलाफ कोई शिकायत नहीं की थी, छवि के जेठ ने पागल भाई को पत्नी समेत यहां धक्का दे दिया था, इसके लिए भी छवि ने उन्हें धिक्कारा नहीं था।

अमल की कायरता को भी छवि ने कभी नहीं धिक्कारा। सहज स्वाभाविक ढंग से छवि काम-काज करती थी। शादी के पहले जिस तरह इस घर की जिम्मेदारी संभालती थी, शादी के बाद भी उसी तरह उसने सब कुछ संभाला। अधिक उसने जो कुछ पाया, वह था पागल को संभालने की जिम्मेदारी।

पर यह सब होते हुए भी उसने एक विचित्र सा आवरण अपने ऊपर चढ़ा रखा था। अपने को उसी आवरण में छुपा रखा था। अमल को क्या नहीं मालूम था—वह इस घर में हमेशा आता रहता है।

अगर क्षितीश थोड़े समय के लिए भी दिखाई नहीं पड़ता तो छवि उत्कंठा से भर जाती। गपशप के बीच एकाएक उठ जाती। कहती—हो गयी छुट्टी। लगता

है काफी अरसे से मेरी पूंजी कहीं दिखाई नहीं पड़ी है। जाऊं देखूं कहीं बैरागी बनकर तो नहीं चला गया ? . . . कभी कहती—अरे मेघ तले शाम ढल गयी, जाकर देखूं ? मेरे प्रभु रसोई में जाकर तो कहीं हांडियां नहीं चाट रहे ? फिर कहती—वो देखो। चेहरा उदास कर कृपानिधान अचानक चल पड़े हैं। हम लोग जमकर गपशप कर रहे हैं, यह भी उनसे नहीं सहा जाता। चलती हूं बाबा, नहीं तो भोलेनाथ रौद्र रूप धारण कर लेंगे। पागल के पागलपन पर यदि कभी किसी ने असंतोष जाहिर भी किया तो छवि ने कभी उस पर गुस्सा नहीं किया। उल्टा उसी के सुर में सुर मिला कर कहा—बोलो न भई, तुम सब लोग मिलकर बोलो ताकि मेरा काम कुछ कम हो। जीजा समझ कर अधिक इज्जत न देकर थोड़ा प्रहार-वहार करो तो शायद थोड़ा उपकार हो।

यह सब वह हंस-हंस कर ही कहती रहती।

पर आज पति के उस थोड़े से सच्चे अपमान से छवि का रुख ही बदल गया।

फिर तो सतीनाथ की पत्नी की बात को ही सच मानना पड़ेगा। सोचना पड़ेगा—ईर्ष्या में थोड़ा सा बहाना पाकर छवि ऐसा आचरण कर रही है। भैया की लड़की की इतनी अच्छी शादी हुई, ऐसा सुंदर दूल्हा आया, इसी से उसकी छाती फटी जा रही है।

छवि के लिए ऐसी बातें सोची भी नहीं जा सकती थी।

पर अब छवि ऐसा सोचने के लिए सबको मजबूर कर रही थी।

इस अशोभन आचरण और अजीब व्यवहार से वह लोगों को सोचने पर बाध्य कर रही थी कि इस व्यवहार का ईर्ष्या ही एकमात्र कारण था।

वरना आज तक छवि की यह पतिभक्ति कहां थी ? बल्कि उसी की भाभी ने कहा—पति पागल है, इसको लेकर छवि के मन में कोई दुख है, लगता ही नहीं। कितना अद्भुत अटूट मन है उसका।

छवि का वह अटूट मन अब टूट गया था—अवश्य हो ईर्ष्या की जलन से। अपने अंदर के इस मनोभाव को छुपाकर अमल सिर्फ इतना बोला—तुम बहुत निर्मम हो छवि।

छवि ने कहा—तुम्हें आज पता चला ? फिर बोली—लेकिन तुम भी चले आये, क्या बात है ? खाना खाने के लिए बुलाने के लिए आये हो क्या ?

आहत दृष्टि से अमल ने छवि को देखने की कोशिश की। उसके बाद बोला—नहीं, तुम्हें बुलाने आऊं इतना दुस्साहस मुझमें नहीं है। पर सोच रहा हूं क्षितीश बाबू को और स्वयं को भूखा रखकर भैया को कितना दंड दे सकी ? सिर्फ उस बेचारे सज्जन को मुश्किल में डाल रखा है। बड़े उत्साह से उन्होंने मुझसे कहा था—तुम खुद मुझे परोस कर खिलाना समझे। ये लोग अच्छी तरह से देते वेते नहीं।

बात को खत्म कर अमल फिर धीरे से मुस्कराया। बोला—हालांकि उन्होंने 'ये लोग' कहा नहीं था, कहा तो था 'साले लोग।'

छवि की आवाज क्या इतनी देर के उपवास के कारण सूख गयी थी, या इतनी देर तक के अपने अशोभन आचरण के पश्चाताप से ? छवि की आवाज वैसे तो सुरीली थी। हो सकता है कभी सुरीली आवाज रही हो छवि की, पर अब नहीं थी। इस समय सूखी आवाज में ही छवि ने कहा - तुम्हारे परोसने की बाट तो उन्होंने जोही नहीं थी, खुद ही तो . . .।

—रहने भी दो छवि ये बातें . . . तुम खाओ चाहे नहीं, उन्हें जरा जगा दो, मै अपना वचन तो निभाऊं।

छवि रूखे स्वर में बोली— वो नहीं खायेंगे।

—छवि। वाकई तुम हद से बढ़कर बदतमीजी पर उतर आयी हो। हर चीज़ की कोई सीमा होती है। आज गुस्से में आकर उन्हें खाना खाने नहीं दोगी, पर कल तो देना पड़ेगा। तब ?

छवि अब हंस पड़ी।

सचमुच हंस पड़ी, ठहाका लगाकर।

बोली—वो कल भी नहीं खायेंगे, अमल, कल नहीं, परसों नहीं, फिर कभी भी नहीं।

इस साधारण से गुस्से की बात पर अमल बुरी तरह डर क्यों गया ? ध्वनि की हंसी से क्या अमल यह समझ बैठा कि छवि को भूत ने पकड़ लिया है।

इसीलिए अमल 'छवि . . .' कहकर आर्तनाद कर बैठा। इस आर्तनाद का छवि ने कोई जवाब नहीं दिया। वह हिली तक नहीं।

और छवि की इस निश्चल मूर्ति की तरफ देखकर अमल बहुत अरसे से बिसरी हुई एक बेवकूफी कर बैठा। करीब आकर, दरवाजे को पकड़े हुए छवि के हाथ को कस कर अपने हाथ में दाब लिया। बोला—छवि बत्ती जलाओ।

धीरे से छवि ने हाथ छुड़ा लिया। बोली—क्या होगा ?

—मैं देखूंगा।

—देखने लायक कुछ है नहीं अमल।

—दरवाजा छोड़ो। मुझे देखने दो।

छवि फिर भी नहीं हटी। केवल उसकी आवाज में एक कठोरता आ गयी। बोली—सच में अमल, देखने के लिए कुछ है नहीं।

अब क्या अमल भी भूतग्रस्त सा बन गया था ?

अमल क्यों ऐसा दिख रहा था। क्या अमल भूल गया था कि उसकी इस लंबी गैरहाजिरी में नीचे लोग क्या सोच रहे होंगे ? उनके कैशोर्य का इतिहास किसी

से छुपा नहीं था, बहुत देर के बाद अमल को याद आया कि नीचे के तल्ले में एक और भी दुनिया है। उसे अब नीचे उतरना है। इसलिए उसने कहा—छवि यह क्या बात है ? क्या तुम पत्थर की बनी हो ?

अब छवि अपने से भी जूझ नहीं पा रही थी।

—हो सकता है।

—नीचे उतर कर उन लोगों को क्या कहूंगा, छवि ?

—कुछ भी नहीं अमल। तुमसे मैं दुहाई मांगती हूं। दूल्हा-दुल्हन* बंगाल में रिवाज है कि विवाह के उपरांत दूल्हा-दुल्हन को आराम करने के लिए एक अलग कमरे में ले जाते हैं, इसे बासर घर कहते हैं और वे उसमें अपने निकट संबंधियों के साथ रात भर हंसते बतियाते हैं। बासर घर में बैठे होंगे। उनकी यह रात बर्बाद मत होने दो।

—छवि यह तुम कैसे कह पा रही हो ?

—कहना ही पड़ेगा अमल। मैं सीमा रेखा को भूल कैसे सकती हूं ? उनके इस आह्लाद के समय क्या मैं अपना . . .।

– सारी रात तुम इसी तरह रहोगी।

—नहीं, मैं सोऊंगी। मुझे बड़ी नींद आ रही है। नींद से लगता है कि मैं गिर पड़ूंगी।

और इतना कहकर बदतमीज छवि ने एकाएक अमल के मुंह पर दरवाजा बंद कर दिया।

खट से चिटकनी बंद होने की आवाज आयी।

हां, दरवाजा बंद किए बिना अब छवि अपने से भी जूझ नहीं पा रही थी। सतीनाथ की बात ही अब उसे ठीक लग रही थी। हर चीज़ की कोई सीमा होती है। होनी चाहिए।

कुछेक घंटे ठंडे से अंधकार में डूबे रहने पर छवि फिर हिम्मत जुटा पायेगी। कल सुबह स्वाभाविक रूप से नीचे उतर कर स्वाभाविक आवाज में बोल सकेगी —कल शादी के हो-हंगामें के बीच मैंने तुम लोगों को परेशान नहीं किया, पर अब शायद और देर करना उचित नहीं होगा। देखिए न एक बार जाकर। जो कुछ करना है, आप लोगों को ही तो करना है।

---

* बंगाल में रिवाज है कि विवाह के उपरांत दूल्हा-दुल्हन को आराम करने के लिए एक अलग कमरे में ले जाते हैं। इसे बासर घर कहते हैं और वे उसमें अपने निकट संबंधियों के साथ रात भर हंसते बतियाते हैं।

ठगिनी

सुबोध घोष

सनातन और उसकी लड़की सुधा, जैसा बाप वैसी बेटी।

एक के बाद एक अजीब सी घटना घटती, और उस घटना की वेदना से जिस तरह बाप का दिल टूट जाता, उसी तरह लड़की भी दुख के मारे मुंह उठाकर देखती तक नहीं। आंचल से आंखें ढक कर सिसक-सिसक कर रोने लगती। नजदीक खड़े जो भी ये दृश्य देखते, उनकी आंखें भी गीली हो जातीं, वे भी गहरी सांस भरते। अहा! दुख की बात तो है ही। इकलौती लड़की के सिवा जिसका और कोई नहीं, उस लड़की को विदा करते समय छाती तो फटेगी ही।

सुधा की शादी के दूसरे दिन जब दूल्हा, बाराती और साथ में आये लोग लौटने के लिए तैयार होने लगे, सनातन फूट-फूट कर रोने लगा। सुधा भी सिसकती रही।

पर एक महीना बीतते न बीतते मुहल्ले के लोगों ने देखा और दूल्हे को और साथ ही और बहुत से लोगों को अच्छी तरह मालूम चल गया कि कहावत बिल्कुल सच है— जैसा बाप वैसी बेटी। जितना चतुर सनातन खुद था, उतनी ही चालाक उसकी बेटी सुधा थी।

पुलिस का भी कहना था—जैसा बाप, वैसी बेटी। अब की बार की घटना को लेकर यह तीसरी घटना थी। पहली बार तारकेश्वर और दूसरी बार बशीर-हाट में इस तरह के धोखा-धड़ी की घटना घटी थी। दो महीने में ही दो केस। यह तीसरा था। यह तीनों घटनाएं लगता है, एक ही बाप-बेटी की जोड़ी की करामात थी। लोगों को ठगना इनका पेशा था।

भाटपाड़ा मुहल्ले में बाजार के नजदीक एक गली में एक छोटे से कमरे का ताला पुलिस ने तोड़ा। पर वहां पुलिस को तिनका तक नहीं मिला। सनातन और सुधा, बाप और बेटी अपना अजीब सा खेल दिखाकर कहां गायब हो गये, कोई नहीं बता पाया। मुहल्ले वाले, जो एक महीने पहले बाप बेटी के दुख में

शामिल होकर रोये थे, अब उन्हें अपने पर शर्म आती थी। वास्तव में यह संसार एक चिड़ियाघर के समान है। यहां कौन सा कांड नहीं होता।

किसी ने कहा—चिड़ियाघर में भी ऐसी कुत्सित घटना नहीं घटती साहब। आदमियों के संसार में ही घटती है। दूसरे ने कहा—शर्म की बात तो यह है कि हमारी ही आंखों के सामने, हमारे ही मौहल्ले में ऐसी अजीब घटना घट गयी। बड़े ताज्जुब की बात है। कहां से बाप-बेटी आये और थोड़े ही दिनों में सारे मुहल्ले वालों को बेवकूफ बना कर खिसक गये। किसी ने शक तक नहीं किया।

हां, शक किसी को नहीं हुआ था। उस तरह के रुदन के पीछे एक योजनाबद्ध बेईमानी मुस्करा रही थी, यह बात मुहल्ले वाले, बाराती और दूल्हा, कोई नहीं जान पाया था। और जानता भी कैसे? बाप और बेटी का उस दिन का रोना-धोना याद आने पर अब भी नहीं लगता था कि उसके पीछे कोई बेईमानी थी। यही लगता था कि हो सकता है कोई और बात हो।

पुलिस ने कहा—नहीं। और कोई बात नहीं है। ये दोनों बाप-बेटी नहीं हैं। हर नयी जगह पर जाकर नया नाम, नयी जात बताकर कुछ दिन रहते हैं—और उसके थोड़े दिनों के बाद ही इस तरह की घटना घट जाती है। और वे दोनों लापता हो जाते हैं।

मौहल्ले वाले दुख और शर्म से अपराधी सा चेहरा बना कर उस आदमी को देखते रहते जिसने महीने भर पहले सिर पर सेहरा बांध कर इसी मुहल्ले में किसी गरीब की लड़की से शादी कर उन्हें मुक्ति दिलायी थी। मोहल्ले के कुछ छोकरे तो इस घटना को लेकर खिल्ली उड़ाते।

दूल्हे सज्जन थोड़ी ज्यादा उम्र के ही होंगे। शायद पैंतालीस से ज्यादा ही। नैहाटी में कपड़े की दुकान थी। पहली पत्नी मर चुकी थी। बाल-बच्चे नहीं थे। व्यवसायी थे। दूसरी शादी की इच्छा भी नहीं थी। तैयारी भी नहीं। पर जब से उनका सनातन बाबू के साथ परिचय हुआ और उनकी गरीबी का हाल मालूम हुआ तो इस उम्र में भी संसार से एक मीठी मुस्कान पाने के लिए उनका मन तरस उठा। इसी गली के उस कमरे में, सनातन बाबू के बुलाने पर थोड़ी-सी खीर और हाथ की बनी मिठाई खाने के लिए वे आये थे, और उसी दिन मन ही मन निश्चय भी कर लिया कि वे सनातन बाबू को इस कन्या के बोझ से मुक्ति दिला देंगे। अपनी ही जात के किसी गरीब आदमी की इतनी खूबसूरत लड़की इस गली के अंधेरे में पड़ी रहे, यह सोच कर नैहाटी के उस व्यवसायी के मन में बड़ा दुख पहुंचा था। लड़की के पिता सनातन बाबू को नकद पांच सौ रुपए देकर, दान-दहेज के सामान के लिए भी पैसे भर कर, लड़की के लिए दस तौले के जेवर लेकर, सनातन बाबू की सम्मत्ति से शुभ दिन का मूहूर्त निकाल कर विवाह का निश्चय

कर ही लिया गणेश वस्त्रालय के मालिक ने। बेचारा। घूंघट में छुपे सुंदरी सुधा के चेहरे को देखकर कृतकृतार्थ होकर एक सुबह उसने उस गली से विदायी ली। आज वही आदमी पुलिस को लेकर उस गली में आ खड़ा था। शादी के सात दिनों के बाद सनातन खुद नैहाटी जाकर सुधा को लेकर इसी घर के पते पर लौट आये थे। उसके बाद कितने दिनों तक वे लोग यहां पर टिके थे, कोई भी नहीं बता सका। चिट्ठी देने पर भी जब कोई खबर नहीं मिली तो नये दूल्हे खुद चले आये थे। घर का दरवाजा बंद देखकर वे बिल्कुल चौंक उठे। पुलिस को सूचना दी गयी, और पुलिस आकर बोली—हां, इस घटना को लेकर यह इस प्रकार की तीसरी घटना है। उस बाप ने अपनी बेटी की और भी दो शादियां कीं, और शादी के कुछ ही दिनों बाद बाप-बेटी दोनों ही गायब हो गये। उनका असली नाम तक पुलिस को पता नहीं।

तारकेश्वर में वे दोनों ब्राह्मण थे, और बशीरहाट में कायस्थ। भाटपाड़ा में आकर वे वैद्य बन गये थे। तारकेश्वर में जो मुकदमा दायर हुआ था वह था प्रसन्न चक्रवर्ती नाम के एक बाप और सुनयना नाम की उसकी बेटी के खिलाफ। बशीरहाट में जो घटना घटी, वह थी सदानन्द घोष और उसकी बेटी माधवी को लेकर। और अब भाटपाड़ा की इस गली में सनातन सेन और सुधा सेन नाम से एक अद्भुत बाप और उसकी विचित्र बेटी अपने बेईमानी की यादगार छोड़कर लापता हो गये थे। तीन निरीह और विश्वासी आदमियों की जिंदगी में झूठी शादी और झूठी सुहागरात का ढोंग रचा कर बड़ी निर्दयता से उन्हें ठग कर इतनी बड़ी दुनिया में, जनता की इस भीड़ में कहां छुप गये, एक ठग और दूसरी ठगिनी—किसी को पता नहीं चला। जैसा बाप वैसी ही बेटी या जैसी बेटी वैसा ही बाप। चाहे कुछ भी कह लीजिए।

कुछ सोचता हुआ पुलिस का आदमी भाटपाड़ा की गली से निकल गया। मुहल्ले वाले बेवकूफ से खड़े सोचते रहे। और गणेश वस्त्रालय का मालिक, एक शांत सुंदर हंसते हुए चेहरे को याद कर दुख और विस्मय से सिहर उठा। उफ! लोग इस तरह से भी ठगे जाते हैं।

भाटपाड़ा के लोगों को मालूम नहीं, पुलिस को भी अंदाज नहीं, और गणेश वस्त्रालय का मालिक भी इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकता था कि ठीक उसी समय राणाघाट के किसी मुहल्ले के छोटे से घर की खिड़की से बाहर देखती हुई, अपने भाग्य को किसी निष्ठुर छलना के जाल में समर्पित करने के लिए किसी की आंखों में खुशी छलक रही थी। विजय बाबू नाम के किसी सज्जन की करबी नाम की एक तरुणी कन्या रमेश नाम के किसी युवक के साथ बातें कर रही थी।

खिड़की के पास खड़ी करबी स्वाभिमान भरे स्वर में धीरे से बोली—आप

रोज-रोज क्यों ग्राते हैं ?

रमेश खुशी से उछल पड़ा। बोला—किसी ज्योतिषी ने मेरा हाथ देखकर क्या कहा है, जानती हो ? जो लड़की मेरी पत्नी बनेगी न, उसके नाम का पहला अक्षर 'क' होगा।

करवी हंसने लगी। बोली—लेकिन आप यह क्यों नहीं समझते कि रोज-रोज इस तरह से खिड़की के पास आकर खड़े रहने से मेरी बदनामी के सिवा और कुछ नहीं होगा।

साईकिल के सहारे टिक कर सड़क पर खड़ा-खड़ा रमेश बोला—बिना आये तो मैं रह नहीं सकता करवी। जिस दिन से तुमने पहली बार मेरी तरफ देखा, उसी दिन मैं समझ गया कि मेरी सारी शांति और सुख तुम ही हो।

करवी बोली—यह आपका ख्याल पैसे वालों का ख्याल जैसा ख्याल है। अभी आने में अच्छा लगता है, पर कुछ दिनों के बाद यहां की बात भूल से भी याद नहीं आयेगी। आने में अच्छा भी नहीं लगेगा और आएंगे भी नहीं। तो फिर क्यों झूठ-मूठ . . .।

रमेश बोला—न तो में पैसे वाला हूं, और न ही पैसों वालों जैसा ख्याल रखता हूं। मैं अपने प्राणों की पुकार सुन कर यहां आता हूं।

करवी बोली—बिल्कुल नहीं। आप यों ही कह रहे हैं।

रमेश—यों ही ?

करवी—क्या करते हैं आप ?

रमेश—आर्टिस्ट हूं।

करवी—इसका मतलब ?

रमेश—तुम कभी कलकत्ता रही हो ?

करवी—हां, कुछ दिन रही थी।

रमेश—सिनेमा-विनेमा देखा है कभी ?

करवी—हां, दो एक देखे थे।

रमेश बोला—सिनेमा घर की दीवारों पर जो बड़ी-बड़ी रंगीन तस्वीरें टंगी रहती हैं, उन पर कभी नजर पड़ी है तुम्हारी ?

करवी बोली—हां।

रमेश बोला—मैं उन तस्वीरों को बनाता हूं।

करवी ने पूछा—इसके बदले में आपको रुपए पैसे मिलते हैं ?

रमेश बोला—हां, जरूर। यही तो मेरा रोजगार है। और ईश्वर की दया से काम-धाम अच्छा चलता भी है।

करवी ने पूछा—महीने में पचास रुपए मिल जाते हैं ?

रमेश हंसकर बोला — बिल्कुल ।

करवी — ठीक-ठीक कितने मिलते हैं ! बोलिए न !

रमेश—चाहे कुछ भी । तुम्हें सुख से रखूंगा ।

करवी मुंह फुलाकर बोली—हां, हां, कंगाल की लड़की को सुख से रखने के लिए साल में एक जोड़ा साड़ी और रोज शाम दो मुट्ठी चावल भर की ही तो जरूरत पड़ती है । इससे अधिक की क्या बात है ।

रमेश सकपका गया । बोला—ऐसा क्यों कहती हो ! क्या मैं साल भर में एक जोड़ा धोती ही पहनता हूं ? या रोज शाम दो मुट्ठी चावल ही खाता हूं ?

करवी हंसकर बोली—तो कहिए न आपके पास रुपए-पैसे हैं !

रमेश बोला—तुम्हें पूरी तरह सजाकर रखने के लिए; और तुम्हें कष्ट न पहुंचे, इतने पैसे तो हैं ही । लेकिन उतना अधिक भी नहीं ।

दूर पर किसी मारवाड़ी का आलीशान मकान था । उस तरफ हाथ दिखा कर रमेश बोला—उतने पैसों वाला मैं नहीं हूं । तुम भी तो नहीं हो करवी, इसलिए . . . ।

करवी बोली—शादी का खर्च कहां से आयेगा ?

रमेश थोड़ी देर चुपचाप सोचता रहा । उसके बाद उदास होकर बोला—विजय बाबू के पास क्या कुछ भी नहीं है ?

करवी की आंखें छलछला गयीं—रहने से क्या . . . ।

रमेश बोला—शादी में कितना खर्च आयेगा ?

करवी बोली—जहाँ तक मेरा ख्याल है, भले लोगों की शादी में कुछ भी न कर सिर्फ ईश्वर का नाम लेकर शादी की जाय, तब भी तो कम से कम दो हजार रुपए तो लगते ही हैं ।

विस्मय के साथ रमेश ने कहा—दो हजार !

करवी की आंखों में शक और नाराजगी का भाव खिला । बोली—क्या सोच रहे हैं ? मामूली दो हजार की रकम भी आप नहीं जुटा सकते ?

उदासी के साथ रमेश ने कहा—कर तो सकता हूं । पर जल्दबाजी करने पर अलग-अलग जगह से एक सौ, दो सौ, इस तरह से जुगाड़ करना पड़ेगा । इसके अलावा और कोई उपाय नहीं ।

करवी बोली—तो उधार लीजिए । उधार कभी न कभी चुका ही सकेंगे । पर देर करने से . . . ।

कहते कहते करवी एकाएक चुप हो गयी । फिर उसकी आंखें छलछला गयीं ।

रमेश ने पूछा—क्या हुआ ?

करवी बोली—सच में तुम मुझसे प्यार करते हो ?

रमेश—हां, करवी।

करवी—तो थोड़ा जल्दी ही इन्तजाम करो। अगर तुमसे नहीं होता तो शायद मुझे मरना ही पड़ेगा।

रमेश विचलित होकर बोला—क्या कह रही हो ?

करवी बोली—ठीक कह रही हूं। वैद्यबाटी के किसी बूढ़े विधुर के साथ मेरी शादी करीब-करीब तय हो चुकी है। शादी के खर्च के लिए पिताजी को वे तीन हजार रुपए देना चाहते हैं।

सुनकर एकाएक रमेश के साईकिल की हैंडल की पकड़ थोड़ी कस गयी। उसकी आंखें और चेहरा मानों एकाएक किसी प्रतिज्ञा से दृढ़ हो उठे। करवी को देखते हुए उसने कहा—यह मैं कभी नहीं होने दूंगा, करवी। विजय बाबू को तुम मना कर देना। उस बूढ़े का पैसा वे न छूएं।

फिर साईकिल के पैडल पर पैर रखते हुए रमेश ने चिल्लाकर कहा—मैं तुम्हें वचन दे रहा हूं करवी। विवाह का सारा खर्च मेरा रहा। दस दिनों के अंदर मैं तुम्हें अपने पास ले जाऊंगा।—कहकर रमेश चला गया।

छोटा-सा एक उत्सव हुआ राणाघाट के उस छोटे से घर के छोटे से आंगन में। इन थोड़े ही दिनों में मुहल्ले वाले विजय बाबू नाम के इस नवागन्तुक, गरीब सज्जन और उनकी शांत, नम्र और सुंदर सी लड़की के व्यवहार से पूरी तरह प्रभावित हो चुके थे। विजय बाबू ने खाने पीने की थोड़ी व्यवस्था करनी चाही, पर मौहल्ले वालों ने मना कर दिया—खामख्वाह खर्च करने की कोई जरूरत नहीं। आप जैसे लोगों के लिए यह खर्च नाजायज है।

सिर्फ डेढ़ हजार रुपयों के जेवर से लड़की को सजाकर और बाकी का खर्च नाम के वास्ते कर, विजय बाबू ने शुभ काम सम्पन्न कर डाला। मौहल्ले वाले इतना ही जान सके कि बेचारे सज्जन ने जीवन भर की संचित पूंजी खर्च कर, लड़की को सोने के आभूषणों से सजा कर उसकी शादी की। वैसे इतना भी करने की कोई जरूरत नहीं थी क्योंकि लड़के वालों की कोई मांग नहीं थी। खैर कुछ भी हो—विजय बाबू की एक ही तो सन्तान थी। उसे पालने में बेचारे भिखारी बन गये थे। लड़की उनकी बड़ी प्यारी जो थी।

रमेश के दिए रुपयों से खरीदे जेवरों से सज कर रमेश की परिणीता करवी रमेश के साथ चल पड़ी। लड़की की विदाई पर वही करुण दृश्य दिखायी पड़ा। जिस दृश्य ने एक बार तारकेश्वर, एक बार बशीरहाट, और एक बार भाटपाड़ा के सारे मौहल्ले वालों की आंखें गीली कर डाली थीं। विजय बाबू सिसक-सिसक कर रोने लगे। करवी भी सिसक उठी।

राणाघाट के मोहल्ले के बहुत से लोगों को उदास कर पति के साथ करवी

पति के घर के लिए चल पड़ी। और उसी दिन शाम को कलकत्ते के बाग बाजार की एक गली के एक कमरे में आकर खड़ी हुई रमेश की नव विवाहित पत्नी।

उसके दो दिन बाद बाग बाजार की गली का वह छोटा-सा मकान सारी रात उत्सव की रोशनी से जगमगाता रहा। उस रोज सुहागरात थी। चारों ओर खुशी और कोलाहल का समारोह था। इस दुनिया में रमेश के अपने कहलाने लायक जो भी लोग थे, उनमें से कुछ ने आकर रमेश के जीवन के उत्सव की इस रात को सफल बनाने का भार उठाया था। एक मौसी और उसकी तीन लड़कियां भी आयी थीं। एक चाचा अपने दस बेटे-बेटियों को लेकर आये थे। रमेश के दो दोस्तों की माताएं और दोस्तों की पत्नियां भी आयी थीं। करवी को देखकर सभी खुश हुए। सुबह और शाम व्यस्तता और हंसी-मजाक, चिल्ला-चिल्ली से मुखर हो उठे। फिर जब सारे लोग चले गये, उस समय शाम की धूप कमरे की खिड़की से आकर जमीन पर लोटपोट कर रही थी। कमरे के अंदर नववधू ने अब चैन की सांस ली। सिर पर घूंघट डाले बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों से कमरे के चारों तरफ घूरने लगी और रमेश करवी को देखता रहा।

रमेश बोला—तुम्हारी एक तस्वीर बनाऊंगा करवी। दो ही दिनों में बना डालूंगा। उसके बाद तुम खुद देख कर समझ जाओगी कि मैं इन हाथों से क्या कर सकता हूं।

करवी ने उत्सुकता से पूछा—मेरी समझ में नहीं आया। तुम क्या कह रहे हो?

रमेश बोला—तुम्हारी इन आंखों को मैं तस्वीर में जीवन्त उतार डालूंगा।

करवी बोली—बना कर रखना। मैं लौट कर आकर देखूंगी।

रमेश आश्चर्यचकित होकर बोला—तुम कहां जाओगी!

करवी बोली—पिताजी के पास।

रमेश ने कहा—वो तो जाओगी ही, पर आज ही कल में तो नहीं जा रही हो न?

करवी बोली—जाना तो मैं भी नहीं चाह रही हूं, पर अगर पिता जी आ गये तो मैं बिना गये रह नहीं पाऊंगी।

रमेश बोला—तुम्हारे पिता जी के आने की बात है क्या?

करवी बोली—मुझे लगता है, कल सुबह ही आ जायेंगे।

फिर करवी थोड़ी देर चुप रही। उसके बाद मानों किसी असह्य वेदना से छटपटा गयी।—उफ! पिताजी की याद आते ही मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। शायद अब भी रो रहे होंगे।

सांत्वना के स्वर में रमेश ने कहा—इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं, तुम

उनकी इकलौती संतान हो। तुम्हारे पिता जी के मन का कष्ट मैं समझ सकता हूं करवी। लेकिन...अच्छा, पहले अपने पिता जी को आने तो दो, फिर मैं ही उनको समझा कर कहूंगा।

करवी बोली—क्या कहोगे ?

रमेश ने कहा—यही कि तुम एक महीने के बाद आओगी। उसके पहले तुम्हें ले जाने के लिए जोर न डालें।

करवी बोली—पिता जी संभवतः तुम्हारी बात पर राजी नहीं होंगे और मैं भी कह रही हूं कि तुम आपत्ति मत करना...। पिता जी के मन को दुख मत पहुंचाना।

उदासी की मुस्कान लिए रमेश बोला—लेकिन मेरे मन में जो दुख पहुंचेगा, क्या वे नहीं समझेंगे ?

करवी ने पूछा—तुम्हारे मन में किस बात का दुख है ?

रमेश बोला—अगर कल तुम्हारे पिता जी सचमुच ही आ गये, और तुम उनके साथ चली गयीं तो मुझे...मेरा मन बहुत उदास हो जायेगा करवी।

बड़ी-बड़ी कजरारी आंखों को उठाकर करवी ने रमेश की ओर गौर से देखा।

रमेश बोला—अगर तुम गयीं तो मैं भी तुम्हारे साथ जाऊंगा।

राणाघाट में दो चार दिन रह कर तुम्हें लेकर वापस चला आऊंगा।

करवी बोली—छिः, छिः, तुम्हारा कोई मान-सम्मान नहीं है क्या ? बिना बुलाये ससुराल कभी कोई जाता है क्या ?

रमेश ने कहा—तुम्हारे पिताजी क्या मुझे चलने के लिए नहीं कहेंगे ?

करवी बोली—नहीं।

रमेश ने कहा—क्यों ?

करवी सकपका कर बोली—क्या मालूम क्यों ?

रमेश ने कहा—लेकिन तुम तो अपने पिता जी से मेरे लिए कह सकती हो ?

करवी बोली—क्या कहूंगी ?

रमेश ने कहा—तुम्हारे साथ मुझे भी ले चलें।

करवी बोली—छिः। मुझे क्या इतना बेशर्म समझ लिया है तुमने ? क्या बाप से कोई बेटी यह बात कह सकती है ? कितने शर्म की बात है।

रमेश चुप हो गया। करवी ने पूछा—क्या बात है ? तुम गंभीर हो गये ? कोई शक है तुम्हारे मन में ?

रमेश ने पूछा—शक ? किस बात का ?

करवी बोली—शायद तुम सोच रहे होंगे कि तुम्हारे लिए मेरे मन में कोई

भावना ही नहीं।

रमेश ने कहा—मेरे लिए तुम्हारे मन में कोई भावना ही नहीं, यह सोचने के पहले मैं मर जाना चाहूंगा।

करवी की आंखें एकाएक चमक उठीं। किसी भय की आशंका से उसका मन छटपटा उठा। धीरे से, पर घबरायी हुई आवाज में करवी बोली—तुम क्यों मरोगे? उससे तो मेरा ही मर जाना ठीक है। इस घर में तुम नयी बहू लाकर उसे मेरी कहानी सुनाओगे और हंसी-मजाक करोगे।

रमेश ने कहा—ऐसी भयानक बात मजाक में भी नहीं किया करते, करवी।

करवी हंसकर बोली—बीबी तो किस्मत वालों की मरती है।

रमेश ने कहा—यह झूठी बात है। फिर हंसता हुआ आगे बढ़कर करवी का हाथ पकड़ कर बोला—ऐसी बीबी भी तो किसी की नहीं।

करवी चौंक उठी।

रमेश हंसता हुआ ही बोला—ऐसी बीबी अगर मर गयी तो उसके अभागे पति को भी जीने में कोई फायदा नहीं। एकाएक हाथ छुड़ाकर करवी दूसरी तरफ ताकने लगी। उसके बाद उठकर पलंग के कोने में सिकुड़ कर बैठ गयी। मानों रमेश की तरफ आंखें उठाकर वह देखना नहीं चाहती हो, और रमेश की आंखों में अपना चेहरा नहीं दिखाना चाहती हो।

शाम ढल गयी। एकाएक करवी घबरा उठी। बोली—तुम्हारा क्या ख्याल है? आज खुद भी नहीं खाओगे और मुझे भी नहीं खाने दोगे क्या?

रमेश ने पूछा—इसके माने?

करवी बोली—बाहर से खाना वाना खरीद कर ला भी नहीं रहे हो और मुझे भी खाना बनाने के लिए नहीं कह रहे हो।

जवाब देते समय रमेश की आवाज मानों खुशी से छलक उठी। बोला—तुम खाना पकाओगी?

करवी बोली—हां, एक रात की तो बात है। तुम्हारे घर में थोड़ा खटकर तो जाऊं न?

करवी हंस पड़ी। रमेश भी हंसकर बोला—काफी देर से इसी एक बात को कहने के लिए मेरा मन छटपटा रहा था।

करवी बोली—कौन सी बात?

रमेश ने कहा—इतने दिनों से होटल का खाना खाता रहा। पर आज तुम्हारे घर में होते हुए होटल से खाना लाने की जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी।

करवी बोली—मेरे हाथों का बना खाना खाने के लिए तुम्हारा मन इतना ललचा गया है?

रमेश ने कहा—वो तो सच है करवी।

करवी अनमनी होकर दूसरी तरफ ताककर एकाएक बोल पड़ी—ऐसा लालच न करो तो ही अच्छा होगा।

रमेश ने कहा—ऐसा लोभ तो मैं हमेशा ही करता रहूंगा।

इसके बाद अधिक समय नहीं बीता। बाग बाजार की गली के उस छोटे से मकान से कोयले का धुआं निकल कर शाम की हवा में फैल गया। नयी गृहस्थी में नव वधू के हाथ लगकर नये बर्तनों में मीठी सी झंकार मानों उठ पड़ी। नयी साड़ी का आंचल कमर में लिपटा रहा। हल्दी लगे हाथ परली तरफ से कपोलों पर बिखरे बालों को सम्हालते रहे। उड़ते हुए बालों को मांग के दोनों तरफ सरकाकर नयी गृहिणी नये उत्साह से काम में जुटी रही।

रसोई बन गयी। कमरे के फर्श पर करवी ने आसन बिछाया। रमेश खाना खाने बैठा।

आसन पर बैठ कर रमेश करवी को देखता रहा मानो कुछ कहना चाह रहा हो। कोई बात तृष्णार्त होकर उसके मन में छटपटा रही थी।

करवी बोली—खाना खाते समय एकाएक गंभीर क्यों हो गये ?

रमेश ने कहा—एक बात कहूं ?

करवी बोली—कहो।

रमेश बोला—अकेले-अकेले खाना खाने को जी नहीं चाह रहा है।

करवी बोली—माने ?

रमेश बोला—तुम भी आओ न। एक थाली में दोनों मिल कर खाते हैं।

करवी फिर चौंक उठी। पर कुछ बोल न सकी। स्तब्ध सी खड़ी रह गयी।

रमेश उठकर खड़ा हुआ। हंसकर, पर कड़े हाथों से करवी का हाथ पकड़ कर उसे आसन पर बैठा कर बोला—इसके बाद तो काम-काज की व्यस्तता में कितने ही मौके यों ही छोड़ने पड़ेंगे। पता नहीं तुम्हारे साथ इस तरह बैठकर खाने का आनन्द जीवन में कितनी बार मिल सकेगा।

करवी खाना खाने बैठी। रमेश और करवी एक साथ थाली में रखे, गरम चावल खाने लगे। रमेश मानों अपने जीवन के किसी नये व्रत का पालन कर रहा हो, अपनी प्यारी नयी दुल्हन को लेकर। खाना खाते-खाते रूंधी आवाज में करवी बोली—तुम्हें बहुत खटना पड़ता है क्या ?

रमेश ने कहा—बहुत ही। काम तो किसी पर दया नहीं करता। कभी-कभी बुखार लेकर भी काम करना पड़ता है।

करवी ने कहा—इतना क्यों खटना पड़ता है ?

रमेश ने कहा—पेट के वास्ते।

करवी ने कहा – कितना कमाते हो ?

रमेश ने कहा – किसी महीने में पचास, किसी महीने में सौ। किसी महीने में कुछ भी नहीं।

करवी बोली—उस पर मैं एक नया बोझ। अब तो फिर खटखटकर पागल ही हो जाओगे।

रमेश ने कहा—बिलकुल नहीं। मन की खुशी से अब से मैं और भी ज्यादा खट सकूंगा।

करवी बोली—तुमने काफी रुपयों का कर्ज भी तो लिया है।

रमेश इस तरह से हंसा, मानो कर्ज का भार कुछ था ही नहीं। बोला—दो साल जम कर खटूंगा, सारा कर्ज उतार दूंगा। उसकी मुझे कोई परवाह नहीं।

करवी का सिर मानों झुक गया। अपने हाथों से करवी ने रमेश को चुप करा दिया।

रमेश ने कहा—क्या हुआ ? तुम खाना नहीं खा रही हो ? रमेश करवी के रुके हुए हाथों को देखता रहा। उसके बाद एक अजीब चीज़ देखकर चीख उठा। बोला—यह क्या करवी ?

करवी के हाथों पर आंसू की एक बूंद उसके झुके हुए सिर की छाया में उसकी आंखों में टप से गिरी थी। हाथ धोकर करवी उठ खड़ी हुई। कमर में लिपटे आंचल को खोल कर उसने आंखें पोंछीं। उसके बाद बोली—सुनो।

रमेश ने कहा—कहो।

करवी बोली—तुम जीना चाहते हो ?

रमेश ने कहा—क्या कहना चाहती हो करवी ?

करवी बोली—अगर तुम जीना चाहते हो, रमेश, तो तुरंत पुलिस को बुलाकर मुझे पकड़वा दो।

रमेश की आंखें थरथरा गयीं। बोला—इस बात का क्या अर्थ लगाऊं करवी ?

करवी बोली—मैं तुम्हें ठगने के लिए आयी थी। मैं तुम्हारी जात की भी नहीं। मैं करवी नहीं, मैं कुमारी भी नहीं।.... मैं हूं...।

करवी चीख उठी। बोली—मैं एक भयंकर बाप की भयंकर बेटी हूं। मैं तुम्हारे पास तुम्हारी गृहस्थी निभाने के लिए नहीं आयी। यहां से भाग जाने के लिए ही आयी हूं।

मानों नाटक की कोई लड़की झूठा अभिनय कर रही हो। मजा देखने के लिए और रमेश को झूठा ही डराने के लिए तमाशा कर रही हो। राजकुमारी की पोषाक पहनकर कोई मायावी चुड़ैल किसी राजा को इसी तरह के नाज-नखरे दिखाकर बेहया की तरह कुछ भयंकर बातें कहकर भाग गयी थी। उस अभागे

राजा का नाम आज रमेश को याद नहीं आ रहा था—उस नाटक का भी नाम याद नहीं था।

फिर भी रमेश घबरा गया। चुपचाप मानों मौत की वार्ता सुन रहा हो। करवी की तरफ देखकर रमेश उसे समझना चाह रहा था। सचमुच ही यह चेहरा क्या किसी भयंकर ठगिनी का चेहरा हो सकता है ?

करवी बोली—मैं जानती हूं तुम पुलिस बुलाकर मुझे पकड़वा नहीं सकोगे। तुम इतने ही बेवकूफ और कमजोर हो।

फिर अपने शरीर से एक-एक गहने उतार कर करवी ने जमीन पर रख दिये। फिर बोली—यह लो। कम से कम तुम्हारे डेढ हजार रुपये तो बचे। अब चुपचाप मुझे जाने दो।

रमेश ने कहा—कहां जाओगी तुम ?

करवी ने कोई जवाब नहीं दिया।

रमेश कठोर स्वर में बोला—उस भयंकर बाप के पास ही लौटकर जाना चाहती हो ?

करवी ने कोई जवाब नहीं दिया

रमेश ने कहा—मेरी बातों का जवाब दो, करवी।

करवी चिल्लाकर रो पड़ी। बोली—तुम कहो, तुम मुझे नहीं जाने देना चाहते ?

शांत भाव से रमेश थोड़ी देर कुछ सोचता रहा। उसके बाद छलछलायी हुई आंखों से करवी के हाथ थाम कर बोला—सचमुच ही तुम्हें जाने देने की इच्छा नहीं होती।

करवी बोली—तो फिर सुनो !

रमेश ने कहा—कहो।

करवी बोली—आज अभी चलो, हम दोनों कहीं चल पड़ते हैं।

रमेश ने पूछा—कहां चलोगी ?

करवी बोली—तुम जहां ले चलोगे, जहां रखोगे।

रमेश ने और देरी नहीं की। उसी रात बाग बाजार की गली का वह छोटा सा घर सूना हो गया। ठग की बेटी ठगिनी, जिन्दगी में आखिरी बार दुनिया के एक मुहल्ले को सोच में डाल कर भाग गयी अपने पति के साथ।

ठग गयी वह सिर्फ एक ही आदमी को। राणाघाट से कोई विजय बाबू दूसरे दिन सुबह जब बाग बाजार की गली में आकर खड़े हुए तो हैरान होकर देखा कि कमरे में ताला लटक रहा था। मजबूत, कठिन, निष्ठुर एक ताला। दरवाजे के छेद से अंदर झांक कर विजय बाबू ने देखा घर बिल्कुल खाली था। क्या ही

भयानक एक शून्यता।

पर ज्यादा देर तक अवाक् होकर देखने की जरूरत नहीं पड़ी। पुलिस के हाथ पकड़ते ही चिल्लाकर रो पड़े विजय बाबू नाम के वह आदमी।

—उफ! बेटी होकर बाप को क्या इस तरह ठगा जाता है रे ठगिनी।

एक प्यार की कहानी

नरेन्द्र नाथ मिश्र

खिड़की से झांक कर प्रभात बाबू बोले, "लिख रहे हैं ? तो फिर रहने दीजिए, इस समय डिस्टर्ब नहीं करूंगा।"

कागज कलम एक तरफ सरका कर अपने आदरणीय दोस्त की अभ्यर्थना कर मैंने कहा, "आइए आइए, अंदर आइए।"

प्रभात बाबू थोड़ा सहमकर बोले, "लेकिन आप तो लिख रहे थे ?"

मैंने कहा, "सब लिखना ही क्या लिखना होता है ? दो-एक चिट्ठियों का जवाब लिख रहा था। आप आइए।"

आमंत्रण पाकर प्रभात बाबू कमरे के अंदर आये। सोफे पर बैठकर हाथ में पकड़े छाते को फर्श पर सुलाकर रख दिया। जाते समय भूल न जायं, इसीलिए अपनी उस प्रिय वस्तु को वे आंखों से दूर नहीं रखना चाहते थे।

उनके आने के साथ-साथ मैं अपने ऊंचे आसन को छोड़ कर उनके सामने के नीचे सोफे पर आ बैठा।

वे मेरी तरफ देख कर बोले, "बहुत चिट्ठी पत्री लिखते हैं क्या ? कभी मुझे भी चिट्ठी लिखने का नशा था। रात-रात भर जाग कर दोस्तों को लिखा करता था, इस तरह आप मुझे ए मैन आफ लैटर्स कह सकते हैं।"

मैंने उनके स्वयं के दिए हुये खिताब को हंस कर मान लिया और पूछा, "चाय चलेगी ?"

चाय की बात सुनकर प्रभात बाबू प्रसन्न होकर बोले, "चल तो सकती है, पर इस दुपहरी में चाय मांग कर आपके इस आश्रम में पीड़ा का कारण तो न बनूंगा न ?" गृहस्थाश्रम। मैं स्वयं तो गृही नहीं हूं। इसलिए फूंक-फूंक कर ही कदम रखता हूं। कहीं दूसरों की गृहिणियों की शांति भंग न कर दूं।"

मैं अंदर की तरफ जाकर दो कप चाय की फरमाईश देकर फिर अपनी जगह पर आकर बैठ गया।

प्रभात बाबू सिर्फ नाम के ही प्रभात हैं। उनके घूमने और गप-शप करने का समय था दोपहर और आधी रात गये। उम्र उनकी कोई चौहत्तर साल की होगी। शरीर जीर्ण हो चुका था पर मन को जीर्ण होने से उन्होंने बचा लिया था। बस और ट्राम में आराम से घूमा-फिरा करते थे। बिल्कुल सामाजिक आदमी थे। अपनी पसंद की सभा समितियों में भी हाजिर हो जाया करते थे। पुराने यार-दोस्तों की खोज-खबर लेते रहते थे और नये दोस्त बनाने में भी चूकते नहीं थे। चाहे कोई उनके लड़के की उम्र का हो या पोते की, वे सब के हम-उम्र थे, हालांकि उनके न तो लड़का था न पोता। प्रभात बाबू अविवाहित थे।

थोड़ी इधर-उधर की बात के बाद मैंने कहा, "अच्छी बात है प्रभात बाबू। परसों रात आप आने वाले थे सो आये क्यों नहीं? मैंने अपने एक-दो दोस्तों को कह रखा था। वे सब आपसे मिलना चाहते थे। हम लोग बड़ी देर तक आपकी प्रतीक्षा करते रहे।"

प्रभात बाबू दांतों में जीभ काटते हुए बोले, "मैं तो भूल ही गया कल्याण। बिल्कुल ही भूल गया। परसों रात मैं अलीपुर में एक दोस्त के घर पर था। वहां हमने एक वर्षगांठ मनायी।"

मैंने पूछा, "आपके दोस्त का जन्मदिन था क्या?"

प्रभात बाबू सिर हिलाकर बोले, "नहीं साहब। वो सब कुछ नहीं। जन्मदिन तो वह कभी नहीं मनाता। इसके पहले तो उसे दुर्गा पूजा, या और कोई त्योहार भी मनाते हुए नहीं देखा। न सामाजिक तौर पर और न ही व्यक्तिगत रूप से। संध्या-पूजा, जाप-तप, आसन-वासन कुछ भी नहीं। बल्कि मैं ही कभी-कभार उसे कहता था, शैलेन, ईवन द डेविल हेज हिज रिचुअल्सतू क्या शैतान से भी बदत्तर है? उसके बाद कुछ दिनों से देख रहा हूं कि एक अनुष्ठान का वह बड़ी निष्ठा के साथ पालन कर रहा है। साल में सिर्फ एक दिन। और उस अनुष्ठान में वह सिर्फ एक ही व्यक्ति को बुलाता है।"

मैंने कहा, "वह व्यक्ति तो शायद आप ही हैं।" प्रभात बाबू ने हंसकर बात मान ली।

चाय आ गयी। प्रभात बाबू ने चाय की एक चुस्की ली और पाकिट से एक सिगरेट निकाल कर सुलगाया। यों प्रभात बाबू सस्ती सिगरेट ही पीते थे। मैं सिगरेट पीता नहीं हूं, यह जानते हुए भी मजाक से मेरी तरफ सिगरेट बढ़ाकर बोले, "चलेगा?" मैंने सर हिलाकर 'ना' कर दिया। यह देखकर वे मुस्करा कर बोले, "मजे में हैं आप। मैंने कब सिगरेट पीना शुरू कर दिया, मुझे याद ही नहीं है। शायद मां का दूध पीना छोड़ते ही सिगरेट पकड़ ली थी।"

मैंने पूछा, "आप किस अनुष्ठान के बारे में कह रहे थे ?"

प्रभात बाबू बोले, "रुकिए साहब, रुकिए। कहानी लिखने का भले ही धंधा न करूं पर लिखने के तौर-तरीके थोड़ा-बहुत जानता हूं। शादी नहीं की है, पर बाराती तो हजारों बार बना ही हूं। सस्पेंस खत्म कर दूं, क्या मैं इतना ही बुझदिल लगता हूं ? कहानी का सार अगर पहले ही तोड़-मरोड़ दूं तो हमारी कहानी आप सुनेंगे क्यों ?

"यह कहानी मेरी नहीं है। मेरे उस दोस्त की है इसलिए आपको कुछ बताने में मुझे डर भी लगता है। आपके पेट में बात तो ठहरती ही नहीं है। मैं चुपचाप जो आपको बताता हूं, उस बात को और भी चुपचाप दसों के कानों तक पहुंचाकर ही आपके जी में जी आता है। लेकिन कल्याण बाबू, इस कहानी को लिखकर आपको कोई फायदा नहीं होगा। इस कहानी को सुनने वाला भी आपको कोई नहीं मिलेगा। पुराने दिनों की कहानी है, पुराने दिनों की बात है। लेकिन हम लोगों के लिए वह नयी ही थी। हमारी जवानी के दिन थे वह। पुराने जमाने की बात ही समझ लीजिए। कोई आधी सदी पहले की बात रही होगी। फिर भी कभी-कभी लगता है, बस उसी दिन की तो बात है। ऐसा कभी-कभी ही लगता है, और फिर कभी लगता है वे दिन कितने पुराने थे। अपने ही अतीत के बारे में लगता कोई ऐतिहासिक या प्रागैतिहासिक युग है।

"उस जमाने में मेरा तबादला कलकत्ता से पश्चिमी सीमा के किसी एक शहर में हो गया था। मैं कोई घर घुसवा नहीं हूं। फिर भी जाने का मन नहीं कर रहा था। कलकत्ता में कितने ही संगी-साथी थे। आफिस का समय छोड़ बाकी समय मैं अड्डे मार कर ही बिता देता था। कभी-कभी तो रातें भी बिता दिया करता था। उस अड्डे में साहित्य था, संगीत था, नाटक था। पर जहां मेरा तबादला हुआ था वहां नौकरी के सिवा और क्या था ? और वह नौकरी भी कैसी, सुनिए। सेना के जवानों के खाने-पीने, पोषाक आदि में कितने लाख रुपए खर्च होते हैं, उन्हीं का पाई-पाई का हिसाब मिलाना पड़ता था। मेरा जो जीवन है, उसमें हिसाब-किताब के काम में मेरा मन नहीं लगता है। फिर भी नौकरी तो नौकरी ही थी। पति को प्यार न करते हुए भी सती नारी को उसी पति के घर को संभालने के अलावा चारा ही क्या है।

"उस शहर में एक मध्यम किस्म के मैस में जाकर मैंने अपना डेरा-डंडा जमाया। कितना अकेला और संगीहीन मैंने अपने को सोचा था, देखा, बात वैसी नहीं थी। हमारे मैस के कमरे में ही एक छोटा-मोटा अड्डा बैठता। गाना-बजाना, गप-शप, हंसी-मजाक, ताश-शतरंज सब कुछ चलता। इसे छोड़ जिन्हें दूसरे तरह के नशे की आदत थी, वे अपना और इंतजाम कर लेते थे। हमारे उसी अड्डे में इस शैलेन

सेन ने भी आना शुरू किया। शैलेन और मैं सहकर्मी थे। एक ही विभाग में काम करते। फिर भी शैलेन मेरी तरह नहीं था। खूब मन लगाकर काम करता था। गुणी लड़का था। पर गुण से भी अधिक उसका रूप आंखों के आगे आ जाने वाला था। मेरा दोस्त होने से क्या होता है, वह मेरी तरह काला और कुत्सित नहीं था। लम्बाई में वह मुझसे एक या डेढ़ इंच छोटा होगा। मैं करीब छः फुट का हूं। शैलेन इतना लम्बा नहीं था।

"पर उसमें तो मानों कहीं कोई कमी ही नजर नहीं आती। गोरा-चिट्टा रंग, नुकीली तीखी नाक और आंखें। सिर पर घने काले बाल। गठा हुआ बदन। यों तो शैलेन खिलाड़ी या कसरती जीव नहीं था, फिर भी उसके रूप में नारी की सुंदरता नहीं थी, पौरुष था। उसका पुरुषत्व उसकी गंभीरता में, धैर्य में, स्थिर स्वभाव में फूट-फूट कर सामने आता था। मुझे अब लगता है हमारी वह दोस्ती बेमेल की दोस्ती थी। उसके व्यक्तित्व में ऐसा बहुत कुछ था जो मुझमें नहीं था। हो सकता है मुझमें भी ऐसा कुछ था जिसका अभाव वह मन ही मन अनुभव करता होगा। एक-दूसरे के प्रति हमारा पहला आकर्षण उसी बेमेल का खिचाव था।

"शैलेन हमारे अड्डे में आकर चुपचाप बैठ जाता। कभी-कभी मेरे रैक से कोई किताब लेकर पढ़ता रहता, कभी यों ही बाकी लोगों के कारनामे देखता रहता। लजीला, सहमा सहमा-सा स्वभाव था। अब तो खैर वह वैसा नहीं है।

"सबके चले जाने के बाद अगर समय बचता तो शैलेन मेरे पास आकर बैठ जाता था। तब हम-उम्र के, समरुचि के दो दोस्तों के बीच जो बातचीत होती है, हम दोनों के बीच भी होती।

"उस दिन एकांत पाकर शैलेन ने मुझसे कहा, "तुमसे एक बात करनी है।"

'अच्छी बात है, बता डालो।' पर बात छेड़ कर शैलेन चुप रहा।

"मैंने कहा, 'क्या हुआ ? बात बताने का यह कैसा नमूना है ?'

"शैलेन बोला, 'नहीं, छोड़ो।'

"मैंने कहा, 'क्यों ? छोड़ूं क्यों ? जो तुम कह नहीं पा रहे हो, मैं कहे देता हूं।" उसके बाद उसी की आवाज की नकल कर मैंने कहा, 'प्रभात भाई, मुझे किसी से प्यार हो गया है। ऐसा वैसा प्यार नहीं, एकदम गहराई तक उतर गया हूं। अब तुम्हीं मेरा उद्धार करो।'

"शैलेन बोला, "तुम्हें कैसे पता चला। यह बात मेरी ही बात है।"

"समझने में देर क्या लगती है ? उस दिन तुम्हारे घर जाकर ही मुझे पता लग गया था।"

शैलेन चुप रहा।

"उस शहर में मैं तो खैर मेस में रहता था, पर शैलेन की स्थिति मेरे जैसी नहीं थी। वहां उसके पिता बहुत बड़े सरकारी बंगले में रहते थे। मां, बाबूजी, भाई-बहनों के साथ एक बड़ा-सा परिवार था उसका।

"दफ्तर की छुट्टी के बाद शैलेन कभी-कभी मुझे अपने घर ले जाता। उसकी मां मुझे लड़के जैसा ही प्यार देती थी। आपसे क्या छिपाऊं, उस समय कई प्रवासी बंगालियों के दरवाजे मेरे लिए आसानी से खुल गये थे। पर शैलेन का घर ही मुझे सबसे अच्छा लगता था।

"माधुरी को मैंने उसी के घर पहली बार देखा था। लड़की का रूप और उसका चेहरा-मोहरा देखकर मुझे लगा जैसे वह शैलेन की बहन ही है। रंग रूप मानों एक जैसा। लड़की थी इसलिए और भी गोरी दिख रही थी। नाक-नक्श खूब ही बढ़िया। मुझे थोड़ी लंबाई वाला चेहरा ही अधिक पसंद है। पर गोल चेहरा भी खिले हुए कमल के फूल की तरह लगता है, यह मैंने मानों उसी दिन पहली बार समझा हो। सिर पर क्या ही बाल थे। कितने घने, उतने ही काले और लंबे। वैसे रेशम की तरह सुंदर बाल भी मैंने फिर नहीं देखे। शैलेन की मां को 'मौसी' कहकर पुकारने पर भी माधुरी शैलेन की किसी मौसी की लड़की नहीं थी, यह मैं थोड़ी ही देर में समझ गया। माधुरी जाति की मुखर्जी ब्राह्मण की लड़की थी। शैलेन का घर जिस मुहल्ले में था, वहीं माधुरी का भी घर था। सिर्फ कुछ ही गज का फासला था। दोनों परिवारों में बड़ी घनिष्ठता थी। आना-पीना सब चलता था। इस घर की मां उस घर के बच्चों की मौसी थी तो उस घर की मां भी इस घर के बच्चों की 'मौसी मां' थी।

शैलेन ने पूछा, "तुमने कैसे भाँप लिया ?"

मैंने कहा, "भांपा तुम दोनों के लुके-छिपे आपस को देखने के ढंग से। तुम्हारी टेबुल पर माधुरी के नाम लिखी किताबों को देखकर। उसके गाने की कापी में तुम्हारे हाथ से लिखे उसके नाम को देखकर।"

"पकड़े जाने पर शैलेन हंस पड़ा। बोला, "इतनी सी देर में तुमने इतना कुछ देख लिया। प्रभु। तुम्हे तो खुफिया विभाग में नौकरी करनी चाहिए थी।"

"शैलेन प्यार से मुझे 'प्रभु' कहकर पुकारा करता था। कभी-कभी 'गुरुदेव' भी कहता था। मैं ही तो उसका फ्रेंड, फिलासफर और गाइड था।

"पकड़े जाने पर शैलेन ने सारी बातें मुझे बता दीं। कहने के लिए तो वह आया ही था। अपने कैशोर्य प्यार, सब की नजर बचा कर मिलना-जुलना, पहली तरुणाई भरे यौवन के नशे की बात, शैलेन ने खुलकर सारी बातें मुझे बता दीं। एक समय ऐसा था जब वे दोनों सब कुछ छुपाना ही पसंद करते थे। घर के लोगों से छुपाते, अपने से भी छुपाते। पर वैसे दिन नहीं थे। पर अब वे चाहते थे कि

उनके प्यार को दोनों घरों के लोग जान जायं और उसे स्वीकृति दें। जो माधुरी उस घर में लड़की का आदर पाती थी, अब बहू बनकर उस घर में चार चांद लगा दे। जिस शैलेन को इस घर के लोग आदर्श लड़के का सम्मान देते थे, वह एक और मधुर पद का गौरव हासिल करे। जंवाई का पद पा ले। मैंने पूछा, "फिर बाधा किस बात की है ?"

शैलेन बोला, "हम लोगों की जात आड़े आ रही है।

मैंने कहा, "धत् तेरी की तेरी जात। एक काम कर। माधुरी के पिता अगर स्वेच्छा से तुम्हारे साथ उसका विवाह नहीं करें तो तू सुभद्रा हरण कर ले। मैं तुम्हारा रथ चलाऊंगा। सर्वधर्म परितज्य मामेकम् शरणं ब्रज।"

शैलेन बोला, "नहीं भाई, ऐसा नहीं हो सकता।"

क्यों ? माधुरी डर रही है ?'

शैलेन बोला, "भय तो है, संकोच भी है। इसके अलावा अपने गुस्सैल बाप को माधुरी मानती भी बहुत है।"

मैंने कहा, "तो फिर चलो उसी इंजीनियर सज्जन को हम लोग समझा-बुझा कर राजी करवा लेते हैं। मैं तुम्हारा वकील बनने के लिए राजी हूं।"

शैलेन बोला, "अरे बाप रे। तब तो तुरंत उनका दरवाजा मेरे लिए मेरी ही आंखों के सामने बंद हो जायेगा। फिर मेरे पिता जी क्या यह अपमान बर्दाश्त कर पायेंगे ? उनके तरफ की एक खिड़की भी नहीं खोलेंगे।"

मैंने पूछा, तुम्हारी मां बाबू जी की क्या राय है ?"

शैलेन बोला, "वे भी मना कर रहे हैं। इस प्यार की शादी से उन्हें बड़ा डर है। उनकी धारणा है कि इस गंधर्व विवाह के बाद मैं अलग कहीं जाकर अपना बसेरा बसाऊंगा। मां-बाप, भाई-बहनों को नहीं देखूंगा।" शैलेन खुद तो डरपोक था ही, मैं उसके लिए अपनी वीरता दिखाऊं, इसका मौका भी उसने नहीं आने दिया। उसे डर था कि इससे सब कुछ ढह जायेगा। जो थोड़ा-बहुत उसे मिलता है, उसे भी खोना पड़ेगा। अभी कम से कम वे एक दूसरे की आवाज तो सुन पाते हैं, छुप-छुपाकर थोड़ा बहुत प्यार, आदर आह्लाद का रस तो ले पाते हैं। इसे खोने का उन्हें बड़ा भय था।

मैं हंसकर बोला, "शैलेन तो तुम फिर उस कहानी को लेकर ही जीओ, बड़ा कुछ पाने की उम्मीद मत करो।"

इसके बाद दोनों ही घरों में थोड़े दिनों तक शादी के दलाल आते जाते रहे। माधुरी के लिए भी रिश्ता देखा जाने लगा। शैलेन की इच्छा के विरुद्ध उसके लिए लड़कियों को देखना जारी रहा। दान-दहेज के साथ जेवर से लदी कन्या बहुत से लोग शैलेन के हाथों सौंपने के लिए राजी थे, पर शैलेन ही राजी नहीं

होता। शादी के दलाल आते और जाते रहे, पर विवाह के देवदूत प्रजापति दोनों में से किसी के घर उड़ कर आकर नहीं बैठे।

"उसके बाद मैं बदली होकर शिमला चला गया। आने के दिन माधुरी ने अपने बगीचे के लाल गुलाबों का एक गुच्छा मुझे तोहफे में दिया और साथ ही दो अनमोल मोती की बूंदें भी मुझे मिलीं।

उसकी उन काली, झुकी हुई भीगी आंखों की तरफ देखकर मैंने कहा था, "मधु ऐसा क्यों कर रही है ?"

माधुरी बोली, "प्रभात भाई, हमारा तो कोई दोस्त भी नहीं। हमें भूलना नहीं।"

"मैं अपने दोस्त का 'प्रभु', 'प्रतिभू' ही हूं। उससे अधिक कुछ नहीं। फिर भी मुझे ऐसा कभी नहीं लगा कि मुझे कुछ कम प्यार मिला है। मैं शैलेन को टोकता हूं, पर मैं खुद भी तो थोड़े में पाकर संतुष्ट रहता हूं। मैं भी तो जीवन भर थोड़ा-थोड़ा जोड़ कर भीख की झोली भर सका हूं।

प्रभात बाबू ने घड़ी देखी। उसके बाद बोले, "बाप रे। अब जरा संक्षेप में बताता हूं, नहीं तो भाभी डांट पिलायेंगी। जो एक कप चाय मिलती है, वह भी बंद हो जायेगी। शिमला में मेरी बदली के थोड़े दिनों के बाद शैलेन की बदली पटना हो गयी। सरकार हमारी भाग्य-नियंता जो ठहरी। कभी हम दोनों एक ही स्टेशन पर महीने या साल के लिए एक दफ्तर में होते। एक ही टेबल के आमने-सामने बैठकर काम करते, गप-शप करते। यह देखकर खुशी भी होती कि उम्र के साथ-साथ हम लोगों के चेहरे भी बदल रहे थे। इसी तरह हम जीवन के एक स्टेशन से दूसरे स्टेशन बदली होते रहे, पर एक जगह थी जहां हम नहीं बदले थे। वह थी हमारी दोस्ती। शुरू के छः महीनों में हम 'आप' से 'तुम' पर उतरे, और 'तुम' से 'तू' तक उतरने में भी दो साल से ज्यादा नहीं लगे थे। दूर रहते समय भी एक दूसरे की सारी खबर रखते। चिट्ठी-पत्री से ही सब मालूम पड़ता था। भेंट तो कभी-कभार ही होती। माधुरी की मां तब तक मर चुकी थी। दो भाई बड़े हो गये थे। बाप और भी बूढ़े हो गये थे। वह दबंग बाप अब बिल्कुल असहाय सा एकमात्र लड़की पर ही पूरी तरह निर्भर हो गया था। माधुरी उसकी जाया, जननी और दुहिता बनी हुई थी। शैलेन के माता-पिता भी चल बसे थे। छोटे भाई-बहन शैलेन को 'त्वमेव पिता च माता त्वमेव' समझते। शैलेन ने सबके शादी ब्याह भी कर दिये। सब ने अपनी-अपनी नौकरी की जगह पर अपनी-अपनी गृहस्थी बसा ली, फिर भी चिरकुमार बड़ा भाई शैलेन परिवार के लिए बरगद के पेड़ के समान था। मैं तब भी शैलेन को चिट्ठी लिखा करता था। माधुरी से भी चिट्ठी-पत्री चलती थी।

"उसके बाद शैलेन और मैं करीब-करीब एक ही साथ रिटायर हुए। शैलेन को एक्सटेंशन मिला था, कई प्रोमोशन भी मिले। मुझे कुछ नहीं मिला। उसके बदले में मैंने पूरा भारत घूम-घूम कर देखा। रंगमंच पर, गालों पर रंग थोप कर, सिर पर नकली बाल लगाकर बुढापे में रंगमंच पर हीरो बना, बीच बीच में अर्द्धसाहित्यिक तथा अर्द्ध राजनैतिक मंचों पर उठकर भाषण भी दिये। अब तो बस धर्म सभा में जाता हूं जानता हूं इस बात पर आप मन ही मन हंसते हैं।

"आजकल डलहोसी में पेन्शन के रुपये लाने के दिन शैलेन से मेरी भेंट होती है। रिटायर होने के बाद शैलेन और मैं दोनों ही कलकत्ते में बस गये। वह दक्षिण कलकत्ता में रहता है और मैं उत्तरी कलकत्ता में।

"जल्दी-जल्दी भेंट नहीं हो पाती, चिट्ठी-पत्री भी करीब-करीब बंद ही थी। शैलेन ने एक बार लिखा था, "तेरे हाथ की लिखावट अब अपाठ्य हो गयी है। कुछ समझ में ही नहीं आता कि तूने लिखा क्या है।" उसके बाद गुस्से में मैंने उसे चिट्ठी ही लिखनी बंद कर दी। अब तो उससे कभी-कभी फोन पर बात कर लेता हूं। अलीपुर में शैलेन ने एक सुंदर मकान बनवाया है। पहले उसमें उसके भतीजे-भतीजियां रहते थे अब पोतेपोतियां। कोई स्कूल में पढ़ता है तो कोई कालेज में। मुझे घर मकान कुछ नहीं बनाना पड़ा। बाप-दादों का मकान था ही। भैया के साथ मैं भी उसका भागीदार हूं, पर सिर्फ नाम के वास्ते। मन ही मन मैं बिना घर-बार का हूं यह तो आप जानते ही हैं। आखिर घर में रहता ही हूं कितनी देर? आज से कोई बारह साल पहले की बात है। मैं पेन्शन के रुपये गिन रहा था कि किसी ने झटाक से मेरा हाथ पकड़ लिया और बोला, "हे परमार्थवादी। अर्थ से इतना लोभ क्यों रे?"

"मैंने देखा, मेरे पीछे शैलेन खड़ा था।

मैं हंसकर बोला, "बुढ़ापे में कामिनी को छोड़ा जा सकता है पर कंचन को नहीं। फल खरीदने में भी पैसे लगते हैं भाई।"

शैलेन मुझे एक चाय की दुकान पर ले गया। बोला, "तुमसे एक बात करनी है।"

"कोने की एक टेबुल चुन कर हम दोनों आमने-सामने बैठ गये। बुढ़ापा किसी के बाल नोच लेता है तो किसी के दांत छीन लेता है। शैलेन का सिर बिल्कुल साफ था और मेरे दोनों जबड़ों के दांत नकली थे।

"शैलेन ने कुछ अधिक न बोलकर बैक पाकिट से एक लिफाफा निकला फिर उसमें से एक चिट्ठी निकाल कर मेरी ओर बढ़ाते हुए बोला, "पढ़कर देख।"

मैंने कहा, "यह तो तेरी चिट्ठी है।"

शैलेन डांट कर बोला, "अहा ! पढ़कर तो देख न । मेरी चिट्ठी जैसे तूने कभी पढ़ी ही नहीं ।"

मैंने लिफाफे में से चिट्ठी निकाल कर पढ़ी । कागज पूरे साइज का था, पर चिट्ठी दो ही लाइन की थी ।

"तुम्हारे साथ कुछ खास बात करनी है । जरूर आना ।

तुम्हारी माधुरी ।"

"मैंने हंसकर कहा, मैं अपनी बात का संशोधन करता हूं । देख रहा हूं कामिनी बुढ़ापे में भी नहीं छूटती । कहां है वह ?"

शैलेन बोला, "उसके भाई सब नौकरी-चाकरी करते हैं । माधुरी भी स्कूल में पढ़ाती थी पर शरीर टूटने के कारण मजबूरन मास्टरी छोड़नी पड़ी । सुना है उसके पिताजी ज्यादा कुछ नहीं छोड़ गये हैं । तीस हजार रुपये लड़की के नाम कर गये । लड़कों को भी कुछ-कुछ दे गये ।

हाल की बात तो मैं जानता नहीं था क्योंकि मैंने कोई खोज-खबर नहीं रखी थी । बहुत दिनों से चिट्ठी-पत्री भी बंद थी ।

शैलेन बोला, "बहुत दिनों से बीमारी भोग रही है । चल । एक बार चल कर देख आयें । सुनूं भी उसकी क्या जरूरी बात है ?"

मैंने कहा, "तू अकेला ही चला जा । मेरे जाने पर तो तुम दोनों के बीच बातचीत ही बंद हो जायेगी ।"

"नहीं, नहीं । तू भी मेरे साथ चल । आज ही चल ।"

मैंने कहा भी कि फिर कभी चलेंगे । पर शैलेन राजी नहीं हुआ । बोला, "न मालूम तेरे साथ फिर कब भेंट हो ।"

"हम दोनों ने अपने-अपने घर टेलीफोन पर खबर कर दी और बैरकपुर की तरफ चल पड़े । शैलेन टैक्सी लेना चाह रहा था पर मैंने कहा, "पेन्शन के गिनती के रुपये बेलगाम मत ख़र्च कर । चल बस में चलते हैं ।

"चलते समय मैंने कालेज स्ट्रीट के मार्केट से एक दर्जन ताजा बड़े साइज के रजनीगंधा के फूल के गुच्छे खरीदे ।

शैलेन मजाक से बोला, "तू अब भी शौकीन है ।"

"घर स्टेशन के पास ही था । दुमंजिले के एक फ्लैट में वे लोग रहते हैं ।

हमने सांकल खटखटाया । एक बहू-सी औरत ने आकर दरवाजा खोला । हमने अपना परिचय दिया । उसने हम दोनों को माधुरी के कमरे तक पहुचा दिया ।

"एक छोटे से पलंग पर माधुरी सोयी हुई थी । बिस्तर बिल्कुल सफेद था और कायदे मे बिछा हुआ था । कमरा सुरुचिपूर्ण ढंग से सजा था । पर माधुरी कैसी

ही हो गयी थी। विस्तर से विल्कुल सट चुकी थी मानों उसमें उठकर-बैठने की भी ताकत नहीं थी।

"फिर भी हम लोगों को देखकर माधुरी में जैसे नयी शक्ति आ गयी थी। उत्साह से वह विस्तर पर उठ बैठी।

मेरी तरफ देखकर हंसकर बोली, "मैं जानती थी, तुम भी आओगे।"

"उसके बाद माधुरी ने क्या कांड किया उसे सुनिये। अपनी दोनों भाभियों को बुलाकर बोली, "उस कमरे में लक्ष्मी जी के आसन के पास सिंदूर घोल कर रखा है। जरा ले तो आ।"

"छोटी भाभी सिंदूर ले आयी। माधुरी उसे अपने हाथों में लेकर फिर शैलेन के हाथों में देकर बोली, "यह सिंदूर मेरी मांग में लगा दो। मैं कुंआरी नहीं मरना चाहती।"

"मैंने आंखें उठाकर देखा। माधुरी के सिर पर घने काले बादलों से बाल अब नहीं थे। उम्र के कारण नहीं, रोग से उसके बाल पतले हो गये थे। बीच-बीच में रुपहले बाल भी दिखायी दे रहे थे।

"शैलेन ने उसकी मांग में सिंदूर भर दिया। भाभी शंख बजाना चाह रही थी पर माधुरी ने इशारे से मना कर दिया।

मैंने कहा, "मधु, पके बालों में सिंदूर लगाने के लिए इतने दिनों बैठी रही?"

दूज के चांद की तरह पतली हल्की-सी मुस्कान माधुरी के चेहरे पर छा गयी। बोली, "प्रभात भाई, अब बाकी के मंत्र तुम पढ़ दो।"

"मैं क्या कोई ब्राह्मण हूं जो मंत्र पढूंगा? और मैं तो मंत्रमुग्ध हो गया हूं मधु।"

"फिर भी मैंने दो लाइनों की आहिस्ते-आहिस्ते आवृत्ति कर दी: यदिदं हृदयं तव। तदिदं हृदयं मम।" उन लोगों ने इसे दोहराया नहीं, पर कान लगाकार सुना। जीवन में कितनी ही बार बारात में गया हूं। कितनी अजीबो-गरीब जगहों पर दुस्साहस भरे अभियान भी चलाये हैं, पर कल्याण बाबू ऐसा बाराती कभी नहीं बना, और न ही ऐसा पुरोहित।

"उस दिन रजनी गंधा के फूल खरीदना सार्थक हुआ। वे फूल मैंने माधुरी के बिस्तर के एक कोने पर रख दिये। थोड़ी देर के लिए उसकी रोगशय्या मानो सुहागरात की फूलशय्या बन गयी।

उसके बाद माधुरी ज्यादा दिन जीवित नहीं रही। उसके भाइयों ने उसके इलाज पर काफी खर्च किया। शैलेन ने भी कोशिश में कोई कसर नहीं रखी। कलकत्ता के सबसे बढ़िया नर्सिंग होम में उसे रखा। पर उसके पेट का अल्सर ठीक नहीं ही हुआ। आपरेशन टेबल पर ही उसने दम तोड़ दिया। मैं एक दर्जन

रजनीगंधा के गुच्छे लेकर उसे फिर एक बार देखने गया था।

मुखाग्निशैलेन ने ही किया। अपने पास से उसने पांच हजार रुपये खर्च कर श्राद्ध किया। कितने ही लोगों को भोजन करवाया। कीर्तन मंडली बुलवा कर कीर्तन करवाया। हम लोग तो हैरान रह गये। इसके पहले इन सब चीजों के प्रति शैलेन का विश्वास ही नहीं था। मैं समझ गया, यह सब माधुरी की इच्छा थी।

उस मधुर हृदय की एक और अंतिम इच्छा का नमूना शैलेन ने मुझे दिखाया। पहले जिस तरह बुक पाकिट में वह प्रेम पत्र रखकर घूमता था, उसी तरह उन दिनों वह एक मोटा लिफाफा लिये घूम रहा था। माधुरी बोल गयी थी, "मेरे मरने के पहले इसे खोलना नहीं।"

खोलने के बाद देखा गया, हरे रंग के उस लिफाफे में कोई चिट्ठी नहीं, बल्कि तीस हजार रुपये का एक चेक था जो माधुरी-शैलेन के नाम छोड़ गयी थी।

शैलेन बोला, "यह रुपये मैं क्यों लूंगा ?"

मैंने कहा, "ले ले। शादी की है। उपहार तो कुछ मिला नहीं, दहेज की रकम क्यों छोड़ेगा ?"

उसमें से कुछ रुपये शैलेन ने माधुरी के भाइयों को दिये और बाकी से माधुरी के नाम से अस्पताल में एक बेड रखा दिया ताकि गरीब असहाय नारियों की वहां चिकित्सा हो सके।

उसके बाद से साल में एक दिन शैलेन माधुरी की मृत्यु तिथि का पालन करता है और उस अनुष्ठान का एकमात्र मेहमान मैं होता हूं। कमरे की दीवार पर माधुरी की बीच के साईज की एक फोटो टंगी है। यह उसका अब का फोटो नहीं, उस जमाने का फोटो है। उसके यौवन के दिनों का फोटो।

उस यौवना की तस्वीर के आगे हम दो बूढ़े कुर्सी बिछाकर आमनेसामने बैठे रहते हैं। चाय पीते हैं, गपशप करते हैं। कभी-कभी कुछ भी न बोल कर चुपचाप बैठे रहते हैं।

शैलेन ने मृत्यु के हाथों से एक प्रेम को बचा लिया है और मैं वार्धक्य के हाथों से एक दोस्त को बचाता आ रहा हूं।

प्रभात बाबू उठ खड़े हुए। छाता सामने रहते हुए भी आज वे उसे भूल कर छोड़े जा रहे थे। मैंने उसे उठाकर उनके हाथों में दिया।

वे मुस्कराकर बोले, "थैंक्स।"

मान्यबर परीक्षक जी को

नारायण गंगोपाध्याय

सर,

परीक्षा की मेरी इस कापी को आप अंत तक पढ़ेंगे या नहीं, मैं नहीं जानता। आपने देखा होगा कि मैंने एक भी प्रश्न का जवाब नहीं दिया है, बल्कि परीक्षा के पूरे समय में आपको यह पत्र ही लिखता रहा हूं। चिट्ठी की दो-चार लाइनें पढ़ कर ही शायद आपकी भवें तन जायेंगी और आप कापी पर एक जीरो बैठा देंगे। उसके बाद मेरी गंदी लिखावट के लिए मेरे नाम यूनिवर्सिटी में रिपोर्ट भिजवायेंगे। खैर, मुझे जीरो दीजिए या मेरी रिपोर्ट कीजिए, उसकी मुझे विशेष चिंता नहीं। पर मैं सोचता हूं कि यह भी तो हो सकता है कि आप धैर्य के साथ मेरा यह लेख पढ़ लें। इसी उम्मीद से मैं इतना कुछ लिख रहा हूं।

प्रश्नपत्र के दो-एक सवालों का जवाब शायद मैं दे भी पाता, लेकिन उससे पास मार्क तो दूर की बात, पूरे बीस नंबर भी नहीं मिलते, इसलिए मैंने इसकी कोशिश ही नहीं की। और फिर आज शाम के बाद तो मैं पास-फेल की परिधि के बाहर हो जाऊंगा। कलकत्ता के आसपास अनगिनत ट्रेनें जो आती-जाती रहती हैं, उन्ही में से किसी एक के पहियों के नीचे आकर मैं अपना आखिरी हिसाब चुका दूंगा। जब आप इस कापी को देख रहे होंगे, उस समय तक ट्रेन के नीचे दबकर एक अपरिचित युवक के मृत्यु की छोटी-सी खबर आपके लिए पुरानी पड़ चुकी होगी और आपके दिमाग से मिट चुकी होगी।

आपका विवेक इस जगह पहुंच कर एक बार शायद चौंक उठेगा। आप कहेंगे, "छि:। छि:। परीक्षा पास न कर पाने पर आत्महत्या! इससे निकृष्ट कायरता की कल्पना भी कहीं की जा सकती है। देश के नवयुवकों में अगर इतना भी नैतिक बल न रहे तो देश का क्या होगा और जाति के भविष्य का भी क्या होगा?"

विश्वास कीजिए सर। मुझे ये सारी बातें मालूम हैं। आप विश्वास मानिए

मैं भी जीना चाहता था। मैंने सोचा था, मेरे छूने मात्र से संथाल परगने की पगली पहाड़ी नदी विशाल कैचमैंट एरिया के बीच थिरक उठेगी। मेरे बटन दबाते ही बिहार और पश्चिम बंगाल का सबसे महत्वपूर्ण उद्योगों वाला इलाका बिजली से जगमगा उठेगा। इस्पात कारखाने की भट्टी की लालिमा के पिघले हुए इस्पात में भारत के भविष्य की नींव में ही रखूंगा। सर, मैं आत्महत्या नहीं करना चाहता था।

मैं देख रहा हूं, मेरे चारों तरफ लड़के तेज रफ्तार से परीक्षा की कापी पर लिखे जा रहे हैं। उनमें से बहुत से मेरी ही तरह अभी तक स्वप्न देख रहे हैं और थोड़े ही दिनों में फ्रासलिस्ट में अपना नाम देखकर उनका स्वप्न टूट जायेगा। फिर भी इन्हीं में से कोई-कोई तो भाग्यशाली होगा ही। आने वाले भारत की आशा की मशाल उसके हाथ में होगी।। वे लोग भाग्यवान हैं – वे आगे बढ़ते रहें। मेरी ही तरह अनगिनत लोग खो जायेंगे या जी कर भी जिंदा नहीं रहेंगे, उनकी बात कोई पंचवार्षिकी सफलता के खाते में लिखी नहीं जायेगी। मैं आपको नहीं जानता, कभी देखा भी नहीं, कभी देखूंगा भी नहीं, लेकिन इतना जानता हूं कि आप एक अध्यापक हैं। विद्यार्थियों के काफी करीब आपको रहना पड़ता है। उनके जीवन का उतार-चढ़ाव आपको प्रभावित करता है। हो ना हो, शायद आप उन्हें प्यार भी करते हों, इसलिए आप पढ़ें या न पढ़ें मैं अपनी बात आपके सिवा और किससे कह सकता हूं !

सर, स्वप्न देखते हुए मैं यह भूल ही गया था कि मैं मेदिनीपुर के एक अनाम गांव के छोटे से किसान का लड़का हूं। लेकिन मेरे पिता किसान होते हुए भी दिल्ली के किसी प्रकाशमान नेता से उनका देश प्रेम कुछ कम नहीं था। 1942 के सितंबर की आधी रात एक जंगल में मैंने जन्म लिया था क्योंकि उन दिनों मिलटरी के लोगों ने हमारे गांव को जला दिया था। राष्ट्रीय झंडा हाथ में जकड़े हुए मेरे पिताजी का शरीर गोलियों से छलनी होकर एक धान के खेत में जा गिरा था।

मेरे पिताजी की इच्छा थी कि लड़का होने पर वे उसका नाम रखेंगे स्वाधीन कुमार। आग में लहलहाते प्रलय की उस रात पिता के खून का आशीर्वाद लेकर स्वाधीन आकाश के नीचे ही मैंने जन्म लिया था क्योंकि अंग्रेजों द्वारा किये गये तांडव अत्याचारों के बावजूद देश के एक भी आदमी का मन पराधीन नहीं था।

यह इतिहास भी रहने दीजिए सर। अगर आपने यहां तक पढ़ा होगा तो शायद अब आपका धीरज टूट जायेगा – मेरा वंशवृक्ष जानने की सरदर्दी आप क्यों लें और वैसे भी तीन घंटे से अधिक समय तो मुझे मिलेगा नहीं। कापी छीन ली जायेगी, इसलिए संक्षेप में ही अपनी बात बताता हूं।

किसान का लड़का हूं मैं, खेतीबाड़ी करके किसी तरह जी सकता था, या अकाल पड़ने पर जिस तरह बहुत से लोग बिना खाये या अखाद्य खाकर मरते हैं, उसी तरह मैं भी मर सकता था। लेकिन मेरी किस्मत खराब है। चाचा ने मुझे गांव के छोटे से स्कूल में भर्ती करवा दिया और मालूम नहीं आप विश्वास करेंगे या नहीं, मुझे एक स्कालरशिप भी मिल गयी। सर, यह स्कालरशिप ही मेरी दुश्मन साबित हुई। मैं सपने देखने लगा। मां मुझे छाती से लगाकर धाराप्रवाह रो रही थी। पिताजी की मृत्यु के बाद मां को मैंने पहली बार इतना रोते हुए देखा था। उसके बाद दोनों आंखों में आशा की रोशनी लिए मैं चाचा के साथ आठ मील दूर बड़ागंज के हाईस्कूल में भर्ती होने के लिए चल पड़ा। होस्टल में रहने के पैसे नहीं थे। धान और चावल के आढ़तिए सामंत के घर मुझे जगह मिली। ये लोग दूर के रिश्तेदार थे, लेकिन गरीब किसान की रिश्तेदारी को मानते नहीं थे। असली संपर्क तो जोतदार और प्रजा का था, यानि महाजन और कर्जदार का। मेरे चाचा ने उनके हाथ-पैर जोड़कर मेरे वहां रहने का बंदोबस्त कर दिया। हाईस्कूल में मेरा दाखिला हो गया और मेरी फीस भी माफ हो गयी। सर, महाजन के घर लक्ष्मी मानों खूंटे से बंधी हुई थी। उनके पास दो ट्रक थे, तीन गोदाम थे, लेकिन जो व्यापार करते हैं, वे कभी एक पैसा भी फालतू नहीं खरचते। वे पच्चीस हजार पहले जोड़ते हैं, फिर पांच सौ रुपये दान देते हैं। मुझे भी वे रहने-खाने को देते तो थे, लेकिन उसकी पूरी कीमत भी वसूल कर लेते थे।

मेरी यह कापी देखकर आप समझ ही रहे होंगे कि मेरी लिखावट खराब नहीं है। फिर गणित में भी मैं बुरा नहीं था। माइनर की परीक्षा में मुझे गणित में सौ में सौ मिले थे। शुरू-शुरू में तो मुझ पर कृपा करने वाले मुझे चिट्ठी-पत्री लिखवाते थे, उसके बाद खाता लिखवाने लगे, फिर धीरे-धीरे हिसाब-किताब भी जुड़वाने लगे। सुबह के दो घंटे मेरा यह नियमित काम बन गया।

पढ़ने का समय तो मुझे रात बारह बजे के बाद ही मिलता था। फिर आप ही सोचिए, क्या अच्छी तरह पढ़ने का कोई उपाय था? अड़हत से लगे एक ही छोटे से कमरे में मैं रहता था और मेरे ही साथ उन लोगों का एक मुनीम भी रहता था। मुनीम चालीस पार कर गया था। सूखे चमगादड़ सा चेहरा और उस पर अजीब सी बड़ी-बड़ी आंखों में विचित्र सी चमक। मैं जैसे ही पढ़ाई शुरू करता, वह हुक्का सुलगा कर बैठ जाता।

उस समय मेरी उमर भी कितनी थी? कुल बारह साल का तो था। तंबाकू के कश खींचते हुए आंखों को चमका-चमका कर वह फटी बांस सी गंदी आवाज़ में जो बातें मुझे सुनाता, उनका अर्थ उन दिनों में अच्छी तरह समझ नहीं पाया था। बाद में समझ गया। जुबान पर न लाने वाली गंदीगंदी बातें थीं। कैसे

कितनी लड़कियों का जीवन उसने बरबाद किया था, उसी का धाराप्रवाह विवरण मुझे सुनाया करता था।

अच्छा बुरा कुछ भी मेरी समझ में नहीं आता था। मैं उससे तंग आकर कहता—अब चुप भी कीजिए। मुझे थोड़ा पढ़ने दीजिए।

वह कहता—अरे चुप। किसान का बेटा विद्यासागर बनेगा क्या? हः, पकड़ यह हुक्का और तंबाकू पीना सीख। यही तेरे काम आयेगा।

मुनीम कभी थक कर सो जाता तो लालटेन बुझा जाता। सामंतों के यहां से हिसाब का जो मिट्टी का तेल मिलता था, उससे रात के नौ बजे बाद बत्ती जलाना असंभव था। स्कालरशिप के जो थोड़े से पैसे मुझे मिलते थे, उससे अपनी जरूरत की चीजें खरीदने के बाद तेल खरीदने के लिए पैसा नहीं बचता।

फिर भी फर्स्ट सैकेण्ड होता होता मैं आठवीं क्लास तक पहुंच गया। इसी समय से किताब खरीदने की समस्या उठ खड़ी हुई। स्कूल फाइनल की किताब खरीदने में सत्तर अस्सी रुपयों की जरूरत थी। चाचा ने धान बेच कर कुछ पैसे भेजे। दस रुपये सामंतों ने दिये, हैडमास्टर ने कृपाकर तीन कापियां मुझे दीं, फिर भी जितनी जरूरत थी, उसका आधा भी नहीं हुआ।

और सामंतों के दस रुपये का ऋण चुकाने के लिए मुझे खाते पर खाता लिखना पड़ा।

सर, माइनर में जब मुझे स्कालरशिप मिली थी, मैंने सोचा था, मैं साधारण लड़कों से ऊपर हूं। मुझमें कुछ ऐसी शक्ति है, जिसके बल पर मैं स्वाधीनकुमार स्वतंत्र भारत की तरह गौरव से सर ऊंचा कर खड़ा हो पाऊंगा। जिस भारत के लिए मेरे पिताजी ने अपना रक्त बहाया था, उस भारत में मुझे अपनी सच्ची जगह मिल जायेगी। लेकिन नहीं। न तो मैं ठीक तरह से पढ़ पाया, न ही अच्छी तरह से परीक्षा ही दे पाया। जब रिजल्ट निकला तो मैंने देखा, मैं थर्ड डिवीजन से पास हुआ हूं। हैडमास्टर से लेकर सभी ने मुझे धिक्कारा।

दो दिनों तक मैं मुंह छिपाकर पड़ा रहा, उठा भी नहीं, खाया भी नहीं। मेरे सर पर मां के आंसू टपटपाकर झर रहे थे। मां ने कहा—उठ बेटा उठ जा, फिर से मन लगाकर पढ़। जीवन में तू जरूर कुछ बन कर दिखायेगा। तेरे जैसे कितने दुखियारे लड़के पास नहीं कर सके, उनके लिए भी जरा सोच।

सर, मैंने फिर अपने आप को संभाला। इस बार मैं कलकत्ता आया। करता भी क्या? सरकार साहब के नाम सामंतों से चिट्ठी लिखवाकर लाया। सरकार सामंतों के रिश्तेदार थे। बड़ा बाजार में उनकी तंबाकू की दुकान थी। मैं भी वहीं रहने लगा।

पर यहां भी मुझे वही काम करना पड़ा। जरूरत पड़ने पर तकादे के लिए भी

निकलना पड़ता था । फिर भी लगता था, कलकत्ता तो कलकत्ता ही है । यहां के जीवन मे जिंदगी थी । यहां अवसर थे । कितने बड़े-बड़े कालेज थे । नामी विद्वान अध्यापक थे । लगता था, उन कालेजो में से किसी में मैं एक बार पहुंच सका तो नामी प्रोफेसर के ज्ञान का स्पर्श पाते ही मेरे मन की हजारों बत्तियां जल उठेंगी । मुझे लगता था सारी दुनिया का व्याकुल हृदय इस कलकत्ते की तरफ भाग रहा है ।

खुराक के धान को बेचकर उन पैसों के बल पर मैंने कालेज मे दाखिला लिया । मैं जानता था कि इसके लिए घर में सभी को शायद कई दिनों तक आधा पेट खाना पड़ेगा, या पूरा उपवास ही करना पड़े । लेकिन साथ मे यह भी लगता था कि अगर मैं परीक्षा में अच्छा कर पाऊं, अगर मैं इन्सान की तरह का इन्सान बन पाऊं . . . । अगर— ।

कालेज की बिल्डिंग काफी बड़ी थी । उसमे मानों मेले की भीड़ थी । उस भीड़ को ठेल कर जब मैं किसी तरह कालेज के दफ्तर मे जा पहुंचा तो सुनाई पड़ा – थर्ड डिवीजन ? आई०एस०सी० मे सीट ? सवाल ही नहीं उठता ।

एक दो नहीं सर, छः कालेजों ने मुझे दाखिला देने से इन्कार कर दिया । अंत मे किसी एक छोटे-मोटे कालेज में मुझे जगह मिली । मैंने वाइस प्रिंसिपल से भेंट की, ताकि मुझे कंसेशन मिले ।

कंसेशन ? वाइस प्रिंसिपल के तेवर चढ़ गये । बोले—थर्ड डिवीजन....।

सर !

वाइस प्रिंसिपल बोले आई०एस०सी० में तो हम लोग वैसे भी तो कंसेशन नहीं देते, तिस पर थर्ड डिवीजन ?

सर, मैं गरीब का लड़का ।

तुम्हारी तरह और भी तो गरीब लड़के हैं । उस दृष्टिकोण से तो मुझे कालेज के सारे विद्यार्थियों की फीस माफ करनी पड़ेगी ।

सर, मैं बिल्कुल किसान का लड़का हूं । सर . . .

वाइस-प्रिंसिपल बुरी तरह नाराज हो गये । बोले—तो फिर कालेज में पढ़ने के लिए आये क्यों ? खेतीबाड़ी ही करते । उच्च शिक्षा तुम लोगों के लिए नहीं है । जाओ, मुझे और तंग मत करो ।

कंसेशन मुझे मिला नहीं । लौटते समय मुझे सामंतों के मुनीम की बात याद आयी—किसान का लड़का । चला है विद्यासागर बनने – हुंः ।

सर, मुझे उसी समय गांव लौट जाना चाहिए था । वहां झुलसती हुई धूप अंगारे बरसाती थी, सर से पसीने की बूंदें टपकती थीं, फिर भी मेरे लिए वही जगह ठीक थी । शहर का अपमान मुझे इस तरह बिंधता नहीं लेकिन सर आशा

मुझसे छूटी नहीं। मैं अजीब सी जिद पर ठन गया। सोचा, इसका अंत मैं देखकर ही पीछे हटूंगा।

सरकार लोगों की तंबाकू की दुकान थी। उसी दुकान के एक किनारे मैं पड़ा रहता। सामंतों के यहां से यहां कितना फर्क था ? वह छोटा-सा अपना एक झुग्गीनुमा बसेरा, फिर भी खुला आकाश तो था, प्रकाश था। नहाने के लिए बड़ा सा तालाब था। हवा में चंपा के फूलों की सुगंध थी। और यहां बड़ा बाजार की संकरी गलियां। दिन के बारह बजे भी सारी दुकानों पर बिजली की बत्तियां जलती थीं। तीन हाथ की चौड़ी सड़क के दोनों ओर सीलन भरे गगनचुंबी मकान। हवा का नामोनिशान नहीं। रात एक डेढ़ बजे तक हजारों की भीड़। घुटन भरी गर्मी। कतारों से लगी दुकानों से तंबाकू व गुड़ की सुगंध। इन्हीं सब के बीच में एक कोने में तख्तपोश पर पड़ा रहता। रात भर चूहे दौड़ते, दिन भर तिलचट्टों का उत्पात। मुझे कालेज की फीस सरकार के यहां से मिलती थी, और ऊपर से पांच रुपये भी। उसके बदले में सुबह शाम मुझे तकादे के लिए निकलना पड़ता था। कोई प्राइवेट ट्यूशन करता इसकी भी गुंजाइश नहीं थी। और किताबें ? आई०एस०सी० की किताबें खरीदने में कितने रुपये लगते हैं, यह मुझे आज भी मालूम नहीं, और सर, शायद आपको भी मालूम नहीं होगा, क्योंकि आपके जमाने में जो पुस्तकें आपको पांच रुपये में मिलती थीं, अब वह बारह रुपये से कम में नहीं मिलतीं। एक दो पुरानी किताबें मैंने फुटपाथ से खरीदीं, पर उसमें तो सिलेबस का आधा भी नहीं रहता।

और मैं कितना पढ़ पाता था, सुनिए। खाने के लिए मुझे सरकार लोगों के बड़ बाजार के मकान पर जाना पड़ता था। खाना खाकर जब लौटता, रात के दस बज चुके होते। कम पावर का पीला धुंधला बल्ब जलाकर जब पढ़ने बैठता, आंखों में जलन सी होती। कापी में लिखे गये नोट कुछ समझ में नहीं आते। लगता, वो कोई अक्षर नहीं, स्याही से खींची गयी बेतरतीब लकीरें हैं। मैं कब सो जाता, मालूम नहीं। रात भर शरीर पर चूहे और तिलचट्टे ही दौड़ते फिरते।

मेरा कालेज भी वैसा ही था। घिचपिच सी भीड़ लगी रहती। जहां पांच को बैठना चाहिए, वहां एक बेंच पर सात आठ जनों को ठूंस कर बैठना पड़ता था। नोट लिखते समय कापी रखने के लिए टेबुल पर जगह नहीं मिलती। लेबरोटरी का भी क्या कहना ? जहां पंद्रह लड़कों को काम करना चाहिए, वहां पचास विद्यार्थियों को काम करना पड़ता था।

भावी वैज्ञानिक बनेंगे ये विद्यार्थी ? आजाद भारत का इतिहास जिन्हें बनाना है, उनकी पढ़ाई लिखाई का यह नमूना ?

फिर भी सर, मैंने अपनी कोशिश में कोई कमी नहीं की। दो चार जनों की

बात छोड़ दीजिए, मगर हमारी तरह के साधारण विद्यार्थी पढ़ने के लिए ही कालेज में दाखिला लेते हैं । फिर भी क्यों ऐसे विद्यार्थियों से कुछ भी नहीं होता, क्यों वे असफल होते हैं ?

एक घटना सुनाता हूं सर । आज ऐसी हालत में भी उस बात को याद करके मुझे हंसी आ रही है । कालेज का फाउंडेशन डे था । बड़े जोर-शोर से उसे मनाया गया । झंडा फहराया गया । भाषण हुए । सबसे बढ़िया भाषण वाइस प्रिंसिपल का था । कहते-कहते उनकी आंखों में आंसू आ गये थे ।

हम लोगों ने आंकड़े इकट्ठे किये है--कालेज के दस प्रतिशत लड़के ही करीब-करीब सारी किताबें खरीद पाते है, बीस प्रतिशत कुछ ही किताबें खरीद सकते है और बाकी के सत्तर प्रतिशत विद्यार्थी एक भी पुस्तक नही खरीद सकते । ऐसी स्थिति में क्या तो हम स्वयं शिक्षा प्राप्त करेंगे, और क्या ही दूसरों को दे पायेंगे । अगर इस समस्या का कोई समाधान नहीं निकला तो न मालूम इस देश का क्या होगा ।

हालांकि समाधान भी वाइस प्रिंसिपल ने सोचकर ही रखा था । उन्होंने कहा था— कालेज की शिक्षा गरीब छात्रों के लिए नहीं है ।

सर । परीक्षा की दूसरी घंटी भी बज गयी । अब ज्यादा देर तक मैं लिख नहीं पाऊंगा । अगर अब तक आपने पढ़ा होगा तो फिर आपकी इस दया पर और ज्यादा उत्पात करना भी उचित नहीं होगा । मैं सक्षेप में ही अपनी बात को समाप्त कर दूँगा ।

मां मेरी अनपढ़ थी । उनकी तरफ से टेढ़ी मेढ़ी लिखावट में चाचा ही मुझे चिट्ठी लिखा करते थे-- तुम बहुत बड़े बनो बेटे । देश के दस में से एक बनना । तुम्हारे बाबू जी तुम्हारा जो नाम रख गये हैं, उस नाम का सम्मान रखना । स्वाधीन भारत के तुम एक श्रमिक हो । यह बात नहीं भूलना बेटा ।

नहीं । मैं नहीं भूला । एक दिन के लिए भी मैं कुछ नहीं भूला । लेकिन आजाद भारत ने तो मेरी जिम्मेदारी नहीं संभाली, मेरी शिक्षा का रास्ता नहीं बनाया । उस तंबाकू की दुकान में नौकरी करके, पढ़ाई के नाम पर क्लास में अर्थहीन हो-हल्ले के बीच, घुटन भरी गर्मी, और फिर कोलाहल से भरे बड़े बाजार की गली के उस कमरे में, पीली धुंधली रोशनी में मेरी आंखों में सब कुछ अस्पष्ट दिखायी देता । लगता सर में खून चढ़ गया है और सर फट जायेगा । लगता, दौड़कर यहां से कहीं भाग जाऊं । कूद पड़ूं किसी नदी के पानी में । जी भरकर चंपा नागकेशर के फूलों की सुगंध लूं, बरसात के किसी काले बादल को हाथों में थाम लूं और कहूं और वरसों मैं तुम्हें नाप-नाप कर धान दूंगा ।

पर कलकत्ता में ताल का वह ठंडा पानी कहीं नहीं । और न ही नागकेशर

के फूलों की महक। मेरे गांव के घर में खाने के लिए धान नहीं। जहां आदमियों के मन में अंगारे बरस रहे हैं, वहां बारिश की एक बौछार तक नहीं। कहां जाऊं मैं? कहां भागूं?

पर मैंने उम्मीद नहीं छोड़ी। मै जीऊंगा। मैं कुछ बनकर दिखाऊंगा। मेरे बिना नये इस्पात भट्टी में आग नहीं जलेगी, पनबिजली योजनाओं की बिजली नहीं दौड़ेगी, अणुशक्ति की शोध का काम बाकी रह जायेगा। तेलशोधक कारखानों में पेट्रोल, मिट्टी का तेल, डीजल, पेराफिन नया रूप नहीं ले पायेंगे। मयदानव का मंत्र मुझे जबर्दस्ती हथियाना ही पड़ेगा क्योंकि हमें आजाद भारत का वैज्ञानिक जो बनना था।

सर! यह सब कुछ एक सपना सा ही था। मेरी तरह कालेज के हजारों विद्यार्थी सपनों के सहारे ही जीते हैं—ये सभी सपनों की डोर पकड़ कर चल रहे है, और एक दिन जब उनका अपना सपना टूटता है तो वे देखते हैं—

सर! पढ़ाई तो मेरी हुई नहीं। कब पढ़ता? किताबें कहां से आतीं? जो थोड़ी बहुत किताबें ले पाता हूं, या नोट जुगाड़ करता हूं, पीले बल्ब की धुंधली रोशनी में उनका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। अक्षर मानों लाखों की तादाद मे कीड़ों की तरह मेरी आंखों के आगे घूमते नजर आते और फिर कब मैं थक कर चूर हो जाता, मेरी चेतना आच्छन्न हो उठती—कुछ पता नहीं लगता। तंबाकू, गुड़, चूहे, तिलचट्टे और सीलन भरी बदबू वाली कोठरी में सुबह जब मेरी नींद खुलती, तो लगता जैसे सर पर बीस मन का बोझ है। और आठ बजने के साथ ही मुझे दूकान का खाता लिखने बैठ जाना पड़ता।

वार्षिक परीक्षा में कापी नहीं देखी जाती। फीस जमा करने पर झुंड के झुंड को प्रमोशन मिल जाता है। प्रीटेस्ट मैंने दिया नहीं। क्या पढ़कर देता? उसके बाद टेस्ट परीक्षा थी।

सर! यहां मैं अपने अपराध की एक बात कबूल किए लेता हूं। परीक्षा जब नजदीक आने लगी, सारे समय मेरे मन में एक न बुझने वाली चिता जलने लगी। किताब? अगर मेरे पास कुछ किताबें होतीं तो फर्स्ट न सही तो कम से कम सेकंड डिवीजन तो मुझे मिलता ही। गणित में तो डिस्टंक्शन भी मिल सकता था।

सर! आप मेरे ऊपर नाराज मत होइयेगा। मेरी मनोदशा आप समझिए। मैं पागल की तरह हो गया। उसके बाद —

उसके बाद—मैं कालेज के साथियों की किताबें चुराने लगा।

आप मेरे लिए जो भी सोच रहे हैं, सोचिए। क्या मैं स्वयं यह विश्वास कर सकता हूं कि मैं चोर बन गया? मेरे पिताजी ने देश की आजादी को अपने

खून से सींचा था। उसका लड़का मैं आज आखिरकार चोर बन गया।

सर! अगर हो सके तो विचार करने के पहले एक बार सोचकर देखिएगा, आखिर लड़के किताबें क्यों चुराते हैं? क्यों परीक्षा में नकल करते हैं? परीक्षापत्र कठिन होने पर क्यों हिंसक बन जाते है, अशोभनीय ढंग से क्यों परीक्षा हाल से बाहर निकल जाते हैं? यह अन्याय है। बहुत ही बड़ा अन्याय। ये बातें कभी नहीं होनी चाहिएं। इनका समर्थन कोई भी करेगा। फिर भी क्यों होता है यह सब? क्यों लड़के भूल से गलत रास्ते पर चल पड़ते है? एक पास या फेल होने पर उन लोगों का कितना बनता बिगड़ता है, क्या कभी आपने इस पर सोचा है?

चोरी की किताबों के बल पर किसी तरह खींच-खींच कर टेस्ट की परीक्षा में निकल आया। अगर फीस का जुगाड़ हो जाता तो टेस्ट नहीं देने पर भी मुझे परीक्षा में बैठने की अनुमति मिल जाती—यह मैं जानता था। पर वार्षिक परीक्षा की फीस की रकम भी तो कोई मामूली नहीं।

गांव में हालत खराब थी। चाचा की चिट्ठी से पता चला कि वहां खाने की मुश्किल पड़ी है। मां के पूजाघर की लक्ष्मी के डब्बे से सिंदूर लगा अंतिम रुपया तक खत्म हो चुका है—। शायद गाय बेचकर थोड़ा रुपया भेज पायें।

मैंने लिख दिया—गाय बेचने की जरूरत नहीं। मैं ही किसी तरह पैसा जुटाऊंगा। लेकिन कहां से जुटाता? स्टुडेंट्स एड फंड से पंद्रह रुपये की मदद मिली, उसके बाद? एक दिन बड़े सरकार ने मुझे बुलाया। बोले—परीक्षा की फीस के लिए इतना सोचने की जरूरत नहीं। पचास रुपये मैं तुम्हे दूंगा।

इतनी दया!

सर! इतने दिनों के बाद मैं समझ पाया कि दया सिर्फ दया नहीं है। उसके पीछे देनदार का कोई भयंकर दावा रहता है। इस दुनिया में दया बहुत महंगी पड़ती है।

परीक्षा की फीस तो मैंने जमा कर दी। और तब से पिछले दो महीनों से उस दया का ऋण मैं चुका रहा हूं।

आप यकीन कीजिए सर कि मैं गणित, भौतिकी, रसायनशास्त्र, बांगला, अंग्रेजी, कुछ भी न पढ़ सका। पचास रुपए के विनिमय में मैं रात-रात भर जागकर थकी हुई आंखों को जबरन खोलकर, बीस मन बोझ से लदे हुए दिमाग से सरकार मालिक के हिसाब के खाते को मैंने पूरा कर दिया।

किस तरह का खाता था वह? इनकम टैक्स बचाने का खाता। गोपनीय। पचास रुपये का दान मुझे अपनी हर स्नायु से, खून की हर एक बूंद से चुकाना पड़ा है। इसके बाद भी मैं पढ़ूंगा? मैं कोई अतिमानव तो हूं नहीं सर!

फिर भी मैं परीक्षा देने आया। हिम्मत नहीं छोड़ी। सोचा था, कोई चमत्कार घटेगा, चोरी से हाथ तो पक ही चुके थे। नकल उतारने के लिए किताब का पन्ना भी फाड लाया था। पर कोई चमत्कार नहीं घटा। कमीज के अंदर से कागज का पर्चा मैं किसी भी तरह नहीं निकाल पाया। फर्स्ट पेपर, सेकंड पेपर, थर्ड पेपर सभी मेरी आंखों के आगे नाचने लगे। दिमाग के अंदर सरकार एंड कंपनी के जाली हिसाब के आंकड़े घूमते रहे। हर परीक्षक का चेहरा जमा-खर्च के किसी पन्ने की तरह दिख रहा था।

बांग्ला की परीक्षा मेरी अंतिम परीक्षा है।

सर ! वार्निंग घंटी बजी। पांच मिनट के बाद कापी छीन ली जायेगी। मेरी बातें भी खत्म हो गयी हैं। आज ही शाम को किसी ट्रेन के पहियों के नीचे मैं अपने मन का सारा बोझ उतार दूंगा।

सर ! मैंने जीना चाहा था—। स्वाधीन कुमार हूं मैं। स्वाधीन भारत के लिए मैंने जीना चाहा था। मैं क्यों नहीं जी सका ? हजारों विद्यार्थियों की ओर से यह सवाल मैं आपके लिए छोड़ कर जा रहा हूं। जवाब आप सोचकर रखियेगा।

क्या मैं कायर की तरह आत्महत्या कर रहा हूं ? नहीं सर—नहीं। यह मेरी पराजय नहीं है, यह मेरा प्रतिवाद है। सन् बयालीस की सितंबर को प्रलय की रात, मेरे पिता ने देश की मिट्टी पर अपनी छाती का सारा खून उंड़ेल दिया था। मेरा खून भी देश के हजारों लाखों छात्र-छात्राओं के लिए इतिहास की एक सूचना बन जायेगा। वो इतिहास कब बन पायेगा, यह मुझे मालूम नहीं। क्या आप जानते हैं सर ? आप बोल सकते हैं ? प्रणाम। इति।

छोटी सी बात

संतोष कुमार घोष

वह मेरी पीठ पर झुक आया था। उसकी सांसें मेरे कानों को छू रही थीं। मेरे हाथों की उंगलियां मानो बेजान हो गयी थीं। मैंने उसे कहते हुए सुना—तुम खामख्वाह पुराने कागजों में उलझ रहे हो, धूल बिखरा रहे हो सरसिज, वह कहानी तुम्हें ढूंढे नहीं मिलेगी।

उसका चेहरा मेरे कानों के पास था। अस्वाभाविक आवाज थी, फंसी-फंसी भुतही ही जैसे पानी के नल में छेद रहने से निकलती है।

मैंने कहा—कुछ भी हो, वह लेख मुझे चाहिए ही।

—चाहिए ही ? उसने मजाक किया—चाहिए ही क्यों ?

—कहानी को मैं मिलाता। देखता सच में वही कहानी है या बिजू मामा की जो कहानी मैंने सुनायी, वह है।

—उस कहानी में क्या है ?

—सारी बातें तो याद नहीं। आंधी-पानी की रात थी, सांय-सांय हवा चल रही थी। मेरे घर के बाहर बरामदे पर भिखारिन बच्चे को अपने तन के नीचे ढंक कर उलट कर पड़ी हुई थी। बच्चा फिर भी रो रहा था। अंत में इधर-उधर ताकते हुए उसने अपने तन का कपड़ा उतार कर उसे चार तह लगाकर बच्चे को उसमें लपेट लिया। तस्वीर की तरह यह बात मुझे याद है।

सुनकर वह जोर-जोर से हंसने लगा। ऐसा लगा जैसे उसका काला अंगरखा धीरे-धीरे फूल रहा है और फूल-फूल कर रात के रंग में घुलमिल गया है।

उसकी आंखों में आंखें डाल कर देखूं इतनी मुझ में हिम्मत नहीं थी। मैंने खिन्न भाव से कहा—यह कहानी क्या हंसने की है ? उसने कहा—हास्यास्पद है। यह बात तुम स्वयं भी जानते हो। कितने पहले की लिखी हुई है बताओ तो ?

—गिनकर तो बता नहीं सकता। जब एक पैसे की मूंगफली खरीदकर एक

घंटा आराम से बिताया जा सकता था। चाय की दुकान मे दो पैसे की चाय की प्याली पर दो घंटे कट जाते थे। दोपहर के दो वक्त दो आने में धर्मतल्ला से अली र घूमकर बालीगंज तक जाया जा सकता था।

उसी समय हाथ उठाकर उसने कहा—रहने दो। इतना कहने की कोई जरूरत नहीं सरसिज। उस कहानी को भी तुम और मत ढूंढ़ो।

—क्यों कहानी मिलेगी नहीं क्या ?

—नहीं, कहानी है ही नहीं, इसलिए।

इतना कहकर वह थोड़ा खांसा। अति आदिम ढंग से। फिर थोड़ा मुस्कराया। फिर बोला—कहानी असल में मेरे पास है। यह देखो।

यह कहकर उसने अपने काले थैले के अंदर हाथ घुसा दिया। तह पर तह, तरंग जैसा उसका अंगरखा रात में अस्पष्ट सा हो गया। फिर क्या तो एक चीज़ निकालकर वह मेरी आंखों के सामने हिलाता रहा। मटमैली रोशनी में मैं समझ नहीं सका। मुझे लगा, वह एक बिल्ली का बच्चा है, सूखा सा। उसकी आँखें बाहर निकलने को आ रही थीं, आँखों की पुतलियां बुझी-बुझी सी थीं।

हाथ बढ़ाकर भी मैंने अपना हाथ रोक लिया। वह हंस रहा था।

—देखा न, तुम भी अब उसे नहीं चाहते। जिसे छूने तक से डरते हो, उसे कसे जिलाओगे ?

फिर उसने उस अजीब से जीव को अपने अंगरखे के नीचे छुपा लिया। बोला—उसे मेरे पास ही रहने दो। मैंने आँखें झपकाकर डरते हुए पूछा—तुम कौन हो ?

मेरी बातों का जवाब दिये बिना ही वह धीरे-धीरे पीछे की तरफ सरक गया। उसका अंगरखा थिरक रहा था और थिरकते-थिरकते रात के अंधेरे में घुलमिल कर स्थिर हो गया था। मैंने देखा वह भी कहीं नहीं है। तब मैंने उसे जाना। उसका नाम है समय...यह वह समय था जब...।

एक पैसे की मूंगफली में, आदि आदि। जब गैस के खंभों पर टंगे विज्ञापनों में मकान खाली से लेकर नौकर चाहिए, लड़का-लड़की चाहिए, से लेकर छात्र-छात्राओं का हुलिया तक निकलता था, जब ममतामयी मां और वह भिखारिन लड़की—।

समय ने मुझे अब की रोशनी में सब कुछ स्पष्ट करा दिया। इसीलिए पूरी घटना बाल झड़े हुए बिल्ली के बच्चे की तरह लगी। अगर वह मुझे अपने अंगरखे के अंदर ताकने-झांकने देता, अगर उस समय की आंखों और उमर, मन और प्रकाश, उस समय की सुगंध, मोह सब कुछ लौटा देता तो मैं इस सुंदर निर्लज्ज भिखारिन लड़की को फिर सजीव देख पाता। उस अंगरखे के अंदर सब

कुछ जीवंत था। बाहर खींचते ही सब कुछ मुर्दा।

—उसके बाद क्या हुआ सरसिज ?

—उसके बाद बिजु मामी ने बड़ी ही ठंडी आवाज में मुझसे कहा—आओ।

मैं टैक्सी का किराया चुका कर नीचे उतर आया। गंदे कच्चे नालों को पार करने के लिए, बड़े कायदे से एक छलांग लगायी, फिर भी शार्क स्किन के पैंट पर कीचड़ के छींटे पड़ ही गये।

ये गली मानो इसी टैक्सी के नाप की बनी हुई थी। जैसे दियासलाई की डिबिया के ऊपर और नीचे का हिस्सा बिलकुल सही-सही नाप का होता है। घुसते ही मुझे लगा ा मैं पहचानता हूं। कम से कम इस महक को। पहले कभी मैं एक दिन यहाँ रहा था। अचानक पुराने प्रेमी के कमरे में घुसने से जैसा लगता है, सहमा-सहमा सा, थोड़ा सा संकोच और थोड़ी-सी जान-पहचान। शरीर का एक-एक मोड़, जम्हाई लेने की अदा, बालों की सुगंध, पहले जो भी कुछ इस्तेमाल करता था, अब नहीं कर सकता, अजीब-अजीब सा लगेगा। आमने-सामने होकर भी एक-दूसरे के करीब नहीं हो सकते। थोड़ा सा अंतराल रह ही जायेगा, बाधा किस बात की थी —मेरी उम्र ? मेरे हवाई शर्ट के पाकिट में रखे ताजे नोटों का बंडल ? मेरी जूतियां थोड़ी कम ही चमकतीं तो अच्छा होता।

बिजुमामी एक लालटेन लेकर आयीं। मैंने कहा—इसकी जरूरत नहीं थी। मैं ठीक ठीक चला आता। परिमल कैसा है मामी ?

कहते-कहते जिस कमरे के अंदर जाकर मैं खड़ा हुआ, अगर कोई बुखार में भी होता तो पसीने में घुल कर उसका बुखार उतर जाता। दरवाजा तो जरूर कोई होगा, नहीं तो मैं अंदर कैसे। खिड़की कह सकूं, ऐसा कुछ दिखाई नहीं पड़ा। परिमल कैसा है मामी ?

मामी के गंभीर और गुमसुम चेहरे को देखकर मुझे समझ जाना चाहिए था कि मेरा प्रश्न कितना निरर्थक था।

मामी ने उंगली के इशारे से अंदर का एक कमरा दिखा दिया। एक स्टूल रखा था। मैं उसी पर बैठ गया यद्यपि मेरे पेट की चर्बी पर खिंचाव सा पड़ रहा था मैं सोच रहा था कमीज के बटन खोलूं या नहीं, जूते पहनकर अंदर आना ठीक है कि नहीं। फिर चारों तरफ नजर दौड़ाकर देखा कि किसी का भी कोई पुराना जूता या चप्पल दिख जाय।

—चाय लाऊं ?

मैं होश में आया। देखा, बिजूमामी मुझ से ही पूछ रही थीं।

मैंने कहा—ले आइये।

कमरे के कोने में रखी चाय की प्याली को चींटियां चाट रही थीं। दो तिलचट्टे प्याले के अंदर अपनी सूंढ हिलाते हुए झांक रहे थे। प्याली को हाथ में उठाकर बिजूमामी को मैंने जाते हुए देखा।

(सरसिज उसके बाद ? कुछ मत छुपाओ)

—नहीं, छुपाऊंगा नहीं। देखो, तुम कौन हो, मैं नहीं जानता। हो सकता है तुम मेरी आत्मा हो, हो सकता है मेरा विवेक, या फादर कनफेसर। सारा कुछ कह डालूं, इसीलिए तो बुलाया है तुम्हें। तुम्हारे आगे कबूल करता हूं कि मैं चाय पी नहीं सका था। क्या हुआ, पता है ? चाय का कप हाथ में बढ़ाकर लेते ही वह हाथ से फिसल कर गिर पड़ा। मेरे सफेद शार्कस्किन पेंट पर उसके दो एक छींटे भी पड़े। बिजूमामी लजाकर बोली—अरे।

इतना कहकर कपड़ा लाने दौड़ीं। मैंने भी कहा—अरे।

हंस रहे हो ? तुम क्या कहोगे मैं जानता हूं।

क्या मैंने जानबूझकर कप गिरा दिया था—मैं स्वयं ही समझ नहीं पाया। थोड़ी देर पहले उसी प्याली में मैंने तिलचट्टे को देखा था। कमरे की जमीन मानो कच्ची गंदी मिटटी से लथपथ थी। अजीब सी दुर्गंध वाले कमरे में बैठकर मेरे गले के नीचे कुछ नहीं उतरता।

इस बात को लेकर बाद में मेरे मन में पश्चाताप नहीं हुआ हो, ऐसी बात नहीं। मेरा व्यवहार ठीक नहीं था। बिजूमामी इस बात को समझ गयी या नहीं, मुझे नहीं मालूम। पर मैं भी क्या करता। सभी तो अपनी इच्छा के आगे झुकते हैं। मुझे अगर उल्टी आयी तो क्या यह मेरा अपराध था ? क्या हिचकी लेना या छींकना हम रोक सकते हैं।

(क्या तुम्हें याद नहीं कि सिर्फ दस बारह साल पहले तुम इससे भी नीचे के स्तर पर थे ? ऐसी गली, ऐसे कमरे में तुम आसानी से सांस ले पाते थे)।

हाँ, ले पाता था। पर अब नहीं। देखो, एक आदत से दूसरी आदत पड़ जाती है, जन्मांतर की तरह। कभी मैं भी इस अंधे कुएं में जीता था। यह उतना ही सच है, जितना सच यह है कि मैं आज उस स्थिति से निकल आया हूं। वास्तविक स्थिति को निष्कपट स्वीकार किया जा सकता है। दस साल की उम्र में बनी कमीज़ अगर बीस वर्ष की अवस्था में न अंटे तो यह गलती किसकी है ? जिसका शरीर है उसकी तो नहीं न—समय की है।

बगल वाले कमरे से धड़धड़ की आवाज आ रही थी। मैंने जिज्ञासु नयनों से देखा।

—परिमल है। छाती में बलगम जम गया है। सांस लेने में तकलीफ होती है, इसलिए हर वक्त धड़धड़ की आवाज निकलती है। अभी तो सो रहा है फिर

भी। घर की जमीन मानो कब-कब की जमी काई से बनी हुई थी, घर का फर्श सड़क से नीचा था, मानो सूखा हुआ कोई हौज हो।

(सरसिज अब और मत बोलो। इसके बाद क्या-क्या कहोगे मैं जानता हूं। छत के खंभों में दीमक लग गयी है, फटा हुआ बिस्तर, दरवाजे के कोने में जाले, यही सब न? गलत तो नहीं कहोगे, पर इस वर्णन में जान नहीं होगी। जिस जीवन के अब तुम कोई हिस्से नहीं, उसकी तस्वीर तुम खींचने की कोशिश मत करना।)

लालटेन बुझने-बुझने को हो रही थी। उस तरफ देखते हुए मैंने पूछा--परिमल कब से बीमार है मौसी।

--कोई बाईस दिन हो गये?

—डाक्टर क्या कह रहा है?

—ठीक तरह से डाक्टर को दिखा ही कहां पा रही हूं कि कुछ कहेगा। अभागिन के हाथ मे भी कुछ नहीं है। गले में कुछ नहीं है, हाथों में नहीं, उसकी तरफ देखूं तो जी भर आता है सरसिज। शादी में दो-चार तोले सोना जो मिला था, इन वर्षों में वह भी सारा बेच डाला।

--आप कब आयीं मामी?

—पिछले बुध को आयी थी। आज बुधवार है। आठ दिन समझो। बेटी तो अपनी है। पेट में जो धरा था। खबर पाकर रह नहीं सकी। सरसिज तुम तो जानते हो, मुन्नी मेरी कितनी अपनी है।

—जानता हूं मामी।

—हाथ में जो कुछ था उसे बटोर कर ही दौड़ी चली आयी। वहां का हाल भी तो तुमसे छुपा नहीं है। टुकु इस बार इम्तहान में बैठेगी। फीस अभी भरी नहीं है।

—मैं सब समझता हूं मामी।

आंखों को आंचल से ढंकते हुए विजू मामी ने मुझे अपनी साड़ी का फटा हिस्सा दिखा दिया।

—सरसिज, लड़कियों के फ्राक सारे फट गये हैं। दो महीने से घर का किराया बाकी पड़ा है—। छब्बीस दूने बावन रुपये। एक वक्त भात दूसरे वक्त रोटी। महीने का सारा राशन तक नहीं उठा पाती हूं। फिर भी जब खबर मिली तो जो कुछ भी था, उसे लेकर चला आना ही पड़ा। परिमल की जान तो पहले है न, बाद में देखी जायेगी।

आंचल की गिरह खोलकर बिजूमामी ने एक कुचला, पुराना नोट निकाला। बिजूमामी कदम-कदम मेरी तरफ बढ़ आयी थी, मैं पीछे की तरफ सरक रहा

था। उसकी आंखें स्थिर थीं। मुझे लग रहा था, बिजूमामी यह रुपया मेरे हाथों में ठूंस देंगी। दिया भी। उसका हाथ कांप रहा था, गला भी।

—मेरे हाथों में अब और कुछ नहीं है सरसिज। तुम देख लो, अगर परिमल का इन्जेक्शन इससे ला सको। बड़े कष्ट से लौटने भर का किराया बचा पायी थी।

रुपया मैंने नहीं लिया था। ले नहीं सका। मैं चला आया। यह बात भी उतनी बड़ी नहीं है। मुझे वह कहानी याद आ गयी। 'कोड़पत्र'। भिखारिन लड़की ने अपने बदन से कपड़ा उतार कर बच्चे को ढक दिया था। (मुन्नी यानि उषा के साथ उस दिन तुम्हारी मुलाकात नहीं हुई थी सरसिज ?)

—हुई थी। लालटेन पकड़ कर उषा ही मुझे गलियारे तक छोड़ने आयी थी। वहां पहुंच कर मैंने मुड़ कर देखा था। लालटेन की रोशनी और कालिख ने उसके शरीर को टुकड़ों में बांट दिया था।

यह क्या हाल बनाया है तुमने अपना उषा ?

सुन कर उषा हंसी थी, मुंह फेर लिया था।

बोली—बीमारी से उठी हूं। और उनकी यह बीमारी। रोज ही रात भर जागना पड़ता है।

उषा के सिर पर कपड़ा नहीं था। उसके बाल उड़ रहे थे। लालटेन की बत्ती कांप-कांप कर उसके शरीर, चेहरे, गालों पर और आंखों में प्रकाश और छाया का खेलखेल रही थी।

उषा मुस्करायी—क्या देख रहे हो प्रेतनी को ? पिछले कई वर्षों में मैं प्रेतनी बन गयी हूं न ?

मुझे कहना चाहिए था—नहीं, तुम वैसी ही हो। पर मैं चुप रहा।

उषा ओंठ दबाकर हंसी। बोली—तुम पहले से अच्छे हो गये हो।

—तुम और भी मोटे हो गये हो। उषा यही कहना चाहती है कि नहीं, समझ नहीं पाकर मैं रूमाल से मुंह पोंछने लगा। मेरा शार्कस्किन का पैंट, मेरा हवाई शर्ट मुझे उस वक्त चुभ रहा था।

उषा को मैंने कहते हुए सुना, हमारी इस गली में तुम्हें टैक्सी नहीं मिलेगी समझे। सारी रात खड़े रहोगे तो भी नहीं।

मैं अकचका गया। पर इशारा समझ गया इसलिए जल्दी से सड़क पर उतर आया।

फिर आऊंगा, कल आऊंगा, अस्पष्ट आवाज में मैंने ऐसा ही कुछ कहा होगा।

उसने कहा— खाना ढका हुआ पड़ा रहा, तुमने एक बार छुआ तक नहीं ?

मैंने कहा —नहीं। इस बरामदे में बैठकर मुझे सिगरेट पी लेने दो।

वह हंसा। फिर बड़े बेढंग से उसने मुझे पीछे से लपेट लिया। अंधकार भरे रंग की बाहें मेरे गले में लिपटी थीं—क्या पता दाब ही न दे।

उसे, जिसका चेहरा उस समय मैं देख नहीं पा रहा था, वह था और मुझसे लिपटा हुआ था। मैंने उसे कहते हुए सुना—क्या होगा सिगरेट खत्म करके? थोड़ी सी राख, थोड़ा सा धुआं। और फिर इस दो घंटे में कितनी सिगरेटें पी ली हैं, कहो तो? इससे तो अच्छा है खाने का ढक्कन खोलो, पेट में कुछ डालो।

— कहा तो, मुझे भूख नहीं है।

— क्यों नहीं है?

—क्यों, तुम्हें मालूम है। मेरा मन उदास है। आज मैं उषा को देख आया। उस कमरे में घुसने पर उसका हाल देखकर तुम भी रो पड़ते। जानते हो, उषा का पति परिमल बहुत बीमार है, जीने की कोई उम्मीद नहीं। उषा के हाथ में रुपया नहीं, हाथ में एक कंगन तक नहीं।

उसने कहा—मैंने सब कुछ सुन लिया सरसिज। तुम्हारा मन इसलिए खराब है?

उसके कहने का ढंग टेढ़ा था।

मैंने कहा—यह सब कहते हुए मुझे कष्ट हो रहा है। उषा मेरी कौन है तुम जानते नहीं, इसलिए ऐसा कह रहे हो। क्या हो सकती थी। एक गलती की कितनी बड़ी कीमत चुका रही है वह। वह ठहाका मारकर हंस पड़ा। उसकी हंसी टूटे हुए शीशे के ग्लास के हजार टुकड़ों में मुझे बिंधने लगी। हंसी रोककर उसने कहा—छाती पर हाथ रखकर कहो तो सरसिज, तुम्हारा मन सच में खराब है? उषा ने तुम्हारी अनदेखी कर परिमल से शादी की थी, वह सुखी नहीं हुई। अंधेरे कमरे में वह घुट-घुट कर जी रही है, इससे क्या तुम्हें खुशी नहीं हुई?

मैंने कोई जवाब नहीं दिया। देने से कोई फायदा भी नहीं। वह नीच मन का है। अविश्वासी है। उषा को वह समझ नहीं सका। बिजूमामी की बात अगर उसे कहूं तो क्या वह समझेगा?

लड़की ने बिजूमामी का प्यार, आखिरी का दस का नोट भी दे देना, यह सब सुनकर भी शायद वह हो-हो कर हंस उठता।

(सरसिज, दूसरे दिन सुबह तो तुम फिर वहां गये थे?)

हां गया था। पर इस बार मैं टैक्सी को गली के अंदर नहीं ले गया। हाथ में दवा, थैले में फल, धोती संभालता हुआ मैं उषा के घर के दरवाजे पर पहुंचा। चारों तरफ के मकानों में कच्चे कोयले की अंगीठी जल रही थी।

दरवाजा खोलकर आज भी बिजूमामी ही खड़ी हुई।

—परिमल कैसा है मामी?

—वैसा ही। आओ। दिन में जितनी रोशनी को अंदर आने की छूट थी, उस प्रकाश में घर की गरीबी और भी प्रकट हो उठी, उसका वर्णन मैं करना नहीं चाहूंगा। पुराना अंगोछा, फटी हुई लुंगी, दीवारों में दाग, गंदा बिस्तर, चारों ओर मक्खियां भिन्न-भिन्न कर रही थी। यह सब कुछ तो रहेगा ही, था ही। पहले दिन मैं जिस मोढ़े पर बैठा था वह मुझे मिल गया। आज मैं धोती कुरता पहनकर आया था इसलिए बैठने में दिक्कत नहीं हुई।

मैंने दवा बिजूमामी के हाथ में दे दिया, फल भी। बिजूमामी का चेहरा दबी हुई हंसी में उज्ज्वल हो उठा। उन्होंने इसे छुपाने की कोशिश भी नहीं की। बगलवाले कमरे से घड़धड़ की आवाज आ रही थी। मेरे कान किस तरफ हैं, इसे भांप कर बिजूमामी बोली कल सारी रात इसी हालत में कटी थी। मां बेटी पारी-पारी से रात भर जागते रहे। बेटी को हटा कर भगवान से प्रार्थना की कि यह रात किसी तरह से कट जाये भगवन। इस कमरे में बेटी सर फोड़ कर खून बहा रही थी, दूसरे कमरे में रोगी की आर्त्त आवाज। क्या भीषण रात थी, तुम्हें कहकर समझा नहीं सकती बेटे।

बिजूमामी अब चुप हो गयी।

—बीच-बीच में मुन्नी दौड़कर इस कमरे में आ रही थी। उसकी तरफ देखा भी नहीं जा सकता था। आंखें मानो जल रही थीं। कल तो तुमने खुद ही देखा था। गाल खून से तर हो गये थे। मैंने परिमल को थपथपाया, हाथ फेरा, बैंडपैन दिया। फिर भी मुन्नी को रोगी के पास ज्यादा देर बैठने नहीं दिया। उसके शरीर का हाल देख ही रहे हो। हड्डियों का ढांचा भर रह गया है। भाग्य में जो है, उसे कौन टाल सकता है। फिर भी आंखों के सामने जब तक हूं, भरसक संभाल रखती हूं। सरसिज चाहे कुछ हो, मैं मां तो हूं न!

मेरे रोंगटे खड़े हो रहे थे। मामी की आँखों के नीचे काला पड़ गया था। बाल चूने में धुले हुए लग रहे थे। मैंने कहा—आप भी तो अच्छी नहीं दिख रही हैं मामी। इस तरह से रात भर जगेंगी तो आप भी पड़ जायेंगी।

बिजूमामी हंसी। आंसू और मुस्कराहट, दोनों मिलाकर एक अजीब-सा रंग खिल गया बिजूमामी के चेहरे पर। बोली—मेरी बात छोड़ो। मैं तो गिनती के बाहर हूं। बुलाहट आज भी आ सकती है, कल भी। मान लो आज ही बुलाहट आ जाये तो कम से कम यह तो जानकर जाऊंगी कि अब डरने की कोई बात नहीं। अभागिन का सर्वनाश होने से बच गया है।

(सरसिज, इस एक बात से बिजूमामी को तुम नयी रोशनी में देख सके?)

हां, यह सच है। उस एक क्षण में बिजूमामी मुझे गरीब नहीं लगी थी। भाग्य की मार से, अभाव की खींचातानी में बिजूमामी ने सब कुछ खो दिया था,

फिर भी जो कुछ बचा पायी थी, उसकी कीमत भी कुछ कम नहीं थी। यह एक और ही तरह का जीवन था—यहां हर कोई एक दूसरे के कंधे का सहारा लेकर जी रहा था। उसी तरह जिस तरह दो हलके-फुलके ताश के पत्ते एक-दूसरे के सहारे खड़े रहते हैं।

रोगी के लिए किराये की नर्स रखने का इनके पास कोई उपाय नहीं था और शायद उपाय रहता भी तो रखती नहीं। इस जीवन को मैं कभी पहचानता था, आज उसे फिर से जाना।

मैंने दबी आवाज में पूछा—उषा कहां है मामी ?

बिजूमामी बोली—सो रही है। सारी रात इस कमरे से उस कमरे में दौड़ रही थी। छटपटा कर थोड़ी देर पहले ही दोनों आंखें जुड़ी हैं। मैंने उसे जगाया नहीं। सोने दो। जिंदगी भर के लिए चैन की नींद तो उससे छूट ही रही है।

बाहर गली के छोर पर कोई कुत्ता बड़ी देर से रो रहा था। उंगली से इशारा कर बिजूमामी बोली—वह सुनो, रोज इसी तरह से रोता है। सुबह शाम, आधी रात को भी। कभी-कभी दरवाजे पर आकर रोता है। उसका यह रोना मुझे बड़ा ही अशुभ लगता है। परिमल शायद अब और नहीं जीयेगा बेटा।

एकाएक पता नहीं मुझे क्या हुआ। इस एक बात ने मेरे सामने मुझे नालायक और असहाय बना दिया। बड़ी तकलीफ से गले में सारी ताकत लाकर मैं उठ खड़ा हुआ और बोला—जियेगा मामी। हम लोग उसे बचा लेंगे।

बिजूमामी शायद मेरी बात समझी नहीं, पलक झपकाये बिना मुझे देखती रही।

मैंने कहा—जियेगा मामी। हम लोगों में जितनी हिम्मत है उतना हम करेंगे।

फिर मैंने खांस कर गला साफ कर सारा संकोच छोड़कर कहा—मामी, तुम गलत मत समझो। मेरे हाथ में भी ज्यादा कुछ है नहीं। तुम तो जानती ही हो कि आजकल मैं लखनऊ में रहता हूं। पिछले कई दिनों से होटल में बहुत खर्च हो गया है। फिर भी थोड़ा-बहुत उसके फल और दवा के लिए मैं देकर जाऊंगा।

मैं पाकिट में हाथ डालने ही जा रहा था कि बिजूमामी ने मुझे रोक लिया। शायद वह अभिभूत हो गयी थी। उसकी आंखें छलछला गयीं। बोली—रुको बेटा। मुझे नहीं। मुन्नी को बुला लाती हूं। जो कुछ तुम्हें देना है, उसे ही अपने हाथों से देना। कम से कम मुन्नी जान सकेगी कि वह बिलकुल अकेली नहीं है। उसके दुख में खड़े होने के लिए उसका कोई तो साथी है।

बिजूमामी दौड़ कर अंदर की तरफ जा रही थी कि अचानक चौंककर रुक गयी। एकाएक उसके चेहरे पर कई रेखाएं उभर आयीं। उसने एक बार मेरी

तरफ देखा। वह तस्वीर में साफ-साफ अब भी देख सकता हूं, मानो मामी कुछ कहना चाहती थीं। कोई बात ओठों तक आते-आते सूख कर थम गई हो ।

बिजूमामी लौट कर मेरे करीब आयी, जितना करीब वह आ सकती थी। सरसिज ! (मामी की आवाज धीमी थी) सरसिज, कितना ?

पहले तो मैं समझा ही नही, बाद में जब एक बार बिजूमामी फिर उसी आवाज में बोली—कितना ? तो मैं तुरन्त सारी बात समझ गया। वह कुत्ता तब भी घिघिया रहा था। पतले मलमल के कुरते की पाकिट से मैंने एक नोट निकाला। सौ रुपये का नोट था। मैंने कहना चाहा, मामी फिलहाल—बात खत्म नहीं हुई।

—एक सौ रुपये। बिजूमामी की आवाज रुंध गयी। बोली—सारे रुपये उसी को दोगे बेटे ? इससे तो अच्छा होगा कि इसे तुड़ा लाओ—मुझे·· मुझे कुछ नहीं दोगे ?

आग की लौ में जिस तरह कागज का टुकड़ा सिकुड़ता है, उसी तरह बिजूमामी का चेहरा लोभ से सिकुड़ने लगा। एक सौ रुपये—यह एक शब्द मानो स्टीमर की तरह नदी की छाती को चीरता हुआ पानी में एक मांग बनाकर चल गया। एक तरफ उषा थी, उसका गंदा छोटा सा कमरा, मरणासन्न पति, दारिद्रय, वैधव्य सामने खड़ा था, दूसरी तरफ बिजूमामी की अपनी गृहस्थी, एक तरफ मकान का किराया बाकी पड़ा हुआ था, लड़कियों के लिए फ्राक का कपड़ा चाहिए था, राशन चाहिए था—जिस गृहस्थी को बिजूमामी अंधी ममता में भूली हुई थी। अब इस वक्त दोनों साफ-साफ दो हिस्से में बंट गया।

(– 'क्रोड़ पत्र' नाम की कहानी, जिसमें भिखारिन लड़की की बात है वह कहानी अगर मिल जाती तो तुम क्या करते ?)

—फाड़ डालता।

उसने कहा—हूं : ।

फिर काफी देर तक वह चुप रहा। उसके चेहरे से रहस्यमयी हंसी मिट चुकी थी। अंत में उसने धीरे से कहा—सरसिज, तुमने केवल बिजूमामी को ही देखा, तुमने उस घर के उस कमरे को नहीं देखा। घर की असल कुंजी तो उस कमरे में ही थी। एक खटिया रखने से जो कमरा भर जाता है, उस कमरे में कितने बड़े नाप का मन रह सकता है ? यह हिसाब अगर नहीं जानोगे सरसिज, तो इस कहानी को लिखने की कोशिश तुम मत करना।

गाछ

ज्योतिरिंद्र नंदी

एक वृक्ष। बहुत पुराना। वृक्ष सुंदर है या नहीं यह विचार किसी के मन में नहीं आता। वृक्ष अपने से खड़ा है। इसकी जरूरत भी है या नहीं— इस प्रश्न को लेकर किसी के सर में दर्द नहीं होता। जिस तरह लोग सर के ऊपर आकाश देखते हैं, बादल देखते हैं, पैर के नीचे मिट्टी और घास देखते हैं, उसी तरह आंखों के सामने खड़े वृक्ष को लोग देखते हैं। शाम को देखते हैं, दोपहर को देखते हैं, सुबह को देखते हैं। सिर्फ आंखों से ही देखते हैं। हृदय से, अनुभूति से देखते समझते नहीं।

किसी गाछ को इस तरह से समझना-बूझना पड़ेगा, ऐसी बात किसी के दिमाग में भी नहीं आयी। दिन बीतते जाते हैं, मौसम बदलता रहता है, साल गुजर जाते हैं—गाछ एक ही जगह अडिग खड़ा रहता है।

बरसात में उसकी पत्तियां बड़ी हो जाती हैं, पुष्ट होती हैं। शरद ऋतु में पत्ते भारी हो उठते हैं, मोटे हो जाते हैं। हरा रंग और भी गहरा होकर काला सा दिखने लगता है। हेमंत ऋतु में अचानक गहरा हरा रंग धूसर हो उठता है और फिर शीत ऋतु आते-आते उसमें एक पीलापन छा जाता है, जैसे खून की कमी से प्रसूती का रंग पीलिया के रोगी जैसा हो जाता है। पत्ते झड़ जाते हैं। गाछ विरक्त, नाराज हो जाता है। पर उस समय भी गाछ गाछ ही रहता है।

गाछ का चेहरा सिर्फ काठ का रह जाता है। छोटा काठ, चिरा हुआ काठ, चौड़ा काठ, पतला चिकना काठ। आदमियों की उंगलियों की तरह टुकड़ों में बंटा काठ—गाछगाछ नहीं, काठ का पुतला बना खड़ा रहता है।

लेकिन क्या इसलिए कोई गाछ पर नाराज होता है? नहीं। क्योंकि घने बादलों से ढके आकाश के नीचे अरण्य का रूप धर कर जब गाछ खड़ा रहता है, उस समय आदमी उसे जिस रूप में देखता है, सर्दी के मौसम में सूखे हुए आकाश के नीचे पतली मोटी अनगिनत लकड़ियों का बोझ लिए जब गाछ खड़ा रहता है,

तब भी आदमी उसे उसी रूप में देखता है। इसीलिए तो कह रहा था, लोग ऊपर-ऊपर ही देखते हैं। मन से देखते समझते नहीं। अगर समझते तो फाल्गुन के महीने मे पत्तियां जब हरे और लाल का इकट्ठा रंग पकड़ती हैं तो उस समारोह को देखकर आदमी खुशी से झूम उठते। या फिर बैशाख के महीने म असंख्य बौर और अजीब ललाई लिए गाछ सारे आकाश को लालिमामय बना देते हैं तो आदमी खुशी के मारे चिल्ला उठता। पर ऐसा कोई नहीं करता। अब तक किसी ने किया भी नहीं है।

दो या तीन मकानों के बीच में जो परती जमीन का एक टुकड़ा है, उस पर बड़ी-बड़ी टहनियां लेकर एक गाछ खड़ा है, इसलिए लोगों को थोड़ा आराम मिलता है—लोग सिर्फ इतना ही समझते है। इस घर के लोग इस बात को जानते हैं। उस घर के लोगों को भी यह मालूम है। अगलबगल के दो चार घरों के लोग भी अपनी सुविधा के लिए गाछ के करीब आते है, जैसे सुबह के समय अखबार हाथ में लिए दो-चार बूढ़े सज्जन गाछ के नीचे इकट्ठे होकर राजनीति, समाज नीति, अर्थ नीति पर आलोचना करते है, दोपहर के समय इस घर की बूढ़ी, उस घर की बूढ़ी इस घर की बहू, उस घर की बेटी के साथ गाछ के नीचे पतली कालीन जैसी बिछी घास पर पैर फैलाकर, रसोई की बात, सिलाई कढ़ाई की बात, बच्चा होने, न होने की बात करते समय काटती हैं और शाम ढलते ही लड़कों का झुंड गाछ के चारों ओर हो-हल्ला, दौड़-धूप करता है। गाछ पर चढ़ कर टहनियां और पत्तियां तोड़ता है। कभी किसी दिन गाछ की डाल पर झूला टांग कर वे झूला झूलते है।

ठंड की दुपहरी में गाछ की छांह में सर रख कर शरीर को धूप में रख कर कोई-कोई कहानी की किताब पढ़ते हैं। फिर गरमी की रात में इसी पेड़ के नीचे ठंडी चटाई बिछाकर मुहल्ले के पांच सात आदमियों को ताश खेलते हुए भी देखा गया है।

और टहनियों पर भिन्न-भिन्न प्रकार के चिड़ियों की चहचहाहट, गुंजन, पंख फड़फड़ाने की आवाज और चोंच से चोंच रगड़ने की आवाजें सुनाई पड़ती हैं। बीच-बीच में हवा में पत्तियां हिलती हैं, डाल झूमते हैं। फिर कभी ऐसा समय भी आता है जब चिड़ियां नहीं होतीं, हवा नहीं चलती और गाछ स्थिर मूक सा खड़ा रहता है। परती जमीन पर गहन छांह फैलाकर अनंत काल का साक्षी बनकर गाछ मानो युग-युग से खड़ा है। कभी वह दार्शनिक सा लगने लगता है। चुपचाप अविचल खड़ा वह सारे संसार को देखता रहता है। दुनिया के उत्थान-पतन का निरीक्षण करता रहता है। पाप की विजय और पुण्य की हार देखकर वह विमूढ़ विस्मित हुआ पड़ा रहता है।

चिंताशील व्यक्ति जैसा सच में कभी कभी गाछ आदमीनुमा लगने लगता है । उस समय उसके इर्द-गिर्द आदमी या पशु पक्षी की चंचलता अजीब सी लगती है ।

हो सकता है इसी तरह से गाछ को कोई देख रहा था, सोच रहा था । अब तक लोगों को मालूम नहीं था । क्या मालूम गाछ की कोई अंतर्दृष्टि थी । वह समझ गया कि पूरब के उस मकान की हरी खिड़की पर बैठ कर कोई बड़ी गहरी दृष्टि से उसे देख रहा है । नहीं, पहले शायद वह आम आदमियों की तरह सादी नजरों से गाछ से पत्तियों को झड़ते हुए देखता था, फिर नयी पत्तियां उगते देखता था । पर अब उसकी नजर सादी नहीं रह गयी थी । काजल डाल कर उसकी आंखें काली हो गयी हैं । उनमें एक गहराई आ गयी है । अब वह पतली चोटी लटका-कर, फ्राक की झालर लहराकर परती जमीन पर खड़े गाछ को बांस का खूंटा समझ कर ऊपरी नजरों से नहीं देखती । अब वह शांत और गंभीर दिमाग से देखती है । कसकर बंधे जूड़े की तरह उसका मन भी सजग और संयत, अपनत्व लिए हुए स्थिर हो चुका है । और उसी गहन मन और सजग दृष्टि से सारे समय गाछ की ओर ताकती रहती है । गाछ के बारे में सोचती है । सोचते-सोचते एक दिन उसकी नजर भयातुर और चौकन्नी हो उठी । वह आंखों की काली पलकों को झपकाना तक भूल गयी । काली-काली पुतलियां पत्थर की तरह निश्चल कठिन हो गयीं । गाछ समझ गया कि वह किसी भयंकर चिंता से ग्रस्त है । काली पलकों से घिरे नयनों में सिर्फ भय ही नहीं, विद्वेष भी घुला हुआ था । गाछ डर गया । उसने देखा, केवल दिन की रोशनी में ही नहीं, रात के गहन अंधकार में भी दो आंखें खिड़की पर जमी हुई हैं । निराकार अस्पष्ट छायामूर्ति बनकर रात के गाढ़े कालेपन में छुपी रहकर भी वह गाछ की नजरों से अपने को बचा नहीं पायी । आतंक के साथ-साथ ढेर सारी घृणा भी कोई उसकी तरफ बिखेर रहा था ।

उसके बाद तो बात फैल ही गयी । शायद हरी खिड़की पर बैठ कर ही उसने सब को बता दिया, यह गाछ बड़ा ही दुष्ट है । बदमाश है । इसे यहां से हटा देना चाहिए ।

परती जमीन के आस पास के लोग-बाग सजग हो उठे । आदमी की तरह हैवान का रूप धर कर गाछ आदमियों के बीच घुल मिल गया है, यह लोगों ने पहली बार जाना और सुना ।

तभी तो लोगों ने सोचा, बूढ़े गाछ के तले बैठ कर लोग राजनीति की बातें करते हैं, बूढ़ियां युवतियों के साथ बैठ कर बच्चा होने न होने की बातें करती हैं, लड़के-बच्चों के झुंड गाछ के इर्द-गिर्द खेलते हैं ऐसा गाछ अगर अच्छा न हुआ और उसमें दुर्बुधि छुपी हुई हो तो—।

उसे काट डालना पड़ेगा, जला डालना होगा । जड़ समेत उखाड़ फेंकना ही

अच्छा रहेगा। सफेद फूलों की माला से. लिपटे कसे हुए जूड़े को हिलाकर खिड़की पर बैठी हुई वह बोली -- नहीं तो क्या पता इस गाछ से कौन किस विपत्ति में पड़ जाए।

सभी ने सुना, सभी ने जाना।

बच्चे खेलते रहते है। इस गाछ की एक बड़ी सी टहनी बच्चों के सर पर टूट पड़ने में क्या देर लगती है। बिजली गिर पड़ सकती है इस गाछ पर। और उस समय जो भी उस गाछ के नीचे रहेगा, उसकी मौत अवश्य होगी। अर्थात् बिजली को निमंत्रण गाछ ने ही तो दिया। बदमाश क्या नहीं कर सकता है। यह सुनकर लोग चौंक उठे।

लेकिन उस हरी खिड़की पर बैठी वह चुप नहीं रही। गाछ के प्रति उदासीन लोगों ने और भी भयंकर बातें सुनीं।

केवल बिजली ही क्यों, आधी रात को हैवान गाछ जिस किसी को भी अपने करीब खींच सकता है।

और सुबह उठ कर लोग देखेंगे कि वह आदमी गाछ की किसी डाल पर लटक रहा है।

गले में फांसी लगाकर लटकने के लिए डाल बड़ा अच्छा सहारा है—यह बात नये सिरे से लोगों को याद आ गयी।

ऐसे गाछ को जला डालना होगा, काट डालना पड़ेगा। हो सके तो उसे जड़ समेत उखाड़ फेंकना पड़ेगा।

शायद गाछ को मालूम नहीं था कि परती जमीन की पश्चिम की ओर एक और मकान के लाल रंग की खिड़की पर बैठा कोई उसे बड़ी पैनी दृष्टि से देख रहा था। उधर नजर पड़ते ही गाछ चौंक उठा, खुश भी हुआ। उसकी आंखे बड़ी अच्छी थीं। उसकी आंखों में भय, आतंक, घृणा, विद्वेष, कुछ भी नहीं था। स्नेह, ममता, प्रेम और सहानुभूति थी। देखकर गाछ अवाक् रह गया। क्योंकि कुछ दिन पहले तक वे आंखें अशांत थीं। उनके चंचलता थी। हाफ पैंट पहनकर किसी भी वक्त उसके पास दौड़ा हुआ आता था। रोड़े फेंका करता था, डाल पर, पत्तियों पर। पत्तों की आड़ में बने चिड़ियों के घोसलों को खोज निकाल कर तोड़ देता था, और फिर जब तब डाल पर झूला टांग कर झूमता रहता था, आज वही सुसभ्य, स्निग्ध और सुंदर बन गया था। मलमल के कुर्ते की बाँहें थोड़ा समेट कर दोनों हाथ ठोढ़ी पर रख कर खिड़की के पास टेबिल के नजदीक बैठ कर गहरी दृष्टि से गाछ को निहारता रहता, और सोचते हुए टेबल पर रखे गुलदस्ते से एक गुलाब निकाल कर उसकी सुगंध लेता मानों उसके मन में जो भावनाएं थीं, उसके साथ गुलाब की खुशबू का अजीब मेल था।

गाछ को एक निश्चिन्तता हुई और उसके मन से भय निकल गया। लाल खिड़की पर बैठे लड़के के मुंह से लोगों ने दूसरी बात सुनी।

यह गाछ ईश्वर के आशीर्वाद की तरह हमारे बीच खड़ा है। इसे जीवित रखना होगा। इस गाछ के नीचे सुबह शाम लोग इकट्ठे होते हैं। यह गाछ एक आदमी को दूसरे आदमी के मन के करीब लाता है। इसका मतलब गाछ हमें सामाजिक होना सिखाता है। गाछ है, इसलिए यहां बच्चे खेलते हैं। मां की तरह स्नेह और खुशी फैला रहा है जमीन पर खड़ा यह गाछ।

सच में यह सुंदर है।

उसकी छाया सुंदर है, उसकी डाल भी सुंदर है। इसीलिए तो सीधी-सादी चिड़ियां गाछ को अपना आश्रय कर सारे समय चहचहाती रहती हैं। तितलियां उसके चारों ओर मंडराती रहती हैं।

मुहल्ले के लोगों ने नये सिरे से फिर से सोचना शुरू किया।

पश्चिम की ओर लाल खिड़की पर बैठा वह बैठा ही नहीं रहा।

—इंट, लोहे, सीमेंट के बीच रह रह कर हम लोग थक चुके हैं। हम लोगों की आंखों के आगे हरियाली लिए हुए यह गाछ खड़ा है, इसलिए हमें प्रकृति की याद है। हम पूर्ण रूप से कृत्रिम नहीं बन पाऐ, वह भी गाछ की बदौलत ही। यह गाछ रहेगा। यह गाछ हमारे थके हारे जीवन में एक कविता की तरह है।

तो क्या लाल खिड़की पर बैठा हुआ वह लड़का कोई कवि है—गाछ ने सोचा। रात में खिड़की के पास बैठकर वह कागज कलम लेकर क्या मालूम क्या सब लिखता रहता है। जब नहीं लिखता तब चुपचाप गाछ को देखता रहता है।

गंदी बात सुनकर जैसे लोग विचलित हो उठते हैं, उसी तरह अच्छी बात सुनकर लोग निश्चिंत भी होते हैं। खुश होते हैं।

इसलिए जब किसी ने गाछ को उलटा-सीधा कुछ कहा, तब एक आदमी विक्षिप्त सा हो गया, पर जब किसी ने कहा कि गाछ ने उसका बड़ा उपकार किया, वह शांत हो गया। इसलिए गाछ के बारे में लोगों ने सोचना ही छोड़ दिया। गाछ अपने ही ढंग से खड़ा रहा। पर पूरब की खिड़की पर बैठी वह चुप नहीं रही। गाछ ने सुना कि उसने दांत भींच कर प्रतिज्ञा की कि अगर उसे किसी और ने मदद नहीं भी की तो वह स्वयं ही कुल्हाड़ी लेकर गाछ को काट डालेगी। वह इस गाछ को बिल्कुल बर्दाश्त नहीं कर पा रही थी। इस हैवान को आंखों के सामने से जैसे भी हो हटाना पड़ेगा।

गाछ को सुनकर दुख हुआ। वह मन ही मन हंसा भी। उसका मन किया कि वह पूरब की खिड़की पर बैठी हुई को बुला कर कहे—तुम्हारे जूड़े में फूलों की माला शोभती है, आंखों में काजल, कपोल पर कुमकुम की बिंदी भी बड़ी

सुंदर दिखती है, तुम्हारे हाथ की उंगलियां चम्पा की कलियों की तरह सुंदर हैं। इतनी सुंदर और नरम, उंगलियों से कुल्हाड़ी पकड़ भी सकोगी?

गाछ के मन की बात मानों पश्चिम की खिड़की वाले के कानों तक पहुंच गयी हो। उसकी सुंदर उंगलियां कड़ी हो उठीं। गाछ अच्छी तरह जानता था कि वे हाथ और हाथ की उंगलियां जरूरत पड़ने पर लोहे की तरह कड़ी हो सकती हैं। आज उन हाथों से वह जरूर कविता लिखता है, गुलाब के फूलों को प्यार करता है—पर एक दिन इन्हीं हाथों से उसने रोड़े फेंक-फेंक कर चिड़ियों के घोंसलों को तहस-नहस कर दिया था। गाछ की टहनियों को तोड़ा था, पत्तियों को तोड़ा था और कठिन हाथों से झूले की रस्सियों को पकड़ कर राक्षस के बच्चों सा खेला भी था। शायद इसीलिए उन्हीं मजबूत हाथों की ताकत से उसने शपथ ली कि चाहे जैसे भी हो, वह इस गाछ को बचायेगा ही। अगर कोई उसे बरबाद करना भी चाहेगा तो वह उसे माफ नहीं करेगा। उसके जीवन से गाछ की कविता को कोई छीन नहीं सकता। अगर इस गाछ पर कोई हाथ भी रखता है तो वह खून की आखिरी बूंद तक उसे रोकेगा, गाछ पर आंच तक आने नहीं देगा।

गाछ नये सिरे से सहम गया। कोई बकरी दो बच्चों समेत गाछ की छाया में डोल-डोल कर घास चबा रही थी। शाम ढलते ही बच्चों का झुंड खेलने के लिए जमा हो गया। अनगिनत चिड़ियाँ चहचहा कर फिर शांत हो गयीं। रात उतर आयी। निर्मेघ काले आकाश में अनगिनत तारे जगमगा उठे। मंद हवा बह रही थी। पत्तियां हिलोरें ले रही थीं—रोज की तरह। मैदान के चारों तरफ के मकानों से तरह-तरह की आवाजें आ रही थीं। उनमें रोशनी जल रही थी। धीरे-धीरे रात बढ़ती गयी और रुक-रुक कर मकान शांत पड़ते गये। बत्तियां बुझ गयीं। फिर धीरे-धीरे चारों तरफ घना अंधकार छा गया। अंधकार और नीरवता। सर के ऊपर करोड़ों नक्षत्रों को लिए हुए गाछ खड़ा रहा। एक समय हवा बंद हो गयी, पत्तियों का हिलना भी बंद हो गया। ऐसे समय घने अंधकार में दिन की रोशनी की तरह गाछ सब कुछ साफ-साफ देखने लगा। गाछ ने देखा, वह पूरब की तरफ से आ रही थी। आंचल को उसने कमर में लपेट रखा था। जूड़े से फूल माला को उतार दिया था। मानो लड़ने आ रही हो। फूल की माला की क्या बात—हाथ में तेज धार वाली कुल्हाड़ी देखकर गाछ सिहर उठा।

लेकिन तुरंत ही दूसरी ओर से आदमी के पैरों की आहट सुनाई पड़ी। गाछ ने उस तरफ मुड़ कर देखा। उसे निश्चितता हुई, वह आ गया था। पश्चिम की खिड़की का वह आ गया था। उसके हाथों में अब कलम नहीं थी। एक

लाठी थी। उसने आज मलमल का कुर्ता नहीं पहन रखा था। बिना बांह वाली बनियान थी। उसके जबड़े कठोर बने पड़े थे। आंखें निष्ठुर मानों वह अभी भयंकर रूप से चिल्ला उठेगा।

गाछ कान लगाये खड़ा रहा।

अजीब सा सन्नाटा था। अनिश्चित सा मुहूर्त था। गाछ पर एक चिड़िया का बच्चा चहक रहा था। किसी ओर से एक अन्जान फूल की खुशबू आ रही थी। आकाश के एक किनारे से एक तारा टूट कर गिरा। थोड़ी-सी हवा चल पड़ी। नरम-नरम टहनियां झूलने लगीं। मन ही मन गाछ को कुछ उम्मीद थी, इसीलिए आगे जो कुछ हुआ, उससे वह हैरान नहीं हुआ।

साड़ी लपेटे उसके अधरों पर मुस्कान खिल उठी।

पश्चिम की खिड़की वाले का जबडा नरम पड़ गया। कोई आवाज नहीं। दोनों एक-दूसरे की तरफ देख रहे थे। दोनों के बीच की दूरी इतनी कम थी कि घने अंधकार में भी वे लोग एक-दूसरे का चेहरा साफ देख पा रहे थे। लगता था एक-दूसरे की सांसों को भी सुन पा रहे हों।

—हाथ में कुल्हाड़ी क्यों?

—गाछ को काट डालूंगी।

—क्या फायदा ?

—गाछ हैवान है।

—गाछ देवता है।

—जो हैवान को देवता समझता है वह मूर्ख है।

—देवता को जो हैवान की नजरों से देखता है वह पापी है, उसके मन में पाप है, दिल में जलन है, इसीलिए वह सफेद को काला देखता है—प्रकाश रहने पर भी उसकी आंखों के आगे सब अंधेरा है।

—तो क्या इस दुनिया में अंधकार है ही नहीं? काला कुछ है ही नहीं।

—नहीं।

—यह कैसे संभव हो सकता है ?

उसके हाथ से कुल्हाड़ी गिर पड़ी, वह सोच में पड़ गयी। गाछ को खुशी हुई। गाछ ने देखा, एक ने कुल्हाड़ी फेंकी तो दूसरे ने लाठी।

—यह कैसे संभव हो सकता है ?

सोचते-सोचते पूरब की खिड़की की वह सर उठाकर गाछ की पत्तियों की आड़ से तारों का जगमगाना देखने लगी। उसके बाद ओठों में ही बोली—"सभी सुंदर है—कुछ भी काला नहीं, कहीं कोई अंधकार नहीं, ऐसा भी कहीं होता है?"

—अपने अंदर का प्रकाश जब जागता है तो ऐसा ही होता है।

—वह कौन-सा प्रकाश है?

—प्रेम।

लड़की की आंखों की पलकें थरथरा उठीं। उसने गहरी सांस ली। उसके गले की आवाज दर्दीली हो उठी।

—मेरे अंदर का प्रेम क्या कभी नहीं जागेगा ?

—इसका अभ्यास करना पड़ेगा, आदत डालनी होगी। लड़का बड़े सुंदर ढंग से मुस्कराया। बोला—प्यार करना सीखना होगा।

—तुम मुझे सिखा दो।

गाछ ने आंखें मूंद लीं। उसे नींद आ रही थी। गाछ भी सोता है। कितनी ही रातें बुरी चिंताओं से घिरा वह नहीं सो पाया था या मानो जानबूझ कर वह अब और नीचे की तरफ ताकना नहीं चाहता था। जिस तरह से गाछ के प्रति इन्सान उदासीन रहता है, समय-समय पर आदमियों के लिए भी गाछ उतना ही उदासीन हो जाता है। यह बात अनुभवी गाछ को किसी से सीखनी नहीं पड़ी।

प्राण-पिपासा

समरेश-बसु

कृष्ण पक्ष की दुर्योग भरी एक रात की बात बता रहा हूं। यह दुर्योग आकाश में बादल गरज कर, बिजली चमक कर, मूसलाधार पानी बरसने की तरह नहीं था। एक सुर से बीमार के कराहने की आवाज की तरह पिछले कई दिनों से पानी लगातार बरसता जा रहा था और उस पर तूफान जैसी पुरवैया। शहर की गलियां कीचड़ में डूब कर गंदी नालियां बन गयी थीं। दुर्गंध और कूड़े करकट से भरी हुईं। अनगिनत मकान एक दूसरे से सटे हुए। घुटन भरा दबाव।

रेल की लाईन के किनारे मैदान में बनी पगडंडी पकड़ कर मैं जा रहा था पर इतनी बुरी तरह से भीग चुका था कि शरीर की गर्मी पूरी तरह खत्म हो चुकी थी। मैदान से गुजरती हुई हवा सीधे शरीर में आकर बिंध रही थी। दांत से दांत बजने लगे थे। बुरा हाल देख कर बाएं मुड़ कर मैं शहर में घुस पड़ा। कम से कम हवा का झोंका तो कम लगेगा।

यह जूट मिल वाला शहर मानो ऊंघ रहा था। अजीब सी चुप्पी छायी हुई थी। कोई और दिन होता तो शायद कुत्ते दौड़ते-भौंकते हुए नजर आते। आज बस एक कुत्ता मजबूरन एक-आध बार गरर-गरर् कर अपने बदन से पानी को झाड़ने में लगा था। गृहस्थों का तो कोई पता ही नहीं था। किसी खिड़की या दरवाजे की फांक से रोशनी तक नहीं दिखाई दे रही थी। सड़क की बत्तियां किसी काने जानवर की बुझी-बुझी सी एक आँख से ताक रही थीं। अंधेरा उस रोशनी से जरा भी नहीं घटा था।

रास्ता थोड़ा अटपटा सा लग रहा था, पर मैं उत्तर की तरफ बढ़ रहा था, इतना मालूम चल रहा था। सड़क के किनारे से जा रहा था। सड़क नीची थी, पानी इकट्ठा हो गया था। किसी बरामदे में सोकर रात गुजार दूं, उसका भी कोई उपाय नही दिख रहा था क्योंकि जिसे बरामदा कहते है, यहां वैसा कुछ दिखाई नहीं पड़ रहा था। और बस्ती का जो हाल था, देखकर लगता था कि एक

भी कमरा सूखा नहीं होगा। यह भी मुझे मालूम था कि इन कमरों में से किसी एक में भी सोने से लोग तरह-तरह की बातें उड़ायेंगे। पुलिस भी बेअदबी से बातें करेगी।

मुझे नैहाटी की रेलवे कालोनी मे किसी दोस्त के यहां जाना था। वहां कम से कम कई दिन की खुराक, कुछ सूखे कपड़े और इस भयंकर पिचपिची ठंडी रात में थोड़ी जगह तो मिलती ही। पर अब लगता था कि मैंने अपने अड्डे को छोड़ कर बहुत गलती की थी। पर मेरे सामने कोई उपाय भी नहीं था। खास कर अड्डे के मरियल दोस्तों मे से जब एक मर गया, उसी समय से मैं सोच रहा था कि थोड़ी सांस लेने के लिए कहीं निकल जाऊंगा। दोस्त का मरना शायद ठीक ही था। इसके सिवा और हो क्या सकता था, मेरी समझ में नहीं आता। जाने के लिए जिन चीजों की जरूरत होती है, उनमें से कुछ भी नहीं था उसके पास। फिर भी छाती में....खैर। यह कोई बात नहीं। पर वह मुझे एक चीज देकर गया था। छोटी सी चीज। पर लगता था उसका बोझ पहाड़ समान है। वह बोझ था...। अरे बाप रे। हवा ने मानों गेढ़ की हड्डी की नींव को हिला डाला। बारिश भी तेज हो गयी। अचानक। इतने समय के बाद बादल का गरजना भी सुनाई दे रहा था। इस बार दांत ही नहीं, हड्डियां भी आपस में टकरा रही थीं। पेड़ के सूखे जर की तरह झूल कर चौड़ा हो गया था। जूट मिल का माल रेल साईडिंग के पास से चलान किया जाता था। उसी चौमुहानी के मोड़ पर आकर मैं खड़ा हुआ। जगह सुनसान थी। पास में भैंस का एक खटाल था। वहां घुसू या नहीं, सोच ही रहा था कि पीछे से सुनाई पड़ा - अरे, अरे, इधर देखो।

भूत-प्रेत पर विश्वास न करने पर भी मैं अचानक चौंक उठा। कोई मुझे बुला रहा था क्या? उस भयंकर बारिश में मैं आवाज के मालिक को ढूंढ़ने लगा। दाहिनी तरफ टिमटिमाती हुई एक रोशनी दिखाई पड़ी। आधे बंद दरवाजे पार एक मूर्ति सी दिखाई दी। हां, कोई औरत ही थी। वह मुझे नहीं बुला रही होगी। मैंने फिर आगे बढ़ना चाहा, पर फिर तभी सुनाई पड़ा—कहां गये? आओ न।

मैं रुक गया। पूछा - मुझसे कह रही हैं?

जवाब मिला—नहीं तो सड़क पर और कौन है?

उसके बात करने के ढंग से मैं चौंक पड़ा। ओह! अब मुझे मालूम चला, यह रास्ता ही खराब था। पर ठीक वेश्याओं का मुहल्ला भी नहीं था। लेकिन ऐसा ही कुछ था। आस पास मजदूरों की बस्ती भी लगी हुई थी।

मन ही मन मैं हंस पड़ा। बड़े खास ग्राहक को बुला रही थी वह। उसने वैसा ही मुझे सोच लिया होगा। लेकिन सच में, इस समय अगर मैं उसके दरवाजे पर

थोड़ा खड़ा भी रह सकता तो। मैं आगे न बढ़ सका। लड़की बोली—अरे बाबा। तू काना है क्या ?

मन ही मन मुस्करा कर मैंने सोचा—चला ही क्यों न जाऊं। मेरा हाल देखकर वह खुद ही मुझे भगा देगी। और किसी तरह बारिश थोड़ी कम होने तक सर पर अगर छत मिल जाए तो क्या बुरा है। और वैसे भी, नैहाटी तो दूर रहा, मैं भैंस के खटाल से भी आगे नहीं बढ़ पाऊंगा। 'जान बची तो लाखों पाये'—इस बात पर जिसे यकीन नहीं, उसके बारे में यही समझना पड़ेगा कि उसका ऐसी परिस्थिति से मुकाबला ही नहीं हुआ।

मैं उस औरत के दरवाजे पर उठ गया। आजीवन के संस्कार मुझे रोक रहा था। मैंने पूछा—क्यों बुला रही हो ?

—कहां का मर्द है रे। मुस्कराहट लिए नाराजगी के साथ वह बोली—अंदर आओ न।

अंदर घुसते ही उसने दरवाजा बंद कर दिया। बरसात की आवाज थोड़ी दब गयी। हवा के अंदर आने का भी कोई उपाय नहीं था। मैंने देखा, खपरैल की छत से पानी चूने से फर्श गीली हो गयी थी पर तख्तपोश पर बिछा बिस्तर भीगा नहीं था। कमरे में दो-चार मामूली चीजें थी, थाली, गिलास और सुराही।

—कहां मरने जा रहा था, दुर्योग मर पर लिए ?

वह इस तरह से बोली मानों मैं उसका कितना पुराना परिचित हूं।

मैंने कहा—बहुत दूर से आ रहा हूं। पर—

—समझ गयी। ओंठ दबाकर वह हंस पड़ी। बोली—पूरे कमरे में कीचड़ फैला दिया। गीले कपड़े उतार लो। जल्दी।

एक तो ठंड, ऊपर से इस आकस्मिक झमेले में फंस कर मैं बरफ की तरह जम गया था। मैंने कहा—लेकिन मेरे पास तो...

उसने कहा—मैं तुम्हें क्या खाक पहनने के लिए दूं। गीली कमीज उतार दो।

अगर खोल सकता तो अच्छा ही होता...लेकिन...फिर मैं तेज आवाज में बोला—खामखाह मुझे बुलाया। पाकिट मेरी खाली है।

सुन कर लड़की सहम गयी। लगता था जो कुछ उसने सोचा था, ठीक ही था। मुंह फाड़े थोड़ी देर तक मुझे देखती रही मानो उसे विश्वास नहीं हो रहा था। पूछा—कुछ नहीं है ?

उसकी सारी आशाओं पर क्षण में ही पानी फिर गया हो - उसके चेहरे से ऐसा ही लग रहा था। मैंने कहा—नहीं तो ऐसी तूफान भारी रात में सड़क पर क्यों घूमता ?

लड़की असहाय सी चुपचाप खड़ी रही। मुझे पहले से ही पता था—यह औरत

यहां व्यापार करने बैठी थी ना कि भीख मांगने । मैं दरवाजा खोलने के लिए आगे बढ़ा ।

उसने पीछे से पूछा—कहां जाओगे इस समय ?

मैंने कहा—भैंस के खटाल पर । कहकर मैंने दरवाजा खोल डाला ।

अरे बाप रे ! लगा हवा मानो मुझे निगल जायेगी । मैंने बाहर कदम रखा ।

औरत ने मुझे पीछे से पुकारा—कहां हो जी । सुनो भी । जब बुलाया ही है तो रात भर ठहर ही जाओ । फिर गहरी सांस लेकर बोली—मेरी किस्मत ही खराब है ।

मैंने कहा—तुम्हारी अच्छी किस्मत अच्छी ही बनी रहे । मैं खटाल पर ही चला जाता हूं ।

—जैसी मर्जी । कहकर वह निराश होकर तख्तपोश पर बैठ गयी । फिर बुद-बुदायी—आज तो और कोई उम्मीद नहीं ।

मैंने सोचा—बात बुरी नहीं । इस आंधी पानी की रात में जब एक ठिकाना मिला ही है तो उसे यों ही क्यों गवाऊं ? पर औरत के साथ रात गुजारना मुझे बड़ा अजीब सा लगा क्योंकि मेरे लिए यह बिलकुल नयी बात थी । हालांकि औरतों के मामले में आम दस आदमियों की अपेक्षा मेरी रुचि अधिक ही रही है, फिर भी यहां ? छि: छि. । यह मुझसे नहीं होगा ।.... हां एक बात हो सकती थी कि उसके साथ सोए बिना भी रात गुजारी जा सकती थी । यह सोच कर कमरे के अंदर जाकर मैंने दरवाजा बंद कर दिया ।

लंबा छरहरा बदन था उसका । साफ सांवला रंग । दोनों गाल धंस चुके थे । बड़ी बड़ी आंखों की दृष्टि नयी हरी घास को ढूढने वाली गाय की तरह थी । मोटे ओंठों के ऊपर नाक आकाश की ओर उठी हुई थी ।

ढूंढ़-ढांढ कर उसने मुझे एक पुराना पेटीकोट पहनने के लिए दिया । बोली—इसके अलावा मेरे पास और कुछ है नहीं ।

पेटीकोट । मुझे हंसी आ गयी । खैर ! कम से कम यहां कोई देखने तो नहीं आयेगा । लेकिन...

मेरा दिल धड़क उठा । मैंने अपने पाकिट को हाथों से थाम लिया । मरते समय मेरे दोस्त ने पर्वत समान जो बोझ मुझ पर डाला था, वह यथास्थान है या नहीं, मैंने टटोल कर देख लिया । यह कोई चीज नहीं थी, खून का गोला था । हां खून का गोला ही था । मेरा मन संशय से डोल उठा । मैंने तीक्ष्ण दृष्टि से औरत की तरफ देखा । पीछे मुड़ कर वह ब्लाउज के अंदर की बाडिस खोल रही थी ।

मैंने कहा—मेरे पास कुछ है नहीं । पहले ही बता रहा हूं ।

—कितनी बार सुनाओगे जी । एक ही बात की रट लगा रखी है । वह

निराश होकर बोली।

अपनी गाय जैसी आंखें उठा कर उसने एक बार मेरी ओर देखा। बोली—कौन तुम्हें सर की कसम खिला रही है? बात तो ठीक ही कह रही थी। मैंने पेटीकोट पहन लिया। पर खुले बदन में कंपकंपी और भी बढ़ गयी। दरवाजे पर हवा और पानी धक्का मार रहे थे।

औरत मेरी तरफ देखकर मुंह में कपड़ा ठूंस कर पहले तो हंसी, फिर एक पुरानी साड़ी मेरी तरफ फेंक कर बोली—लो, इसे बदन में लपेट कर सो जाओ।

कहकर उसने मेरे कपड़े-लत्ते रस्सी पर सुखा दिये। बोली—थोड़ा सूख जायेगा।

आराम भी बड़ी खराब चीज है। खास कर ऐसी दुरावस्था में मैं करीब-करीब भूल ही बैठा था कि मैं किसी बाजारी औरत के घर पड़ा हुआ था। मैंने कहा—दो दिन से पेट बिलकुल खाली है, इसलिए बारिश ने मुझे घायल कर दिया है।

उसने कुछ कहा नहीं। घुटनों के बीच सर टिकाकर बैठी रही।

मैंने कहा—तो फिर सोया जाय।

उसने मुंह ऊपर उठाया। उसका चेहरा दर्द से कातर था। उसकी उभरी हुई छाती की हड्डियां सांस लेते समय उठ बैठ रही थीं। बोली—खाओगे कुछ? भात और साग-भाजी है।

भात और साग भाजी। यह तो उम्मीद से बढ़कर था। भात की सुगंध से ही जिसका आधा पेट भर जाता हो, उसके सामने भात का क्या पूछना। जीभ में पानी उतर आया, और पेट मानो अलग एक जीभ बन गयी। भात शब्द सुनते ही मेरा अंदर हिल गया। लेकिन—।

तब तक उसने कलई वाली थाली में खाना परोस दिया। देखकर मेरे मन का संशय और भी बढ़ गया। रस्सी पर से मैंने अपने कपड़े उठा लिये। यहां का हाल मुझे अच्छा नहीं लग रहा था। मैंने घबराकर कहा—भात के लिए मेरे पास पैसे नहीं हैं..।

गाय जैसी आंखों में नाराजगी दिखाई दी, बोली—तुम्हारे लिए भैंस की खटाल ही उचित स्थान है। एक बात कितनी बार सुनाओगे?

सुख से चैन भला। अभागे ने मरते वक्त ऐसी चीज थमा दी थी कि उसे लेकर चलना मेरे लिए मुश्किल का काम था। रखना भी जहर के समान था। बाहर पड़ा रहता तो इस बोझ का मुझे ख्याल ही नहीं आता।

उसने फिर पूछा—तुम क्या कभी आदमियों के बीच रहे नहीं?

सुनिए जरा इसकी बात। पूछ कौन रही थी? बाजार की औरत।

मैंने कहा—रहा क्यों नहीं, पर तुम जैसों के साथ नहीं।

थोड़ी देर तक वह मुझे देखती रही। उसके बाद बोली—खाना जब रखा है,

खा लो। नहीं तो बरबाद चला जायेगा।

मैंने सोचा इसमें आपत्ति की क्या बात है। बिना पैसे का भात है। और यहां कौन देख रहा है। मैं गपगपा कर भात खा गया। ऊपर से एक लोटा पानी। परोसी हुई थाली खा कर मुझे लगा मैंने बड़ी नवाबी कर ली है। इसलिए मेरे मन का संशय और भी बढ़ गया।

इसके बाद सोना था। वो भी बड़े झमेले का काम था। मैं सो गया। फिर पूछा—तुम कहां सोओगी ? वह निरुत्तर मुझे देखने लगी। सर का कपड़ा थोड़ा खींच लिया। मैं उठ बैठा।

पैर के पास बैठी थी वह। बोली—मैं तो रोज ही सोती हूं। आज तुम सो जाओ। एक रात की बात है। मैंने जब तुम्हें बुलाया ही है..।

कहते कहते मेरे हाथ में कमीज देखकर उसने रस्सी की ओर देखा। उसके बाद मेरी तरफ। मैं भी देख रहा था।

बोली—कमीज तो भीगी हुई है।

—रहने दो। तुम्हें क्या ?

वह चुप हो गयी। मेरे शरीर को आराम पहुंचा तो लगा नसें स्वाभाविक, ताजी और गरम हो उठीं। बाहर जो आंधी-पानी मुझे पछाड़ना चाहती थी, अब वही आवाज मेरी कानों में लोरी की मीठी आवाज जैसी लगने लगी। आँखों की पलकें भारी हो उठीं।

मैंने उसकी तरफ देखा। वह उसी तरह चुपचाप बैठी हुई थी। नजर किस तरफ थी, मालूम नहीं चल रहा था। बहुत थकी हुई थी वह। एक दबा हुआ दर्द मानो उसके चेहरे और आँखों में झलक रहा था। क्या मालूम। इनके नखरे का भी तो कोई अंत नहीं। हो सकता था मैं सो जाऊं और उस समय...उफ। अभागे की उस चीज का बंदोबस्त मैं कल ही कर डालूंगा। क्या जरूरी था मुझे यह थमाना। एक खून का गोला, हां खून का गोला ही तो था। पसीने का बदबू से भरे चीथड़े का पोटला था। कोई राक्षसी क्षुधा सी सुगंध थी। मरते समय छोकरे के मुंह से खून गिर रहा था। फिर भी वह मुझे बोला—इसे तू रख ले।

इस तरह से बोला था कि सोच कर अब भी छाती दहक उठती थी। खैर छोड़िए उन बातों को।

लड़की उसी तरह बैठी रही। देखकर अचानक मैं बोल पड़ा थोड़ा फासला रख कर तुम भी सो जाओ।

वह फिर मुझे थोड़ी देर तक देखती रही। बोली—कितना अजीब आदमी है तू। बाप रे ..उसके बाद वह सो गयी।

आराम से तब तक मेरा तन-बदन ढीला हो चुका था। किसी औरत का शरीर

इतना गरम होता है, इतने फासले पर भी मुझे पता लग रहा था। कितना विचित्र रात थी और अजीब सा वातावरण। लोग यदि देखते तो क्या कहते। छि:छि:। लेकिन इतना आराम ! मेरे दुखी थके-हारे शरीर को इससे अधिक सुख की अनुभूति पहले कभी हुई थी, याद नहीं। नींद के मारे आंखें मुंदी जा रही थीं— लेकिन....।

नहीं। ऐसा नहीं हो सकता। मैं अपने उस दोस्त के बारे में बता रहा था। अभागा मरते वक्त बता गया—वो पोटला, मेरा खून।

मैंने कहा—कैसा खून ?

आंख के आंसू और मुंह का खून पोंछ कर बोला—मेरी छाती का। बिना खाये रोज...।

कहते कहते रक्तरंजित अस्थिर उंगलियों से वह पोटला ढूंढने लगा। मैं अपना गुस्सा नहीं संभाल सका। पूछा—किसलिए रे ?

बोला—घर बनाने की आशा में।

उसने यह बात इस तरह से कही कि गाली देते-देते मेरे गले के अंदर...।

खैर। इस बात को भी रहने दीजिए।

उस औरत के मुंह से कष्ट की एक आवाज निकली।

मैंने पूछा—क्या हुआ ?

उसने देखा। दोनों आंखें दर्द से लाल हुई पड़ी थीं, मानो अभी रो पड़ेंगी। पर बोली—कुछ भी नहीं।

उसकी गरम सांस से मेरे शरीर को आराम पहुंचा। ठंड से बरफ बने शरीर पर मानो आंच पहुंच रही थी। एकाएक मुझे लगा—वह देखने में बहुत बुरी तो नहीं। ओंठ और नाक थोड़ी खराब है। आंखें मुंदी हुई थीं, मुड़े हुए दोनों हाथ छाती से लगे हुए थे। उसकी नरम छाती ने मेरे मन में एक विचित्र मोह पैदा किया। उसने मुझसे पूछा—तुम्हें नींद नहीं आ रही है ?

मैंने कहा मैं सोऊंगा नहीं। फिर मन ही मन सोचा--सोने से तुम्हें मौका मिल जायेगा, वो मैं होने नहीं दूंगा। और ताज्जुब था, बातचीत करने से मेरे मन का संशय बढ़ता जा रहा था। इससे तो अच्छा था, वह चुप रहती।

बाहर तब भी तांडव चल रहा था। खपरैल पर से फर्श पर पानी टपक रहा था। उसकी टप् टप् की आवाज आ रही थी, चूहे दौड रहे थे।

वह फिर दर्द से रो पड़ी।

—क्या हुआ है तुम्हें ?

थोड़ा चुप रहकर बोली—बीमारी।

—बीमारी। कैसी बीमारी ?

—वह चुप रही ।

—बोलो न ।

वह फिर भी चुप रही ।

मैं गुस्सा गया । बोला – बता कौन सी बीमारी है । टी०बी०, हैजा हो तो जल्दी से यहां से भाग जाऊं । बीमारी से मुझे कोई लगाव नहीं ।

एकाएक वह भी तुनक उठी । बोली —किसके साथ लगाव है तुम्हारा, जरा सुनू भी ?

वह ठीक ही कह रही थी । लगाव की बात यहां उठती ही कैसे थी । मैंने कहा—बता न क्या बीमारी है तुम्हें ?

—इस रास्ते पर रहने से जो बीमारी रहती है । उसने कहा ।

—इस रास्ते पर ? सर्वनाश । मैं संकुचित हो उठा । भय और घृणा से पूछा—इसके बावजूद शाम को.. ।...जरूर । पांच जने । उसने कहा ।

—कितनी भयंकर बात है । मैंने कहा – इलाज क्यों नहीं कराती ?

—पैसे कहां से आयेंगे ?

—क्यों ? अपनी कमाई से ?

—वे पैसे तो मालिक के है ।

—मालिक ? यह तुम्हारी नौकरी है ?

—और नहीं तो क्या ? व्यापार तो मालिक का है, कमरा-वमरा, जगह हर चीज । हम तो सिर्फ खटने के लिए आते है ।

यह सुनकर मेरा मन बुरी तरह से चोट खा गया । तो फिर ये लोग आराम की जिंदगी नहीं जीते ? यह भी एक किस्म की नौकरी है ! मैंने कहा—साला । मालिक कैसा आदमी है । इलाज क्यों नहीं करवा रहा है ?

—जब मर्जी होती है, करवाता है । और फिर कल कारखाने में भी तो रात दिन कितने ही लोग मरते हैं, क्या मालिक उनका इलाज करवाता है ?

बात भी ठीक थी । उसकी दर्द भरी ठंडी आंखों की दृष्टि से अब की बार उसने मुझे दिशाहारा बना दिया । जंग के मैदान में सिपाही अपनी जान गंवाता है, पर जीवन की यह कौन से प्रतिरोध की लड़ाई थी । मैंने कहा—तो...।

उसने कहा—तो क्या ? मालिक की आंख बचा कर जो कमा सकती हूं, उसी से इलाज करवाती हूं ।

—क्यों ? जीने के लिए ? मैं हंसना चाह रहा था, पर मेरा चेहरा विकृत हो उठा ।

—जीना सभी चाहते है । दर्द से ओंठ दबाती हुई वह बोली ।

ठीक तो है । जंगल में शेर रहता है, जानते हुए भी जंगल के आस-पास

की जमीन पर ही इन्सान अपना आवास बनाता है। बाढ़, तूफान, भूख क्या नहीं है। फिर भी। और उस अभागे ने घर बसाना चाहा था। हां, फिर भी इस पोटले का एक-एक पैसा खून की बूंद था। खून का एक गोला था यह पोटला।

उसने पूछा—सोओगे नहीं ?

—नहीं। आंखों में नींद नहीं थी। उसकी सांस मुझे लग रही थी। दर्द से दुखती गरम सांस ; मीठी ताप गनगनाती आग की तरह लग रही थी। मैं कड़े हाथों से पोटला और पूरी कमीज को कस कर पकड़ कर उठ खड़ा हुआ। बाहर तब भी आंधी चल रही थी, पानी बरस रहा था। रात खत्म होने को हो रही थी। मैंने अपने कपड़े पहन लिए।

वह भी उठ खड़ी हुई। हंसना चाही। बोली—जा रहे हो ?

मैंने पाकिट में हाथ घुसा कर पोटले को कस कर पकड़ लिया। बोला—हां।

ओंठों के किनारे से खून चू रहा था, उसे चाटते हुए उस अभागे ने मरते हुए कहा था—इसे तू रख। क्यों ? आखिर क्यों ?

कष्ट से कातर दबी जुबान से लड़की बोली—फिर आना।

क्या आंखें थीं उस लड़की की ? सारे चेहरे पर लांछन के दाग उभरे हुए थे, आकाश की तरफ उठते हुए नहीं थे उसके मोटे ओंठ। ऐसा मुखड़ा तो मैंने पहले कभी नहीं देखा था।

बड़ी तेजी से उसकी तरफ मुड़ कर मैंने पोटला उसके हाथों में थमा दिया। उसकी सांसें मुझे छू रही थीं। क्षण भर में आंखें नीची कर एक अशांत क्रोध को मैंने दांतों तले दबा लिया। हवा में बह गयी वह बात। मैंने कहा—पीछे से मत पुकारा करो।

बोझ से उन्मुक्त होकर मैं आगे बढ़ने लगा। वानप्रस्थ की ओर नहीं, दोस्त के घर की तरफ। पुरवैया मुझे पश्चिम के घाट की तरफ ठेल रही थी, पर असफल रही।

दोस्त की किताब के लिए भूमिका

विमल कर

मेरे दोस्त स्वर्गीय वसुधा मुखोपाध्याय एक अख्यात और अज्ञात लेखक थे। करीब बीस बाईस साल पहले की बात है – उनकी लिखी हुई एक किताब हम तीन दोस्तों ने मिलकर छापी थी। वसुधा तब हमारे बीच था। वह किताब यथानियम गोया बागान के एक छापेखाने में बहुत दिनों तक पड़े रहने के बाद बर्बाद हो गयी। पटरी पर दो पांच किताबें दो चार आने में बेचने में तो हम सफल हुए थे, पर वे किताबें किसी ने खरीदीं और फिर पढ़ीं भी, ऐसी आशा हम नहीं करते।

वसुधा की वही किताब इतने दिनों के बाद फिर से नये सिरे से छापी जा रही है। भुवन छाप रहा है। भुवन, मेरा और वसुधा दोनों का ही दोस्त। पहली बार भी जब यह किताब छपी, उसमें भुवन का सहयोग था।

'नरक की यात्रा' इसी नाम से पहली बार वह किताब छपी थी। इस बार भी वही नाम रखा गया। पुरानी किताब में तीन कहानियां थीं, अबकी बार दो और कहानियां उसमें जोड़ी गयी हैं। वसुधा की मृत्यु एक ऐसे अस्पताल में हुई थी जहां जाना या उसका कोई अंतिम लेख (अगर उसने लिखा होगा) जुटा पाना हमारे लिए संभव नहीं था। हम उसके लिखे जितने लेखों के बारे में जानते हैं, उसी से यह किताब छपवा रहे हैं।

मुझे पाठकों से पहले ही माफी मांग लेनी चाहिए। मैं लेखक नहीं हूं। भूमिका कैसे लिखी जाती है, मुझे नहीं मालूम। मेरी भाषा भी भूमिका लिखने लायक नहीं। पर भुवन ने यह जिम्मेदारी मुझी को सौंपी है। वह सोचता होगा, जवानी में वसुधा के साथ-साथ जब मैंने भी लिखने की कोशिश में हाथ-पैर मारे थे तब यह काम भी मुझे ही करना चाहिए। भुवन यह भी सोचता होगा कि वसुधा के बारे में उससे अधिक जानता हूं। यह बात शायद ठीक नहीं है। कलम न पकड़ते हुए भी भुवन वसुधा का मुझसे कोई कम अनुरागी, गुणमुग्ध और

घनिष्ट दोस्त था, ऐसा मैं नहीं मानता। फिर भी वसुधा की किताब की भूमिका मुझे ही लिखनी पड़ रही है।

बीस बाईस साल की लंबी अवधि के बाद वसुधा की तरह के अनाम-अनजान लेखक की अपठित और भूली हुई किसी किताब को हम फिर से क्यों छाप रहे हैं, इसका भी कोई कारण होना चाहिए। यों तो दोस्ती के अलावा इसका और कोई कारण होना नहीं चाहिए। मृत बंधु के प्रति अनुराग का प्रदर्शन कर व्यक्तिगत रूप से हमें कुछ सांत्वना मिल भी रही है। ...पर इसका एक और कारण है जो कुछ दूसरे किस्म का है।

चार-पांच महीने पहले भुवन एक बार बनारस गया था। बनारस के रामापुरा में उसका परिचय एक सज्जन के साथ हुआ। वे सज्जन बूढ़े थे। एक रोज उनकी बैठक में बैठकर भुवन बात-चीत कर रहा था, तो एक लड़का वहां आया और फ्रेम में मढ़ी हुई एक तस्वीर उस बूढ़े सज्जन को दी। कुछ दिनों पहले जाले साफ करते समय वह तस्वीर दीवार से गिरकर टूट गयी थी। नया शीशा लगाकर वह तस्वीर उसी दिन घर पर आयी थी।

पुरानी मटमैली धूमिल उस तस्वीर में भुवन की नजर वसुधा पर पड़ी। तस्वीर के तीन चेहरों में एक वसुधा, दूसरा स्वयं उन बूढ़े सज्जन का तथा तीसरा उनकी बेटी का था। भुवन बोला – इसे मैं पहचानता हूं। यह तो मेरा दोस्त वसुधा है। इतना कहकर भुवन ने वसुधा का दूसरा परिचय दिया। बोला —वह लेखक भी था।

बूढ़े ने कहा —मेरी बेटी भी कहा करती थी कि वह लिखता-विखता है पर मैंने कभी देखा नहीं। हां, हरिद्वार में जाकर एक बार उसे किसी क्षयरोगी की सेवा करते हुए अवश्य देखा था। यह तस्वीर भी हरिद्वार की है। लड़का साधु किस्म का था।...तुम्हें उसकी कोई खबर है?

—न मालूम क्या सोचकर भुवन ने वसुधा की मृत्यु की खबर उन्हें नहीं बताई। बोला — मुझे कुछ मालूम नहीं।

बनारस से लौटने के बाद भुवन के दिमाग में सनक सवार हुई कि वह वसुधा की उस किताब को छापेगा। मैंने बहुत बार पूछा—क्यों?

भुवन केवल यही बोला— छापूंगा। हमें छापना चाहिए। वसुधा को मैं पहले भी कहा करता था कि मेरे पास अगर पैसा होता तो मैं पहले तुम्हारी किताब छापता। मेरी स्थिति अब काफी अच्छी है इसलिए उसकी किताब के पीछे मैं खर्च करना चाहता हूं।

मुझे लगता है छियालिस-सैंतालिस की उम्र में भी भुवन भावुक और उत्साही रह गया है जो मैं नहीं रह पाया। मुझे तो तसल्ली सिर्फ इसी बात की है कि

मैं वसुधा के लिए छोटी-सी भूमिका लिख पा रहा हूं। पाठक अपने गुणों से मेरी अक्षमता को माफ कर देंगे।

वसुधा का जन्म पश्चिम बंगाल में हुआ था। पहले विश्वयुद्ध के विराम के वर्ष में यानि 1918 में उसका जन्म हुआ था। महीना शायद अगहन का था। उसके पिता पोस्टमास्टर थे। बदली की नौकरी होने के कारण उसके परिवार ने कई जगहों का पानी पिया था।

बदली उनकी बंगाल और बिहार के बीच ही होती थी। वसुधा की मां बड़ी नरम स्वभाव की और शांत तथा धर्मभीरू महिला थी। उनकी एक दीदी थी। उस बहन की मृत्यु वसुधा जब कालेज में पढ़ रहा था, अपने पति के घर में हो गयी थी। वसुधा के और किसी रिश्तेदारों की बात मैं नहीं जानता।

जिन दिनों वसुधा कलकत्ता के कालेज में पढ़ने के लिए आया तभी हम लोगों का परिचय उससे हुआ। वह बहुत अच्छा विद्यार्थी नहीं था। खूबसूरत भी नहीं था। उसकी आवाज भी टूटी हुई थी। पर दोस्त की हैसियत से वसुधा दुर्लभ प्राणी था। वह जितना पढ़ता, उससे दस गुना अधिक मन ही मन तरह-तरह की बातें सोचा करता। जब हम लोगों को कुछ कहता, समझाता था, उसकी टूटी आवाज आवेग से अजीब किस्म से सुंदर हो उठती थी। उसकी आंखें कह उठती थीं कि वह कुछ ज्यादा ही भावुक है। उसका चेहरा लंबाई लिये हुए था। थोड़ी पतली-सी लंबी-सी नाक पर उस अनुपात में आंखें छोटी पर खूब चमकीली। भौंएं मोटी थीं। उसका रंग भी आधा गोरा-सा था। बाल घुंघराले थे। उसके चेहरे में ऐसा कुछ नहीं था जो दूसरों को अपनी ओर खींचता। आम बंगाली लड़कों से उसे अलग करने का सवाल ही नहीं उठता था। लेकिन हम लोग यानि वसुधा के जो दोस्त थे, वे ही जानते थे कि उसका स्वभाव हम जैसा नहीं है। कहीं उसका कोई अलग आकर्षण है।

बी०ए० पढ़ते समय वसुधा ने लिखने की चर्चा शुरू की थी। हो सकता है इसके पहले भी वह लिखता रहा हो पर हमें उसकी खबर नहीं थी। वसुधा की लिखी हुई पहली कहानी हमारे दोस्तों की ही एक पत्रिका में निकली थी। वह पत्रिका तथा वह कहानी दोनों ही अब कहीं खो गयी हैं। कलकत्ते में उन दिनों बम गिर रहे थे। लोगों में भय और आतंक से भगदड़ मची थी। उस अस्थिर से माहौल में बाकी लोगों ने जैसा लिखा, वसुधा ने भी वैसी ही एक कहानी लिखी थी। बिल्कुल ही मामूली किस्म की। हालांकि उस समय हम लोगों ने उस कहानी की बड़ी तारीफ की थी पर सच में कहानी इतनी मामूली थी कि आज मुझे वह कहानी याद ही नहीं।

मेरा विश्वास है, और जहां तक मेरी धारणा है, वसुधा भी यह मानता था कि

उसने सही-सही लिखना अपने तैंतालीसवें वर्ष से ही शुरू किया था। उस समय हम सभी लोग नौकरी कर रहे थे। वसुधा सिविल सप्लाई विभाग में काम करता था। मैं और भुवन एक ही दफ्तर म थे। वसुधा बहू बाजार के किसी मेस में रहा करता था। दोस्त के नाम पर हम दो ही थे। मेस के कमरे में शाम को हमारी महफिल जमती थी। वसुधा अपने लिखने के बारे में कुछ बताता, अगर कुछ लिखा होता तो उसे पढ़कर सुनाता। उसका मन अस्थिर-सा था। कभी पूरा कुछ नहीं लिखता था। आज कहा कि कुछ लिखूंगा पर कल फिर लिखा नहीं। इसी तरह बहुत कहानियां शुरू कर वह अधूरी छोड़ देता था। महीनों लिखने की बात करता था पर लिखता एक अक्षर भी नहीं था।

इस किताब की जो पहली कहानी है, 'विनोदिनी का दुख' वह उन दिनों एक मासिक पत्रिका में छपी थी। उस कहानी में वसुधा को अपना कुछ कहना है, यह स्पष्ट है। विनोदिनी की शादी पंद्रह साल की उम्र में हुई थी। पति के उम्र अठारह साल। विनोदिनी लाल किनारे की मोटी साड़ी ठीक से संभाल भी नहीं पाती थी। पीठ पर गठरी के समान लादी रहती थी। उसका पति गंगापद पत्नी के लिए स्टीमर घाट से मिट्टी की गुड़िया, कांच की चूड़ियां, चमकीली बिंदी, सिंदूर, कच्चे अमरूद, जामुन आदि छुपाकर खरीद लाता और फिर अपनी नयी नवेली छोटी-सी दुल्हन को देता था। रात में खटिया के नीचे से छुपाया हुआ सामान निकालकर विनोदिनी खेला करती। कभी-कभी रात को ही कच्चा अमरूद चबा जाती। जब गंगापद को स्टीमर घाट पर नौकरी मिली, तब उसने विनोदिनी के लिये चैतन्य देव की एक कांच की मूर्ति ला दी थी। तब से विनोदिनी चैतन्य देव की भक्त बन गयी थी। इसी तरह से विनोदिनी जवान हुई, बेटे-बेटी की मां बनी, गृहिणी बनी, फिर जवानी भी खत्म हुई। उसे बुढ़ापा छू रहा था कि एक दिन उसका पति गंगापद चल बसा। पति के मरने के बाद विनोदिनी गृहस्थी के जंजाल में अपने को कहीं खपा नहीं पायी। पैंतालीस वर्ष से भी अधिक अपने पति के साथ वह जुड़ी रही थी। उसने और उसके पति, दोनों ने मिलकर गृहस्थी का एक नीजी ढर्रा बना लिया था। पति की मृत्यु के बाद वह ढर्रा बदल गया। विनोदिनी का जीवन अब बिल्कुल सूना था, अर्थहीन बन गया था—मानो चलते-चलते नदी कहीं रुक गयी हो। उसका प्रवाह खत्म हो गया हो। विनोदिनी के मन की हालत का एक वर्णन इस तरह का था : जिस रंग से विधाता ने उसके लिए संसार का एक छोटा-सा चित्र बनाया था, उन रेखाओं में आधे मिट चुके थे, उनके रंग धूमिल हो चुके थे। अब विनोदिनी एक पूरी चित्र नहीं रह गयी थी, फिर कभी चित्र बनने की कोई संभावना भी नहीं थी।

इस सूनेपन को दूर करने के लिए अपने बेटे का सहारा लेने की बात विनोदिनी

के मन में आयी पर मन ने फिर इसे स्वीकार नहीं किया। देव-देवियों की पूजा पाठ में भी वह खोयी नहीं। विनोदिनी के बड़े आदर की कांच की चैतन्य देव की वह मूर्ति जिसकी वह करीब पैंतालीस वर्षों से रोज सेवा करती आयी थी, गंगापद के न रहने पर वह चैतन्य देव भी अब सिर्फ कांच के चैतन्य बनकर रह गये थे। अंत में विनोदिनी ने एकाएक अनुभव किया कि जिस तरह मिट्टी की प्रतिमा का विसर्जन होता है, उसका साज श्रृंगार, उसकी शोभा सब कुछ जैसे गल कर घुल जाती है, कुछ भी रह नहीं जाता है, उसी तरह मनुष्य के जीवन के लिए भी विसर्जन उतना ही सच है। गंगापद और विनोदिनी को मानों कोई विसर्जन के लिए गाजे-बाजे के साथ नदी के घाट पर खींच लाया था। पति चल चुके थे, विनोदिनी के लिए नदी का पानी प्रतीक्षा में था। एक ही नदी के पानी में दोनों की मूर्तियां गलकर एक हो जायेंगी। यही सोचकर आज विनोदिनी ने ईश्वर के सामने हाथ जोड़े।

'विनोदिनी का दुख' वसुधा ने अपनी मां को ध्यान में रखकर लिखा था। उसकी मां और विनोदिनी में कोई फर्क नहीं था। धर्मभीरू होने के बावजूद पति की मृत्यु के बाद न तो बेटे वसुधा और न ही धर्म का सहारा लेकर वह अपने को संभाल पायी थी। वसुधा कहा करता था—मां परलोक को भी नहीं मानती थी। वह सिर्फ मृत्यु में ही विश्वास करती थी। मैं कुछ समझ नहीं पाता था।

मां की मृत्यु के कुछ दिनों के बाद वसुधा ने एक और कहानी लिखी। कहानी का नाम था 'दुख मोचन'। इस किताब की दूसरी कहानी वही है। यह कहानी एक अप्रचलित पत्रिका मे छपी थी। 'विनोदिनी का दुख' साहित्यिक भाषा में लिखी गयी थी। शुरू-शुरू में वसुधा वैसा ही लिखता था। पर 'दुख मोचन' उसने चलू भाषा में लिखी।

'विनोदिनी का दुख' कहानी में निनोदिनी को आखिरी सांत्वना मृत्यु थी। मृत्यु को विनोदिनी ने दुख की अंतिम परिणति माना था। यह बात मैं शायद ठीक से कह नहीं पाया। कहना यह चाहिए कि मृत्यु के बीच विनोदिनी ने एक तरह के आत्मिक पुर्नमिलन की आशा की थी। 'दुख मोचन' कहानी में वसुधा ने इसी मृत्यु को जैसे और अच्छी तरह परखने की कोशिश की।

मैं पहले ही कह चुका हूं कि यह कहानी वसुधा ने मां की मृत्यु के कुछ दिनों बाद लिखी थी। उसकी मां की जब मृत्यु हुई उस समय तक एक लड़की के साथ उसका परिचय हो चुका था। उसका असली नाम मैं बताना नहीं चाहता, पर सुविधा के लिए हम उसे निरू या निरूपमा कहकर पुकारेंगे। वसुधा अपनी मां की अस्वस्थता की खबर पाकर देश चला गया था, और मां के मरने तक वहीं था। हम, यानि भुवन और मैं, वसुधा की मां के श्राद्ध के अवसर पर उसके गांव

गये थे। उस समय वसुधा ने हमें एक अजीब बात बताई। बोला—नदी के किनारे श्मशान घाट पर जब मां की चिता जल रही थी, उस समय वह खुद एक जामुन के पेड़ के नीचे बैठकर सारे समय निरू के बारे में सोचता रहा था। उसके बाद के कई दिन तो शोक में बीते—उस दरम्यान भी वह मां को कम ही याद कर पाया। निरू की बात ही अधिक सोचता रहा। लेकिन क्यों ?

हर बात में 'क्यों' कहना वसुधा का तकियाक्लाम था। मां के लिए उसे जितने शोक का अनुभव करना चाहिए था, जितने दुख का अनुभव करना उसका कर्तव्य था—वैसा शोक या दुख उसे नहीं हुआ, बल्कि वह ऊपर से निरुपमा के बारे में ही सोचता रह गया; इस ग्लानि ने उसे बड़े दिनों तक उदास बनाये रखा। मानो वह कोई बड़ा अपराधी था या उससे कोई भारी गलती हो गयी थी। हम लोग उसे किसी भी तरह नहीं समझा पाये कि वह बिना वजह ही अपने को इतना कष्ट दे रहा है।

वसुधा ने कुछ दिन तो इस तरह उदासी और आत्म-ग्लानि में काटे, फिर मन के लायक एक उतर खोजने के बाद उसने 'दुख मोचन' नामक कहानी लिख डाली।

'विनोदिनी का दुख' कहानी में विनोदिनी ने मृत्यु के बीच अपने कष्टों के समाधान का अनुभव किया था। 'दुख मोचन' कहानी में सुखेंदु ने मृत्यु को निष्क्रिय जड़वत माना है।

जीवन गति की सृष्टि कर सकता है, मृत्यु गति की सृष्टि नहीं कर पाती। सीधे ढंग से कहने पर बात यों होगी कि विनोदिनी ने मृत्यु को अपनाकर शांति पायी थी पर सुखेंदु जीवित रहकर, सजीव रहकर शांति पाना चाहता था।

सुखेंदु 'दुख मोचन' कहानी का नायक है। उसकी उम्र सिर्फ सही उम्र से बढ़ा दी गयी था। वैसे कहानी का मूल विषय प्रेम लगता होगा; पर मैं समझता हूं मूल विषय है मृत्यु और जीवन के बीच का द्वन्द। कहानी के शुरू से ही हम देखते हैं कि सुखेंदु एक अजीब से द्वद्व के बीच नितांत दुखी व्यक्ति के रूप में जीवन व्यतीत कर रहा है। वह रेणु नाम की एक लड़की से प्यार करता है, पर मां की सर्व ग्रासा याद उसे रेणु के साथ सहज संपर्क स्थापित नहीं करने देती। उसके मन में अन्याय का भय है और विवेक की ग्लानि उसे लगातार कुरेद रही है। मानो हर रोज वह मां के अभिशाप पर जी रहा हो। ऐसा क्यों होता है, वह नहीं समझ सकता, पर इतना जरूर समझ सकता है कि उसने मां के प्रति यथोचित कर्तव्य का पालन नहीं किया।

मन के इस द्वंद्व से सुखेंदु की मुक्ति की उम्मीद जब हम छोड़ देते हैं—तभी एक घटना से सारा द्वंद्व मिट जाता है। कहानी के अंत में जो अलौकिक घटना है

मैं उसी के बारे में बताता हूं । जाड़े की बस शुरूआत ही थी । उस शाम को रेणु के घर की छत पर रेणु और सुखेंदु गप कर रहे थे । कलकत्ते की गली, धुएं, कुहासे, गैस की बत्ती और थोड़ी-सी चांदनी के बीच एक बुझा-बुझा-सा माहौल था । गप-शप के बीच ही रेणु अचानक उठ गयी । सुखेंदु बैठा ही था । अचानक उसे लगा कि उसके पास कोई और बैठा हुआ है । धुएं, कुहासे, अस्पष्ट चांदनी के बीच पहले तो वह उस मूर्ति को पहचान नहीं पाया । मूर्ति एक सफेद छाया सी लग रही थी । थोड़ा ध्यान देने पर ही सुखेंदु समझ सका कि यह छाया उसकी मां की थी । पहले तो वह हैरान हुआ पर फिर समझ गया कि उसकी मां क्यों आयी थी । अपनी स्वर्गीय मां के प्रति उसके मन मे करुणा उमड़ रही थी । मां के लिए उसके मन मे दुख हो रहा था । एक अजीब सी चिंता की अनुभूति उस पर छा रही थी । मां को वह कुछ कहने ही जा रहा था कि उसकी नाक में एक गंध आयी । यह किस चीज की महक हो सकती थी ? उसने अनमने में सर झुकाया तो बुक पाकिट में से फूल की महक आयी । उसके याद आया, थोड़ी ही देर पहले रेणु ने अपने जूड़े में से एक गुलाब तोड़कर उसके पाकिट में रख दिया था । उस फूल की सुगंध कितनी जीवंत, मनोरम, और स्पर्श योग्य थी । रेणु का शरीर, उसका मन, उसका प्यार, सब मानो उसी क्षण एक विशाल तरंग की भांति सुखेंदु को बहा कर ले गये । उसी हालत में सुखेंदु किसी तरह अपनी मां को कह सका : 'मां तुम फिर कभी मत आना ।'

वसुधा ने स्वयं जिस ग्लानि का अनुभव किया था, उससे वह इस तरह सुखेंदु को मुक्त कर पाया था । मृत मां के लिए उसके मन में कोई गहरा शोक या दुख नहीं था क्योंकि वह तो निरु की चिंता में खोया हुआ था । इसी ग्लानि के बोध से उसके मन में दुख जन्मा था, और फिर उस दुख का मोचन इतने दिनों में हो पाया । निरु जीवित थी, इसीलिए उसका आकर्षण अधिक था । निरु जीवित थी इसीलिए वह आवश्यक थी । यानि प्रेम ही जीवन है ।

'दुख मोचन' ठीक ठीक प्यार की कहानी नहीं है । प्रेम इस कहानी का मूल आधार भी नहीं है । हर मनुष्य जीवन के प्रति आसक्त है, और इस आसक्ति के बिना कोई जीवित नहीं रह सकता, वसुधा अपनी कहानी में मानों यही बात बताना चाहता था ।

व्यक्तिगत रूप से मुझे लगता है, वसुधा की यह कहानी उसके लिए अच्छी साबित हुई थी क्योंकि सुखेंदु तो मात्र एक निमित्त था ।

उस किताब की तीसरी कहानी है 'नरक की यात्रा' । मैंने पहले ही कहा है, फिर भी याद दिला देता हूं, कि पहली बार इसी नाम से उसकी किताब छपी थी । इस बार भी किताब का नाम वही रखा गया था । 'दुख मोचन' कहानी के लिखने

के करीब साल भर बाद वसुधा ने इस कहानी को लिखा था। इस कहानी को प्रेम की कहानी कहा जा सकता है, हालांकि प्रेम की कहानी का नाम 'नरक की यात्रा' कान में खटकता है।

'नरक की यात्रा' में एक युवक के प्यार की प्यास, उसके प्रेम और फिर उसकी व्यर्थता की बात कही गयी है। कहानी का नायक वसुधा स्वयं है पर लिखते समय नायक का नाम उसने परिमल रखा था। यहां पर नायिका सच में ही निरूपमा थी। कलकत्ता के सदानन्द चौधरी वाली गली के जिस मकान में निरुपमा रहती थी, उसके नीचे के तल्ले में परिमल का कोई दोस्त रहता था। परिमल कभी-कभी दोस्त के घर जाया करता था। उसी सूत्र से निरुपमा के साथ उसका परिचय हुआ था।...परिचय को घनिष्ठता में बदलने में थोड़ा समय जरूर लगा था, पर एक बात स्पष्ट थी कि परिमल पहली नजर से ही निरूपमा के प्रति आकृष्ट हो चुका था। परिमल उस तरह का लड़का था जो प्यार को एक दैवी शक्ति के समान मानता था। उसका विश्वास था कि प्यार में मनुष्य का हृदय उपजीवित होता है। सहमा-सहमा-सा, लजीला भावुक सा। वह लड़का बिलकुल साधारण सी लड़की निरुपमा को अच्छा नहीं लगा इसके कई कारण थे। निरूपमा स्वभाव से ही मामूली किस्म की लड़की थी।

कहानी के शुरू के अंश में बताया गया है कि परिमल और निरूपमा की घनिष्ठता धीरे-धीरे कैसी बढ़ी। दूसरे अंश में उनके प्यार के बारे में कहा गया है। इस प्यार की परिमल की ओर से गंभीर और आंतरिक कहने में कहीं कोई बाधा नहीं थी। परिमल सोचता था, इस प्रेम ने ही उसके अस्तित्व को सार्थक बनाया है, उसके जीवन को कोई दिशा दी है। निरूपमा इतना कुछ नहीं सोचती थी। सोचने की कोई वजह है, ऐसा भी नहीं समझती थी। हो सकता है उसे सोचना आता नहीं था। फिर भी हर जवान लड़की की तरह इस प्रेम के लिए उसके मन में भी कुछ रोमांच था।

पर यह प्यार एक दिन टूट गया। क्यों टूटा, यह समझा जा सकता है। फिर भी कभी-कभी लगेगा निरुपमा के घर के नीचे तल्ले में जो किराएदार था—मन्मथ—परिमल का दोस्त—उसी की चालाकी और ओछेपन से इनका प्रेम नष्ट हुआ। पर फिर कभी लगेगा इसका सारा दोष परिमल का अपना ही है, और फिर कभी-कभी जी करेगा कि इस सारे दोष को निरुपमा के मत्थे मढ़ दिया जाये। अगर मन्मथ को हम मूल कारण मानते हैं तो मैं देखता हूं कि मन्मथ ने परिमल के प्रतिद्वंद्वी की हैसियत से निरूपमा को पाने की कोशिश की, पर चूंकि वह अत्यधिक चतुर था, इसलिए आमने-सामने उसने किसी प्रकार की प्रतिस्पर्धा की बात नहीं की। उसने जो कुछ किया, सीधी सादी सांसारिक सड़क को पकड़

कर बड़ी धूर्तता से। उसने निरूपमा की मां को अपने वश में कर लिया और कुछ हद तक निरुपमा को भी। निरूपमा की मां घर संसार की बातें समझती थी, लड़की की सुख शांति के बारे में भी सोचा समझा करती थी और पर प्यार-व्यार की बात उसकी समझ से परे थी। अपनी बेटी के लिए परिमल को वह योग्य वर नहीं समझ सकी। निरूपमा भी कैसे भूल कर बैठी ? मन्मथ की चतुराई और उसके कठोर पौरुष का दावा उसे ज्यादा मोहक लगा। इसके अलावा मां की तरफ से भी परिमल को अपनाने में बड़ी बाधा थी।

बचपन से ही हर तरह की अस्वस्थता से निरुपमा को भय सा था, घृणा थी। परिमल को वह अस्वस्थ समझती थी। उसने परिमल को प्रेमी के रूप में देखने की बहुत बार कोशिश की, पर यह नहीं सोच सकी कि वह प्रेम जब व्यवहार की वस्तु बन जायेगी तब शांति या सुख के रूप में निरुपमा को क्या मिलेगा ? उसे लगा कि परिमल उसे घर-गृहस्थी का सुख नहीं दे पायेगा।

अगर परिमल के अपराध के बारे में सोचता हूं तो देखता हूं कि काफी रास्ता अनायास तय करने के बाद परिमल एकाएक सहम कर रुक गया। क्यों ऐसे रुक गया. उसके बारे में हमें बताना चाहिए। हो सकता है प्यार में जितना पाया जा सकता था, उतना वह पा चुका था और अब प्यार के विषाद और असंपूर्णता की ओर आकर्षित हो रहा था। एक जगह पर प्यार के क्षणिक सुख की बात सोचते हुए परिमल ने पाया कि प्रेम में कोई स्थिरता नहीं है, आज जैसा है वैसा हमेशा नही रहेगा। प्यार में जो अपूर्णता और विषाद है, वह इस कारण कि बाकी सभी सौंदर्य की वस्तुओं की तरह उसमें भी परिवर्तन और क्षय निहित है। परिमल को शायद अक्षय प्रेम, अपरिवर्तनीय प्रेम की कामना थी जो इस संसार मे दुर्लभ है।

निरूपमा का अपराध इतना था कि वह एक साधारण सी लड़की थी। नितांत साधारण दृष्टिकोण से ही उसने प्रेम और घर गृहस्थी के सुख से देखना चाहा था। परिमल को स्वीकारने में उसने द्विधा व्यक्त की थी। यह द्विधा कुछ तो मन्मथ के कारण उसके मन में आया था और कुछ निरुपमा की साधारण इच्छा से हुई थी।

'नरक की यात्रा' वसुधा की अपनी कहानी है। निरु के प्यार ने अंत तक उसे शांति नहीं दी थी। सच में ही निरु से उसके दोस्त ने शादी कर ली थी। प्रेम की इस व्यर्थता को हम जिस तरह से स्वीकार करते, वसुधा वैसा नहीं कर पाया। वह कहा करता था, हमारी प्रेम की धारणा बहुत छोटी है। हमारा प्रेम सिर्फ एक व्यक्ति पर अवलंबित होता है, इसलिए जब वह छोड़ देता है तो दुख से मन मर जाता है, छटपटाता रहता है, कातर हो जाता है। ऐसा क्यों होता है ? क्यों ?

'क्यों' का भूत वसुधा के कंधों से कभी नहीं उतरा। कहना नहीं चाहिए, पर वसुधा ने हम लोगों के छोटे-मोटे प्यार को कभी पसंद नहीं किया। इस प्यार को अंतत: उसने अस्वीकार कर दिया था। उसने देखा कि हमारे इस संसार में सैकड़ों तरह की ग्लानि, तुच्छता, धूर्तता, कुछ पाने की लिप्सा ने हमारी आत्मिक दीनता को और भी दीन बना डाला है। उसकी धारणा थी---हम अपनी दीनता के कारण ही नरकवासी जीव बने हुए हैं। इस नरक से पार पाने की चेष्टा में ही उसने 'नरक की यात्रा' की रचना की थी। वह व्यक्तिगत प्रेम और प्राप्ति से संभवत: कहीं दूर चले जाने की चेष्टा थी।

जिस साल वसुधा ने कलकत्ता छोड़ा, उसी साल मेरी शादी हुई। मेरी पत्नी वसुधा की कहानियों की अनुरागिनी थी या नहीं, मैं नहीं जानता, पर वसुधा को वह जानती थी। मेरी शादी के समय वसुधा को रहने के लिए मैंने कहा था। पर वह रहा नहीं। उसके बस कई एक महीने पहले ही हम लोगों ने उसकी किताब छापी थी।

वसुधा के साथ मेरी भेंट या किसी तरह का योग नहीं रहा। बस साल में उसकी एक-आध चिट्ठी आ जाती थी। भुवन को भी कदाचित उसकी एक आध चिट्ठी मिल जाया करती थी। वसुधा की चिट्ठी से हम समझ गये कि वह 'न घर का न घाट का' रह गया है। बाद में पता चला कि वह आस्तिक बन गया है। और बिलकुल अंत में पता चला कि वह ईश्वर का विसर्जन कर मानव-सेवी बन गया है।

वसुधा की लिखी हुई अंतिम दो कहानियों के बारे में मेरा कोई वक्तव्य नहीं। मैं नरक वासी जीव हूं। नरक से निकल कर वसुधा ने जिन राहों पर चलने की कोशिश की थी, मैं उनकी खोज नहीं रख सका। हो सकता है उसकी चौथी कहानी 'ईश्वर' और पांचवीं और आखिरी कहानी 'आश्रय' उसके जीवन के अंतिम कुछ वर्षों का इतिहास बता सके। यही दो कहानियां भुवन बनारस से लौटते समय उन बूढ़े सज्जन के संग्रह से ले आया था। दोनों कहानियों की पाण्डुलिपि देखने पर पता चलता है कि दोनों ही कहानियां अपूर्ण और अधूरी हैं। पढ़ने के बाद पाठक भी यह अनुभव कर सकेंगे।

'ईश्वर' कहानी की शैली स्वाभाविक नहीं है। इसे हम प्रतीकात्मक कहानी कह सकते हैं। पढ़ने पर एक असाधारण सादगी का आभास मिलता है, पर अंत तक न मालूम क्यों मन में एक अभाव का बोध जागता है। कहानी के शुरू में ही अस्वाभाविकता की झलक मिलती है। किसी तूफानी रात के अंधेरे में एक राही ने किसी मंदिर में आकर आश्रय लिया। वहां उस अंधेरे में ही एक सन्यासी के साथ उसकी भेंट हुई। बातचीत के दौरान सन्यासी ने कहा कि उनके झोले में

एक दीप है जिसे किसी भी समय किसी भी अंधेरी रात में जलाकर रास्ता तय किया जा सकता है। राही ने कहा—'तो फिर आपने वह दीप क्यों नहीं जलाया?' इस अंधेरे में क्यों बैठे हैं?' संन्यासी बोले – मेरे पास इस तरह के तीन दीप हैं, एक असली है और दो नकली। अंधेरे में मैं असल और नकल का भेद नहीं कर पा रहा हूं।

यह सुनकर उस राही के मन में आकांक्षा जगी कि 'कितना अच्छा होता यदि मेरे हाथ वे दीप होते।' संन्यासी शायद राही के मन की इच्छा को भांप गये। बोले—अगर तुमसे हो सके तो असली दीप तुम ढूंढ लो। राही ने संन्यासी से आग्रह किया कि दीप वे उसके हाथों में दे। संन्यासी ने ऐसा ही किया। पर अंधेरे में राही को तीनों दीप एक समान ही लगे। असल नकल का भेद वह भी नहीं निश्चित कर सका। संन्यासी बोले नहीं कर पाये ?

राही बोला—नहीं।

संन्यासी ने दीपों को वापस लेते हुए कहा—इसमें से एक तो जरूर जलेगा। जिसे जलाना आता है उसके हाथों जरूर जलेगा। वह अपने गुणों से इसे जला लेगा।

कहानी यहीं पर खत्म होती है। पर पांडुलिपि देखने से पता चलता है कि कहानी में वसुधा ने बार-बार और ही कुछ कहने की चेष्टा की थी। शायद उस रहस्य का कोई अर्थ समझने की कोशिश की थी पर वह असफल ही रहा।

अन्तिम कहानी का नाम है 'आश्रय'। कहानी बनारस शहर को लेकर है। कहानी का आरंभ तो है पर अंत नहीं। वसुधा ने उत्तम पुरुष की शैली में यह कहानी लिखी। जाड़े के मौसम के शुरू-शुरू में बनारस के ग्रामीण इलाकों में हर साल महामारी फैलती है। इस बार भी भयंकर महामारी फैली। लोग बाग गांव छोड़ कर भाग रहे थे, सरकारी कर्मचारी भी गांवों में जाना नहीं चाह रहे थे। गंगा के किनारे निरंतर चिताएं जल रही थीं। कहानी के नायक ने एक दिन भोर में गंगा स्नान कर घर लौटते समय अनुभव किया जैसे उसे दूर गांव से कोई पुकार रहा हो। वह शायद उसका देहाती दोस्त था जो उसे कभी कभी ग्रामीण सुर में दोहा सुनाया करता था।

वसुधा मानो उस गीत को सुन पा रहा था। गाने का भाव कुछ ऐसा था : हम बड़े दुखियारे हैं, बड़े चंचल है, पेड़ का जैसे अपना एक जड़ होता है, हम लोगों का वह भी नहीं। हम एक जगह नहीं टिक पाते हैं।

वसुधा घर नहीं लौटा, गांव की तरफ— जिधर महामार फैली थी - उस तरफ चल पड़ा।

कहानी यही तक लिखी गयी है, इसके बाद लिखी नहीं गयी। भुवन बोला, इस

कहानी को लिखने के दूसरे ही दिन वसुधा चला गया था। बनारस के वे बूढ़े सज्जन और उनकी बेटी को यह बात मालूम नहीं है।

छोटा नागपुर के किसी अनाम जगह के एक मिशनरी अस्पताल में वसुधा की मृत्यु हुई। उसकी मृत्यु की खबर हमें काफी दिनों के बाद मिली थी। अस्पताल में उसने कुछ लिखा था, ऐसा नहीं लगता। उसके लिखने की जरूरत खत्म हो चुकी थी।

वसुधा की लिखी कहानियों को मैंने दोस्त की हैसियत से आंका है। हो सकता है—मैंने गलती की है, पर मेरे लिए यही स्वाभाविक है। पाठक मुझे माफ करें।

इस किताब के शुरू में एक उत्सर्ग पत्र है। यह पहली बार भी था। कहना फिजूल है, उस उत्सर्ग पत्र में जिस निरूपमा का नाम है, वह पत्नी नहीं, वसुधा की वही निरूपमा थी।

भारतवर्ष

रमापद चौधरी

बी एफ, थ्री-थर्टी-टू, यह नाम तो फौजी संकेत में था पर असलियत में यह कोई स्टेशन नहीं था, न ही इसकी कोई टिकट खिड़की थी और न ही कोई प्लेटफार्म। अचानक एक दिन सिर्फ इतना ही दिखायी पड़ा कि रेल की पटरी के किनारे को नए कांटों वाले तार से घेर दिया गया है। बस सिर्फ इतना ही। दिन भर में अप-डाऊन कोई भी गाड़ी यहां नहीं रुकती थी। पर एक खास गाड़ी यहां रुकती थी। अचानक किसी-किसी रोज सुबह आकर रुकती थी। कब और किस समय यह गाड़ी रुकेगी, यह भी केवल हम ही लोग पहले से जानते थे। बिहारी खानसामे और भगवती लाल को मिलाकर हम लोग पांच जने थे।

स्टेशन नहीं था, गाड़ी रुकती नहीं थी, फिर भी रेल के लोगों की जबान पर एक नाम आम हो गया था। वही सुनकर हम लोग भी कहने लगे थे 'अंडा हाल्ट'।

अंडा हाल्ट के करीब दो छोटे पहाड़ी टीले थे और उसके नीचे था महतो का गांव। गांव के घरों मे मुर्गियां चरती फिरतीं। दूर भुरकुंडा के शनीचरी हाट में मुर्गियों या अंडों को महतो लोग बेचने जाया करते थे। कभी-कभी प्यार से पाले हुए मुर्गों को बगल मे दबा कर मुर्गों की लड़ाई भी देखने जाया करते। पर बी-एफ-थ्री-थर्टी-टू का नाम इस वजह से अंडा हाल्ट नहीं पड़ा था।

सच बात तो यह थी हम कि लोगों का महतो गांव के अंडों पर कोई लालच नहीं था। हमारे ठेकेदारों और रेलवालों के बीच समझौता था। ठेकेदार के पास एक पहिए वाली ट्राली गाड़ी थी। वह लाल झंडा फहराता हुआ उस ठेले को रेल की पटरियों पर लुढ़काता हुआ अपना माल-वाल उतार कर चला जाता था।

अनगिनत अंडे रख जाता था। बिहारी खानसामा और भगवती लाल पिछली रात के अंडों को उबाल कर रखते।

लेकिन इस कारण भी इस जगह का नाम अंडा हाल्ट नहीं पड़ा था। नाम

तो पड़ा था इसलिए क्योंकि कांटे वाले तारों के पीछे उबले हुए अंडों के छिलके का पहाड़ जम गया था, इसलिए।

फौजी भाषा में बी०एफ० थ्री-थर्टी-टू के पहले दो अक्षरों का मतलब हम लोगों ने यह लगाया कि यह कोई संकेत नहीं, बल्कि ब्रेक फास्ट शब्द का संक्षिप्तीकरण है।

रामगढ़ में उन दिनों पी ओ डब्लू (युद्ध बंदियों का) कैम्प पड़ा था। इटली के लडाकू कैदियों को यहां बंदूकों और कांटों वाले तारों से घेर कर रखा गया था। बीच-बीच में किसी गाड़ी में लाद कर इसी रास्ते से न मालूम उन्हें कहां-कहां चलान कर दिया जाता था। क्यों एवं वहां इन्हें भेजा जाता था, यह हमें मालूम नहीं पड़ता था। हम लोगों को सिर्फ इतनी ही खबर मिलती थी कि सुबह आकर कोई गाड़ी रुकने वाली है। ठेकेदार चिट्ठी मिलते ही एक दिन पहले अंडो की टोकरियों को दिखाकर भगवती लाल से कहता—तीन सौ तीस ब्रेक फास्ट तैयार करना है।

भगवती लाल गिन-गिन कर छः सौ साठ अंडे और फिर यदि कुछेक खराब निकल जाएं, इसलिए 25 अंडे फालतू निकाल लेता था। उसके बाद उन्हें उबाल कर उनके कड़े हो जाने के बाद तीन कुलियों के साथ लगकर उनके छिलके उतारता था। कांटे वाले तारों के पीछे यही छिलके इकट्ठे होते जाते।

सुबह-सुबह गाड़ी आकर रुकती थी, और तुरन्त ही झटपट गाड़ी के दोनों तरफ से मिलिटरी गार्ड उतर पड़ते थे। राइफल तान कर युद्ध बंदियों पर पहरा देते।

डोरिया पोषाक में विदेशी कैदी लोग एक बड़े से मग और एनामेल की थाली लेकर गाड़ी से उतर पड़ते।

बड़े-बड़े दो ड्रमों को उलट कर उसे ही टेबल बनाकर तीन कुली खड़े हो जाते और कैदी लोग लाईन से आगे बढ़कर अपना-अपना नाश्ता लेते जाते। एक कुली मग में कौफी डाल कर देता था, दूसरा कुली दो पीस डबल रोटी देता, और तीसरा दो अंडे दिया करता था। उसके बाद कैदी लोग फिर जाकर गाड़ी पर बैठते। खाकी कमीज पहने गार्ड सीटी बजाता, झंडा फहराता और गाड़ी आगे चल पड़ती थी।

महतो के गांव से कोई पास नहीं टपकता था। दूर जनेरी की खेती में कमर सीधी कर खड़े-खड़े वे हैरत भरी नजरों से सब देखा करते।

गाड़ी छूटने के बाद तम्बू को भगवती लाल के जिम्मे रख कर हम लोग किसी-किसी रोज महतो के गांव की तरफ सब्जी की खोज मे चल पड़ते। पहाड़ी ढाल में पथरीली जमीन में वे सरसों उगाते, बैंगन, तोरी भी उगाते।

एक दिन रातोंरात अंडा हाल्ट पक्का स्टेशन बन गया। कांटों वाले तार से घिरी जमीन प्लेटफार्म बनाने के लिए ऊंची बनायी गयी। उस समय सिर्फ पी०ओ०डब्ल्यू० ही नहीं, कभी-कभार मिलिट्री स्पेशल भी आकर रुकती थी। गैबरडोन की पतलून पहनकर हिप पाकिट में रुपयों का बैग रखकर अमेरिका के सैनिक उस स्पेशल से आकर रुकते। पुलिस के आदमी गाड़ी से उतर कर चहलकदमी करते, दो एक मजाक भी कर लेते थे और सैनिकों का झुंड उसी तरह कतार से मग और थाली पकड़ कर डबलरोटी अंडा लेता। कौफी लेता। उसके बाद सब अपने कमरे में जाकर बैठ जाते। खाकी बुश्शर्ट वाला गार्ड सीटी बजाता, झंडी फहराता, और मैं दौड़ता हुआ जाकर सप्लाई फार्म में मेजर से ओ-के करवा लेता।

गाड़ी चली जाती, किधर, किस तरफ हम नहीं जान पाते थे।

उस दिन भी इसी तरह अमेरिकन सैनिकों की गाडी आकर रुकी। तीन कुली अंडे, डबल रोटी और कौफी बांट रहे थे। भगवती लाल निगरानी रख रहा था कि कहीं कोई सड़ा हुआ अंडा और खराब डबलरोटी कहकर फेंक न दे। ठीक उसी समय हमारी नजर कांटों वाले तार के उस तरफ चली गयी। तार से थोड़ी दूर पर खड़ा-खड़ा महतो गांव का एक लंगोट पहना हुआ लड़का आंखें बड़ी-बड़ी करके सब कुछ देख रहा था। कमर की रस्सी में लोहे का टुकड़ा बांधे इस लड़के को मैंने एक दिन भैंस की पीठ पर जाते हुए देखा था।

लड़का अवाक् नजरों से गाड़ी को देख रहा था और लाल चेहरे वाले अमेरिकन सैनिकों को।

एक सैनिक की उस पर नजर पड़ते ही 'हेई' कहकर वह चिल्ला पड़ा, और उसकी आवाज सुनते ही वह लड़का तेजी से दौड़ कर महतो गांव की तरफ भाग गया।

पीछे से कई अमेरिकन सैनिक ठहाका लगाकर हंसने लगे। मैंने सोचा यह लड़का अब किसी दिन और यहां नही आएगा। महतो लोगों में से भी तो कभी कोई नहीं आता था। खेती करते समय कभी-कभार कमर सीधी कर वे हैरान दृष्टि से दूर से ही देख लेते थे।

लेकिन फिर जिस दिन गाड़ी आई, रुकी, कमर के धागे में लोहा बंधा हुआ वह छोकरा कांटों वाले तारों के पीछे फिर आकर खड़ा हो गया। इस बार उसके साथ में कोई और एक लड़का था। उससे थोड़ा बड़ा ही होगा। गले में लाल धागे में लोहे का तावीज था।

दोनों लड़के तार के उस पार से अमेरिकन सैनिकों को देख रहे थे। पहले दिन वाले लड़के की आंखों में थोड़ा सा डर था, पैर उसके मानों तैयार थे कि आंखों

से कोई डराए, उसके पहले ही वह हिरण बनकर भाग खड़ा होगा।

हाथ में फार्म लेकर मैं इधर उधर घूम रहा था। मौका मिलते ही मेजर को खुश करने की कोशिश करता। एक सैनिक अपने कमरे के दरवाजे पर खड़ा होकर काफी पीते हुए दोनों लड़कों की ओर इशारा कर बोला---'औफुल।'

मुझे तो अभी तक ऐसा कुछ लगा नहीं था। वे लोग मजे में खेतों पर काम काज करते, तीर धनुष से शिकार करते, नौटंकी का गाना सुनते, ताड़ी पीते, धनुष के बाण की तरह कभी-कभार तनकर खड़े हो जाते। लंगोट डाले हुए पतले काले रूखे शरीर। पर उस अमेरिकन सैनिक का 'औफुल' शब्द मानो मुझे बिंध गया। उन लड़कों पर मुझे बड़ा गुस्सा आया।

सिपाहियों में से एक ने ऊंची आवाज में दो लाईन गाना गा डाला। एक दो हंस रहे थे। एक ने झटापट कौफी के मग से चुस्की लगाकर कुली को आंख के इशारे से कौफी भर देने के लिए कहा। गार्ड आगे बढ़कर देखने लगा कि चलने में और कितनी देर है। पंजाबी गार्ड मेजर के साथ बातें करने लगा। वह मानो नाक से बोल रहा था। उसके बाद सीटी बजी, झंडी दिखायी गयी झटपट सब लोग गाड़ी में बैठ गए। बाहों मे चौड़े लाल फीते का पट्टा लगा मिलिटरी के आदमी भी चढ़े।

गाड़ी के छूट जाने के बाद फिर वहां सूनापन। जिधर देखा रेत ही रेत, उसी रेत में कंटीले पौधों की तरह कांटे वाले तारों का घेरा।

कई एक दिन के बाद फिर एक गाड़ी आई। यह पी-ओ-डब्लू की गाड़ी थी। इटली के युद्धबंदियों को रामगढ़ से फिर कहीं और चालान किया जा रहा था। कहां ? यह हम नहीं जानते थे, जानना चाहते भी नहीं थे।

उनके पहनावे और तरह के थे, चेहरे पर मुस्कराहट भी नहीं थी। राइफल तान कर हर वक्त उनकी चारों तरफ से चौकीदारी की जाती थी। हम लोगों के मन में भी थोड़ा डर बना रहता था। हमने भुरकुंडा की कहानी सुन रखी थी। धोती कुर्ता पहन कर किसी ने भागने की कोशिश की थी पर भाग नहीं पाया था।

गाड़ी छूट जाने के बाद मैंने गौर किया, कांटे वाले तारों के पीछे दो लड़के और छोटे से कपड़े पहने पन्द्रह साल की एक लड़की और दो मर्द खेती का काम छोड़ कर आकर वहां खड़े थे। गाड़ी के चले जाने के बाद वे लोग आपस में कुछ बोल रहे थ, हंस भी रहे थे, और हंसते चहकते हुए महतो गांव की तरफ वे चले गए।

एक, दो, पांच---इस तरह से उस दिन के बाद जब गाड़ी आकर रुकती, दसेक आदमी खेत से दौड़ना शुरू कर देते। गाड़ी के डिब्बों में खाकी रंग देखते ही

वे शायद समझ जाते थे। दिन में दो पसेंजर गाड़ियां भी थीं जो मेल गाड़ी की तरह झट से निकल जाती थीं। दो एक माल गाड़ी भी टुन टुन करती हुई जातीं, पर उस समय तो गाड़ी रुकेगी नहीं, यह समझ कर महतो गांव के लोग भीड़ इकट्ठी नहीं करते।

एक दिन महतो गांव के एक बूढ़े से जाकर मैंने कहा कि वह आदमी भेजकर हमारे अंडा हाल्ट के तंबू मे जाकर साग सब्जी, मछली आदि बेचा करे

बूढ़े ने हंसकर कहा—खेती का काम छोड़ कर नहीं जा सकता।

इसलिए मैं हैरान होकर देख रहा था, काले काले लंगोट पहने हुए आदमियों और छोटे कपड़े डाले हुए लड़कियों को। महतो बूढ़ा बिलकुल खाली बदन था पैर में एक खुला सा जूता। गांव के ही गंवार मोची का बनाया हुआ जूता होगा। ये सारे लोग कांटे वाले तार के पीछे आकर खड़े रहते थे।

गाड़ी तब तक आ चुकी थी। अमेरिकन सिपाही टपाटप गाड़ी पर से कूद पड़े, हाथ में उनके थाली और कौफी का मग था। बी एफ थ्री थर्टी टू में दो सौ अठारह सुबह के नाश्ते उस समय तैयार थे। बी एफ थ्री थर्टी टू का मतलब ही था अंडा हाल्ट।

उस समय थोड़ी ठंड पड़नी शुरू ही हुई थी। दूर का पहाड़ कुहासे का मफलर लपेटे हुए था। पेड़ पौधे सारे ओस से भीग कर हरियाली लिए खड़े थे। एक सिपाही ने जोर की आवाज में अपनी खुशी जाहिर की। एक सिपाही गाड़ी के डिब्बे में खड़ा होकर कांटें वाले तारों के उस पार की रिक्तता को एकटक देख रहा था। अचानक उसने कौफी का मग गाड़ी के पायदान पर रख अपने पैंट के पीछे के पाकिट में हाथ रखा। फिर पाकिट से एक अठन्नी निकाल कर उसने महतो की तरफ फेंकी।

वे लोग हैरान होकर सिपाही को देख रहे थे। कांटों वाले तार के अंदर की साफ जगह पर पड़ी हुई चकाचक अठन्नी की तरफ भी देखा। फिर आपस में वे एक दूसरे का चेहरा देखने लगे। गाड़ी छूट जाने के बाद वे लोग चुपचाप चले जाने लगे। मैंने कहा—साहब ने बख्शीश दी है, ले ले। सभी एक दूसरे को देखने लगे, कोई आगे बढ़कर नहीं आया।

अठन्नी को उठाकर मैंने महतो बूढ़े के हाथ में दिया, वह बेवकूफ की तरह मेरी तरफ देखने लगा। उसके बाद सब लोग चुपचाप चले गए। किसी की जबान पर कोई बात नहीं थी।

ठेकेदार की खुशामद वाली नौकरी मुझे जरा भी अच्छी नहीं लगती थी। कहीं कोई आदमी नहीं। एक भी पैसेंजर गाड़ी यहां रुकती नहीं थी। तम्बू में भगवती लाल, तीन कुली और मैं। बड़ा ही एकाकीपन था। यहां की मिट्टी रूखी थी,

दुपहरी का आकाश रूखा था, और साथ ही मेरा मन भी रूखा था।

महतो गांव का भी कोई आदमी पास नहीं फटकता था। कभी कभी मैं जाकर उनके गांव से सब्जी मछली खरीद कर लाता था। वे लोग बेचने के लिए नहीं आते थे, पर भुरकुंडा के हाट में तीन कोस चलकर जरूर जाते थे।

कई दिनों से किसी गाड़ी की कोई खबर नहीं थी। बिलकुल चुपचाप सा था सब कुछ।

अचानक एक दिन कमर के धागे में लोहे का टुकड़ा बांधे हुए वह छोटा सा लड़का आकर मुझसे पूछने लगा गाड़ी नहीं आएगी बाबू ?

मैं हंस पड़ा। बोला—आएगी।

बच्चे का क्या कसूर ? किसी देहाती भीड़ वाली बस को देखने के लिए भी उसे दो कोस चलना पड़ता था कत्थई की झाड़ियों के बीच से। सुबह एक पैसेंजर गाड़ी थोड़ी भी गति न कम कर झट से निकल जाती। शाम के डाउन ट्रेन की भी यही हालत थी। फिर उस अस्पष्ट से उन चेहरों को भी देखने के लिए हम तम्बू से बाहर दौड़कर आते थे। आदमियों को न देख-देख कर किसी चेहरे को देखने के लिए हम लोगों का मन जैसे हांफ जाता था।

इसीलिए अमेरिकन सैनिकों की स्पेशल ट्रेन आ रही है, सुनने से जितनी दिक्कत होती थी, उतना ही अच्छा भी लगता था। कुछ दिनों के बाद खबर मिली कि अगले दिन मिलिटरी स्पेशल आने वाली है। झटपट जी० आई० लोग उतरे। कतार से अंडे, डबल रोटी और कौफी ली।

अचानक मेरी नजर गयी तो देखा कि कंटीले तार के पीछे महतो गाव की भीड़ टूट पड़ी है। बीस, तीस संख्या में वे कुछ भी हो सकते थे। घुटने भर के बच्चे तक उनमें शामिल थे। तंग कपड़ों में लड़कियां भी हतप्रभ नजरों से देख रही थीं। उन लोगों को न जाने क्यों मुझे डर सा लगने लगा। भगवती लाल या तीन कुली भी अगर महतो गांव की तरफ जाते तो हमें डर लगता।

प्लेटफार्म तो कुछ था नहीं। केवल चढ़ने उतरने के लिए पटरी के किनारे को मिट्टी डाल कर ऊंचा किया गया था। अमेरिकन सिपाही चहलकदमी करते कौफी पी रहे थे। दो एक सिपाही स्थिर नजरों से महतो गांव के काले आदमियों को देख रहे थे।

अचानक एक सिपाही ने भगवती लाल की तरफ बढ़कर पाकिट से बैग निकाला और बैग से दो रुपये का नोट निकाल कर पूछा—टूटे है।

टूटे पैसे सिपाही रखते नहीं थे। दूकानदार या फेरी वाले से या टैक्सी ड्राइवर से कहते थे, ठीक है, रख लो। रांची में तो मैंने ऐसा ही देखा था।

इकन्नी दुअन्नी चवन्नी इस तरह से भगवती लाल रुपए तुड़ा रहा था।

अचानक मैंने देखा, कमर की रस्सी में लोहे का टुकड़ा बांधे वह छोकरा कंटीले तारों में से हाथ बढ़ाकर कुछ मांग रहा था। चेहरे पर मुस्कराहट थी।

तुरंत ही भगवती लाल से लिए हुए खुदरा पैसे अमेरिकन सिपाही ने महतो गांव के लोगों की तरफ फेंके।

मैंने उस समय तक सप्लाई फार्म को ओ० के० करवा लिया था। गार्ड सीटी बजा चुका था।

गाड़ी छूटने लगी थी। मेरी नजर महतो लोगों की तरफ पड़ी।

वे लोग तब भी चुपचाप खड़े थे। ताक रहे थे। उसके बाद अचानक वे लाल मुर्रो पर बिखरे पैसों पर टूट पड़े। कमर में लोहे का टुकड़ा बांधे हुए वह लड़का और सुतली में जस्ते का ताबीज बांधे वह लड़का।

ठीक उसी क्षण जूता डाले महतो बूढ़ा चिल्ला उठा—खबरदार।

वह इतनी जोर से चिल्लाया था कि मैं भी चौंक उठा। पर बच्चों ने उसकी नहीं मानी। उस समय तक जिसे जो मिल सका, ले चुका था। इकन्नी दुअन्नी जो भी। उनके चेहरे पर मुस्कान मानो छिलका उतरे कच्चे भुट्टे की तरह थी। औरत मर्द सभी हंस रहे थे।

जूता डाले महतो बूढ़ा अपनी भाषा में अनर्गल कुछ बोलता गया। लोग-बाग हंसने लगे। महतो बूढ़ा गुस्से में गरजता हुआ गांव की तरफ चला गया। महतो गांव के बाकी लोग भी बातें करते हुए हंसते हुए चले गए।

उनके जाने के बाद अंडा हालट में फिर वही एकान्त, वह निर्जनता। कभी कभी मेरा मन बड़ा ही उदास हो जाता। दूर दूर पर पहाड़ थे, महुए का वन था, कत्थई के झाड़ थे और उन सब के आगे एक छोटा सा झरना था उस झरने से फिर झिर-झिर पानी झरता था। उसके आगे महतो की हरी भरी खेती। आंखें तृप्त हो जातीं। उसी में लंगोट डाले काले काले आदमी।

इधर में अक्सर ही अमेरिकन सिपाहियों की गाड़ी आकर रुकने लगी। अंडा, डबल रोटी और कोफी पी कर वे चले जाते। महतो गांव के आदमी भीड़ इकट्ठी कर देते। कंटीले तार के उस पार कतार से खड़े होते और कहते—साब बख्शीश।

एक ही साथ कई एक देहाती चिल्ला उठते। मेजर के पास फार्म ओ० के० कराते समय मैने चौंककर ताका। देखा, सिर्फ वे दो लड़के ही नहीं, कुछ जवान मर्दों ने भी हाथ फैला रखे थे। तंग कपड़ों में एक जवान छोकरी भी थी। एक दिन सब्जी खरीदने गया था। उस लड़की ने हंस हंस कर पूछा था—टिरेन कब आएगा? कभी कभी तो बिना वजह ही वे लोग झुंड के झुंड आकर खड़े रहते, फिर बाट देख-देखकर चले जाते।

तीन चार अमेरिकन तब तक अपने पिछले पाकिट से मुट्ठी भर दुअन्नी चवन्नी उनकी तरफ फेंकने लगे। गाड़ी छूटने तक सब्र नहीं रहा। वे लोग पैसों पर गिर पड़े, कंटीले तारों से किसी के हाथ पैर छिल गए। कितनों के लंगोट चिर गए।

गाड़ी के चले जाने के बाद मैंने अच्छी तरह से उन्हें गौर किया। मुझे लगा महतो गांव के आधी जनसंख्या यहां इकट्ठी हो गयी होगी। सभी के चेहरे पर खुशी की मुस्कराहट थी क्योंकि सभी को कुछ न कुछ मिला ही था। पर बहुत ढूंढ़ने पर भी वह जूते डाले हुए महतो बूढ़ा कहीं दिखायी नहीं पड़ा। महतो बूढ़ा नहीं आया था। उस दिन उसकी आपत्ति, उसकी डांट सुनकर भी बच्चों ने पैसे फेंके नहीं थे, ले ही लिए थे। शायद इसीलिए बूढ़ा गुस्सा खाकर नहीं आया होगा।

मुझे यह सोचने में अच्छा लगा कि अभी वह बूढ़ा अकेला ही खड़ा खड़ा मिट्टी में फावड़ा चला रहा होगा।

भगवती लाल को लेकर हम पांचों के दिन अंडा हाल्ट के तंबू में किसी तरह गुजर रहे थे। बीच बीच में सिपाहियों से लदी हुई गाड़ी आती, रुकती, चली जाती। महतो गांव के लोग कंटीले तार के पीछे भीड़ करते तथा हाथ फैलाकर चिल्लाते—साहब बख्शीश।

अचानक एक दिन मैंने महतो बूढ़े को देखा, इसी तरह से किसी दिन खेत का काम छोड़ कर दोनों हाथों से धूल झाड़ता हुआ तेज कदमों से बूढ़ा आता, गुस्से से सब को डांटता डपटता। उसकी बात कोई सुनता नहीं था। इसलिए असहाय प्रतिवाद की दृष्टि से अपने ही गांव के आदमियों की तरफ वह ताकता रहता।

पर उसकी तरफ कोई मुड़कर भी नहीं देखता था। सिपाही लोग अपने पिछले पाकिट में हाथ डालकर मुट्ठी भर भर कर पैसा निकाल कर हा हा हंसते हुए पैसों को फेंकते और महतो गांव के लोग गिरते पड़ते उन पैसों को बटोरते। अपनों में ही छीना झपटी और लड़ाई मचाते और यह सब देखकर सैनिक लोग ठहाका मार कर हंसते।

अंत में लगातार मैंने गौर किया तो पाया कि जूता डाल कर महतो बूढ़ा अब आता नहीं था। बाकी लोगों पर महतो बूढ़े को नाराज होते देख, और महतो बूढ़े को यहां न आते देख मेरे मन में एक प्रकार का गर्व होता था क्योंकि गांव वालों के इस तरह के कारनामों पर मुझे और भगवती लाल दोनों को ही बुरा लगता था। मन ही मन हमें शर्म भी आती थी। उनके काले भद्दे चेहरे, दीन दरिद्र हालात को देखकर ये सिपाही जरूर उन्हें भिखारी समझते होंगे। और वे ऐसा सोचते होंगे, सोचकर मेरा मन भी उदास हो जाता था।

उस दिन कंटीले तार के उस पार से जब वे लोग 'बख्शीश बख्शीश' कहकर

चिल्ला रहे थे, मैं खाकी बुशशर्ट वाले गार्ड जानकी नाथ से बात क रहा था, हमारे बगल से एक अफसर जूता चरमराकर जाते हुए उनकी आवाज सुनत ह। थूक फेंकने की तरह आवाज निकाल कर बोल पड़ा—ब्लडी बेगर्स ।

मैं और जानकी नाथ एक दूसरे का मुंह ताकने लगे। अपमान से हम लोगों का चेहरा क.ला पड़ गया। मैं सर उठा कर देख नहीं सका। असहाय गुस्से से अंदर ही अंदर जल गया ।

ब्लडी बेगर्स, ब्लडी बेगर्स ।

मेरा सारा गुस्सा महतो पर जा पड़ा। गाड़ी छूटते ही मैंने भगवती लाल को साथ लेकर पीछे से धावा बोल दिया। वे बटोरे हुए पैसे कमर में बांध कर हंसते हुए भाग गए।

फिर भी उनकी सारी बेशर्मी को मैंने एक अहंकार के बीच छुपा रखा था। पहाड़ के समान ऊंचा वह मेरा अहंकार मेरी आंखों के आगे महतो बूढ़े का चेहरा लिए खड़ा रहता था, पर उस दिन मेरे मन की सारी जलन ठंडी पड़ गयी। मुरकुंडा में ठेकेदार से भेंट करने गया था, वहीं खबर मिली थी ।

दो कुली उस समय टेबुल लगाने का काम कर रहे थे। दो ड्रमों को पैर से धकेलते हुए अंडा हाल्ट के कंटीले तार के उस पार सरका रहे थे। तंबू की रस्सी कोई और खोल रहा था। भगवती लाल ड्रम पर एक लात जमाकर बोला – खेल खतम, खेल खतम ।

अचानक हो हल्ला सुनकर मैं चौक कर मुड़ा तो देखता हूं कि महतो गांव के लोग दोड़ते हुए आ रहे है ।

हम हैरान होकर उन्हें देख रहे थे। न मालूम क्यों भगवती लाल हंस पड़ा । तब तक कंटीले तार के उस पार भीड़ इकट्ठी हो चुकी थी ।

तुरंत गाड़ी की सीटी भी सुनायी पड़ी ।

मुड़ कर देखा तो गाड़ी अंडा हाल्ट की तरफ ही आ रही थी। खिड़कियों में से खाकी पोषाक दीख रही थी।

हम लोग अकचका गए। हैरान भी हुए। नुरकुंडा के दफ्तर वाले खबर भेजना ही भूल गए या जो खबर हम सुन आए थे, वही गलत थी ।

गाड़ी जितनी नजदीक आ रही थी, उतनी ही विचित्र सी गमगमाहट की आवाज आ रही थी। पर यह आवाज नहीं, गाना था। गाड़ी नजदीक आने पर समझ में आया की गाड़ी में बैठे सिपाही एक दूसरे के साथ गले से गला मिलाकर गा रहे थे। मैंने हक्का बक्का होकर गाड़ी को देखा। एक बार कंटीले तार के पार उस भीड़ की तरफ भी देखा। और उसी क्षण मेरी नजर महतो बूढ़े पर पड़ी। सारी भीड़ के साथ एक होकर महतो बूढ़ा भी हाथ फैलाकर कह रहा

था---'साहब बख्शीश।'

पागल की तरह, भिखारी की तरह वे चिल्ला रहे थे, वे लोग और महतो बूढ़ा। सभी।

पर अमेरिकन सिपाहियों की वह गाड़ी और दिनों की तरह इस बार अंडा हाल्ट में आकर रुकी नहीं। पैसेंजर गाड़ी की तरह अंडा हाल्ट की उपेक्षा कर हवा के झोंके की तरह निकल गयी। हम जानते थे कि गाड़ी अब कभी यहां नहीं रुकेगी।

गाड़ी चली गयी। पर महतो गांव के सभी लोग भिखारी बन गए। खेत में काम करने वाले खेतिहर लोग—सब के सब भिखारी बन गए।

ताश के महल की तरह

सैयद मुस्तफा सिराज

दीपक मित्र,

जितनी दूर मैं दौड़ा आया, सड़क की दोनों ओर एक भी दरवाजा खुला नहीं देखा। एक खिड़की तक नहीं। कहीं कोई आदमी भी दिखायी नहीं पड़ा। चारों तरफ घना अंधकार था, मानो शहर में एकाएक ब्लैक आउट हो गया हो। सड़क भीगी हुई थी। इतनी निस्तब्धता भी बड़ी अजीब सी बात थी। हालांकि रात के दस बज चुके थे और तुरंत-तुरंत ऐसा भयंकर कुछ घटा था जो यदि इस सारे शहर को मूक बना कर रख देता तो कोई बड़ी बात नहीं होती। आदमी का खून धीरे-धीरे ठंडा पड़ रहा था और राम, श्याम, बदुबाबू हाथ में थैला लटका-कर आलू परवल का भाव कर रहे थे—जूते के नीचे ताजा खून था। और खून की कोई भाषा नहीं होती।

पीछे दूर से काफी दूर से पैर की आहट पाकर मैं और भी जोर में दौड़ता रहा। मैं जानता था कि मैं चिल्ला-चिल्लाकर अपना सर भी फोड़ डालूं तो भी कोई दरवाजा नहीं खुलेगा या खिड़की से झांक कर कोई यह भी नहीं देखना चाहेगा कि मामला क्या है। बुरे समय में लोग कछुए की तरह अपने को अपनी खोली में छुपा लेते हैं और जीव-विज्ञान में मैंने पढ़ा है कि कछुए के पास आवाज नहीं होती।

शहर के इस हिस्से से मैं बिलकुल अनजान था। दौड़ते-दौड़ते एक मजे की बात का पता लगा। आजकल गर्व के साथ कहा जाता है कि स्थल, जल, अन्तरिक्ष अर्थात् दुनिया में कहीं कोई ऐसी जगह नहीं जहां आदमी की पहुंच न हो। पर आश्चर्य की बात कि अगर दुनिया की बात छोड़ भी दें तो भी इस शहर में ही ऐसी बहुत सी जगहें हैं जहां मैंने कदम तक नहीं रखा था। आदमी को लेकर अहंकार की क्या बात है। मैं सत्ताईस साल का उत्साह से भरा युवक दीपक मित्र हूं। अभी तक बहुत सी जगहों पर मैं नहीं जा पाया, न कुछ देख

ही सका। कितना कुछ मेरा अनदेखा रह जाएगा—और मेरा यह दुर्धर्ष उत्तेजनापूर्ण जीवन, जो विपत्तियों में घिरा हुआ है, किसी भी क्षण पानी के बुलबुले की तरह मिट जाएगा। इसके लिए इस्पात का एक टुकड़ा ही बहुत है। और इसके साथ ही, हाय, मेरे व्यर्थ का सत्ताईस साल का जीवन। धरती और जीवन की बहुत सी बातों को जानने के पहले ही मुझे जला दिया जाएगा या पानी में फेंक दिया जाएगा। मेरा शरीर कुत्ते, कौए, गिद्ध की खुराक बन जाएगा। हाय, फलों के फांक के समान स्वादिष्ट मेरा शरीर, मेरा यौवन, मेरा मन।...

इसी लिए तो मैं दौड़ रहा था। मेरा सारा शरीर, यौवन और मन अपनी-अपनी भाषा में चिल्ला कर कह रहे थे—भागो, भाग कर जीओ।

मुझे लग रहा था, उन लोगों ने अब भी मुझे पकड़ने की उम्मीद नहीं छोड़ी थी। मुझे खत्म किए बिना उन्हें चैन नहीं। वे लगातार मेरा पीछा कर रहे थे और इस विपत्ति की राय में शहर भी आश्चर्य की तरह बदला हुआ था। सभ्यता का सजा संवरा बगीचा प्रागैतिहासिक घने जंगल के समान बन गया था। सभी ऊंची इमारतें अपनी-अपनी खिड़कियां खोल कर, विशाल पेड़ों जैसी खड़ी थीं और सभी, राम, श्याम और यदु बाबू घुटनों के बल चलकर अंधेरे में ही उस आदिम स्वर्गीय पेड़ की जड़ों को खोज रहे थे जिसका फल खाकर मनुष्य जाति को इतनी दुर्गति उठानी पड़ी थी। उनके हाथों में आज उस पैकेट में लिपटी हुई तीन छोटी-छोटी कसारियां थीं—हर एक का विज्ञापित दाम—पांच पैसे।

अब सामने एक तिरास्ता पड़ा। दाहिने या बाएं किधर जाऊं . . . दो चार क्षण इधर-उधर देखकर मैं रुका—बुरी तरह से गोलियां चलायी जा रही थीं। अजीब बात थी। मैं गोलियां चलने के समय जुगनू जैसी रोशनी देखने के लिए बार-बार इधर-उधर गर्दन घुमा कर देख रहा था। विपत्ति के समय भी हमारा निर्बोध बचपन जागरूक रहता है।

दूसरे ही क्षण छलांग लगाकर मैं बायीं तरफ चला गया। उधर कुछ ऊंचाई पर थोड़ी रोशनी दिखायी पड़ी। कोई दुस्साहसी चेहरा कैद गौरिल्ले की तरह खिड़की खोलकर उसकी सींक में नाक रगड़ रहा था। घर सुनसान सा था। गेट पर घने बेल की छावनी थी। उसके फूलों की सुगंध मेरी इच्छा के विरुद्ध मेरे दिमाग में घुस रही थी। छाती भर ऊंचे फाटक को पार कर जब मैं अंदर पहुंचा तो मुझे सुरक्षा का आभास हुआ। उसके बाद एकाएक लगा, अक्सर ऐसे मकानों मे कुत्ता रहता है। बाहर लिखा रहता है कुत्ता है, सावधान। पर अंदर आने के बाद भी जब कोई गुर्राना सुनायी नहीं दिया तब आशंका मिटी कि इस मकान में कोई कुत्ता नहीं है। और अगर है भी तो वह किसी कमरे

में बंद है।

मैंने थोड़ी देर तक सांस ली—आराम किया। बाहर अब और किसी तरह की आवाज नहीं थी। शायद वे लोग किसी दूसरी गली में मेरी खोज में दौड़ रहे थे। फिलहाल मैं थोड़ी देर के लिए निश्चिंत था। ऊपर की खुली खिड़की की अस्पष्ट रोशनी में मैंने अंदर झांका। सामने छोटा सा लान था—दोनों तरफ कुछ पेड़पौधे—फूलों का बगीचा। घने अंधकार और विपत्तियों से भरे इलाके में उस समय भी फूल खिलने का दुस्साहस कर रहे थे। इसे देखकर गुस्से से मेरा दिमाग खराब हो गया। यह ठीक नहीं था। वह कुछ भी ठीक नहीं था। इच्छा हुई, शहर के सभी फूलों के पौधों को थप्पड़ लगाकर कहूं, चुप करो। चिड़ियों को धमकाकर कहूं—खबरदार। आगे मत बढ़ो। प्रेमी प्रेमिकाओं को धमकाऊं। पति-पत्नी को साथ सोने के लिए मना कर दूं। कारीगरों को कहूं—तुम सब खतम हो जाओ। इंजीनियरो, हाथ उठा लो। वैज्ञानिको अब विश्राम करो।

उसी समय कहीं दूर पर छम्-छम् की आवाज आई। सारा घर मानो कांप उठा। गाड़ी की घर्-घर् आवाज सुनायी पड़ी। तीखी उज्ज्वल रोशनी की झलक फिर अंधकार में मिट गयी। जरूर पुलिस की गाड़ी होगी यानि अब तक पुलिस भी आ गयी है।

एक छलांग लगाकर मैं सामने से हट आया। सामने चौड़ी सीढ़ी थी। फाटक के सामने बड़ा सा दरवाजा खुला था। इसका मतलब था कि यह एक फ्लैटों वाला मकान है। लावारिस सम्पत्ति की तरह। सीढ़ी के आगे का दरवाजा बंद करते वक्त रामबाबू सोचते हैं, श्याम बाबू दरवाजा बंद कर देंगे, श्याम बाबू सोचते हैं यदु बाबू करेंगे और अगर दरबान है भी तो वह नशे में धुत, सीढ़ी से लगी छोटी सी कोठरी में चुपचाप खटिया पर बैठा होगा। मैं चुपचाप कई सीढ़ियां ऊपर चढ़ गया। देखा दो मंजिले की सीढ़ी के ऊपर एक बत्ती जल रही थी। बत्ती गंदी हो चुकी थी। जाले पड़े हुए थे। पहली नजर में फूलपत्तियों से जड़े गेट को देख कर सोचा था, मकान बड़ा ही साफ सुथरा है -पर धीरे-धीरे मकान का बुढ़ापा, उसकी जीर्णता और अवहेलना की छाप नजर में पड़ने लगी। जितना ऊपर चढ़ रहा था, उतना ही लग रहा था कि अजीब सी घुटन भरी परती जगह में घुस आया हूं। दुमंजिले के चारों दरवाजों पर ताला लटक रहा था। सब के सब झुंड बांध कर आखिर कहां गए थे? तीन मंजिले के तीन तरफ तीन दरवाजे थे। यहां की बत्ती भी उतनी ही गंदी थी। तीन में से दो दरवाजों पर ताले लटक रहे थे। एक खुला था -यानि इसी कमरे की खिड़की पर मैं ने उस गोरिल्ले को देखा था। वह अकेला था या सपरिवार? ताज्जुब की बात है कि किसी भी दरवाजे पर कोई

नेम प्लेट नहीं था। कोई कौलिंग बेल नहीं थी। दीवार पर लाल और काली स्याही से असंख्य बातें लिखी गई थीं—जो बातें मेरी तरह बहुतों को कंठस्थ हैं। मेरा शरीर सिहर उठा। शायद यह जगह मेरे लिए सुरक्षित नहीं थी। हो न हो, जानबूझ कर उन लोगों ने चाल चल कर ही मुझे यहां फंसा लिया था।

मैं लापरवाह बन गया था। उपाय भी क्या था? मैंने पाकिट में हाथ डाल कर .38 कैलिबर के रिवाल्वर को मुठ्ठी में कसकर पकड़ा। एक ही गोली बची थी। खैर यही बहुत थी कम से कम कुछेक घंटे तक तो मुझे हर विपत्ति से बच कर जीना ही था—बाद के बहुत से घंटों, दिन, महीनों और सालों तक जीने के लिए। और वो मेरे लिए बहुत जरूरी था। हाय मेरे व्यर्थ का सत्ताईस साल का जीवन। वह विमुग्ध बिल्ली के बच्चे की तरह मेरे अंदर चुपचाप ताक रहा था!

बहुत ही धीरे से मैंने कुंडा खटखटाया। दो बार। फिर आहिस्ते से दरवाजे को खटखटाया।

हिरन्मय दत्तराय,

. . . . क्या बात है? बत्ती फिर चली गयी? बरसात भर यह उपद्रव चलता रहेगा। मोमबत्ती खरीद-खरीद कर तो दिवालिया हो गया हूं। कारपोरेशन . . .

उसी समय बहू दौड़ी हुई आयी - सुन रहे हैं आप? आज रात फिर शुरू हो गया है।

मैं चौंक उठा। पूछा—क्या बात है बहू? क्या शुरू हो गया?

क्या रानू मुझ पर नाराज हुई? असल बात तो यह है कि मेरे कानों को उम्र ने घिस डाला है, बिलकुल आंखों की तरह—रानू को समझना चाहिए। हो सकता है जानती भी हो, फिर भी नाराज होती है। मैं जानता हूं दिन पर दिन रानू मुझसे नाराज होती जा रही है। मेरा अचानक चौंक उठना, खिड़की खोल कर नीचे की सड़क पर ध्यान लगाकर देखना, और 'किसने पुकारा' कहकर दरवाजे की तरफ लपक कर भागना, यह सारा ही कुछ उसकी नजर में बुरा लग रहा है, मुझे मालूम है। खासतौर पर बैठक वाले कमरे में सामने की तस्वीर रखना उसे कतई पसंद नहीं। सौमेन की हाल की तस्वीर बस यही एक है—काफी बड़े साइज का अकेला का फोटो है। इसके अलावा और जितने भी फोटो हैं, वह या तो बहुत पुरानी हैं या बहू के साथ की हैं। वे फोटो परिवार के ऐलबम में हैं। उस ऐलबम को कभी मैं अपने पास रखता हूं, कभी रानू को दे देता हूं, या कभी वह खुद ही मांग कर ले जाती है। पर उन फोटो में वर्तमान समय के सौमेन

को मैं ढूंढ नहीं पाता हूं। हाल में उसके कपोलों पर सलवटें पड़ जाती थीं। जबड़ा ऊंचा हो गया था। उसके चेहरे से चिकनाई मिट रही थी। आंखें भी अजीब सी हो गयी थीं। और उसके नए फोटो में यह सब कुछ उभर कर सामने आया था। सौमेन मेरा इकलौता लड़का। बड़ा ही प्यारा लड़का है हमारा यह सौमेन। ईश्वर से मैंने कहा था, उसके सारे कष्ट और दर्द मुझे दे दो। दुनिया की बहुत सी शत्रुशक्ति के साथ लड़ाई का अनुभव इस बूढ़े को है। भयंकर से भयंकर मसलों से मैं उलझ चुका हूं। भयंकर उत्ताप, रोशनी बिखेरती हुई बिध्वंसी आग, अनेकों आंधी तूफान, अप्रत्याशित दैत्यों का मुझे सामना करना पड़ा है। कितने ही बुरे समय मैंने काटे हैं। और सारा कुछ सहकर, या उन पर काबू पाकर आज भी टिका हुआ हूं। इसलिए कुछ भी तकलीफ, यंत्रणा, उत्ताप, व्याधि सहने में मुझे कोई खास कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा। पर सौमेन ! उसका तरुण जीवन था, नया प्राण था—उसकी आत्मा में कितनी कोमलता थी। दुनिया के लिए उसके मन में बड़ी आशा थी। जीवन को वह गंभीर स्वप्न की तरह आंकना चाह रहा था। मैं प्रार्थना करना, उसके कष्ट मुझे दे दो—उसका जो सुख है उसे उसके पास रहने दो, लेकिन...।

हां तो, मैं फोटो की बात कर रहा था। यह फोटो अचानक क्यों उसने खिचवाया, मुझे पहले पता नही था। बाद में मालूम हो गया। चले जाने के पहले सांत्वना के तौर पर अपनी एक ताजी यादगार वह छोड़ना चाहता था। अपने पिता और अपनी पत्नी को जानबूझ कर यह छोटा सा दान वह दे गया। मानो कह गया, इसे ही लेकर जीओ।

हां, मैं बहत्तर साल का बूढ़ा हूं। सिर्फ यादों का सहारा लेकर जी सकता हूं। इस उम्र में तो मेरी तरह सभी यादों के सहारे ही जीते हैं। पर बहू रानू ? वह तो इस तरह नही जी सकती। वह सौमेन का रक्त मांस चाहती है—वह उसके प्रत्यक्ष अस्तित्व पर विश्वास करती है। परोक्ष भाव से कुछ नहीं चाहती। रानू के कष्ट को मैं समझ सकता हूं। मैं जानता हूं वह कभी-कभी अक्षम क्रोध से छटपटा जाती है। अपने पति को अभिशाप देती है। सर पटक-पटक कर गालियां भी देती होगी। शायद उसको कायर भी समझती होगी। फिर भी रानू को मैं दोष नहीं दे सकता। सच में, सौमेन को कहीं ऐसा करना चाहिए था ? उसकी पत्नी तो उसकी अपनी पसंद की थी। मुझे तो कुछ मालूम ही नहीं था। जानने के बाद मुझे खुशी ही हुई थी। बहू को मैंने आदर के साथ अपनाया था।...और इसके बाद अगर रानू गुस्से में आकर किसी के साथ . . . ।

खैर, यह तो बड़ी ही असंभव सी बात है। इधर लड़कियों में रक्त मांस की इच्छा की तीव्रता को मैंने गौर किया है। क्या तो कहते हैं उसे—सैक्स !

जाने अनजाने वे उसका शिकार बन जाती हैं—आधुनिकता का अर्थ ही है खोली से बाहर निकल आना—सभ्यता उसे क्रमशः यही सिखा रही है कि आत्मिक मुक्ति नए नए नियम-कानून और यौन-स्वच्छंदता के साथ जुड़ी हुई है। कुछ भी हो, रानू बहू पर यह बात लागू नहीं होती। इसके अलावा उसके खानदान, उसकी शिक्षा-दीक्षा और व्यक्तित्व पर मुझे बहुत भरोसा है। पर उसके मन में किसी प्रतिक्रिया का होना भी तो स्वाभाविक सी बात है। मैं संस्कारग्रस्त पुरानापंथी गृहस्थ नहीं हूं कि ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का सर फोड़ने जाऊंगा। अगर सौमेन सच में ही मर गया है, तो रानू के पिता चाहे कुछ भी कहें, मैं उसकी शादी की पूरी चेष्टा करूंगा। हालांकि इस मसले पर राय तो रानू की ही चलेगी।

कैसी विचित्र बात है? क्या सोच रहा हूं मैं? मेरी छाती धड़कने लगी। पैर बिलकुल भारी हो गए। कंपकंपी सी छूटने लगी। सौमेन मेरा एकमात्र लड़का है। तो क्या मैं खुद ही अनजाने में उसकी मृत्यु की कामना करता हूं? नहीं! नहीं! वो जहां भी रहे, जीता रहे। चाहे जो मर्जी करे, मुझे कोई आपत्ति नहीं—सिर्फ वह जिन्दा रहे। अब तक न जाने अखबारों में कितने ही विज्ञापन दिए, फोटो छापे—न जाने कितनी ही बार कितनों की लाशों में सौमेन को ढूंढने की कोशिश में दूसरे की लाश को सौमेन की लाश समझने की भूल भी की। कुछ ही दिन पहले की बात है। नौ लाशों में से सौमेन को ढूंढ निकाला ही था कि दूसरे ही क्षण उस लाश का दूसरा हकदार आकर बोला कि वह लाश तो उसके मृगांक का है। बड़े झमेलों, छानबीन और तर्क के बाद मैं हार कर पीछे हट आया। हां, वह मृगांक ही होगा—सौमेन नहीं।

इसलिए लगता है कि वह पुलिस के डर से या किसी और कारण से छुपा हुआ है। बहुत जल्द वह अपने पिता और पत्नी से जरूर भेंट करने आएगा। आएगा अवश्य। क्योंकि उसके जैसे लड़के के लिए कैफियत देनी जरूरी है। हो सकता है चिट्ठी लिखने में कोई असुविधा हो या चिट्ठी में सारी बातें वह बता नहीं सकता हो, इसलिए सामने आकर तुरन्त चले जाने की कैफियत दे जाएगा। हो सकता है चुपके-चुपके आकर दरवाजा खटखटाए। उस समय हो सकता है इसी तरह से बिजली चली जाए, अंधेरी रात का आधा पहर बीत चुका हो। सड़क सुनसान हो, बरसात हो रही हो, हवा तेज चलती हो। ऐसे समय में वह गीले कपड़ों में चुपचाप तीन मंजिले पर चला आएगा। उसका ध्यान इस तरफ जाएगा कि इस मकान के सभी फ्लैटों पर ताले लगे हैं—सब के सब मुहल्ला छोड़ कर भाग गए हैं। यहां उसे अच्छी खासी निर्जनता मिल जाएगी...।

इसीलिए तो मैंने दरबान को कह रखा है कि सीढ़ी वाला दरवाजा दिन-रात खोल कर रखे। दरबान डरपोक तो है पर उसका दिल बड़ा है। उसका उदार

मन ही सीढ़ियों का दरवाजा दिन-रात खुला रखने के लिए उसे मजबूर करता है। सिर्फ उसका भीरु मन गेट का मुख्य दरवाजा बन्द करने का हुक्म देता है। और मैं एक खिड़की खोल कर ऊपर से नीचे सड़क पर ताकता रहता हूं। सारी सारी रात सड़क पर पलकें बिछाकर रखता हूं। मुझे नींद नहीं आती। अगर मैं सो गया और कहीं इसी बीच वो आया भी—तो मेरे सामने खड़ा होने में झिझकेगा, शर्माएगा। (बचपन में बिना कारण ही सौमेन मुझ से डरता था!) रानू दरवाजा खोल देगी—रानू के कमरे में वह चला जाएगा। और . . .

रानू कब चली गई? कुछ हंगामा हो रहा है—ऐसा कुछ कह तो रही थी। सच में ही तो। इलाके के मुख्य बिजली घर को जख्मी बता कर न मालूम कौन क्या कर रहा है? बार-बार बम और बन्दूक की आवाज आ रही है। किन लोगों के साथ किन लोगों की मारामारी होती है कौन जाने? मैं खबर भी नहीं रखता। खबर न रखना ही शायद मेरे लिए काल बन गया हो। अपने लड़के की खबर भी तो मैं नहीं रखता था, इसीलिए तो यह यंत्रणा सहनी पड़ रही है।

मुझे फिर खिड़की के पास जाना पड़ेगा। रानू ने आकर मुझे मेरी जगह से हटा दिया था। अरे वाह! बत्ती जल गयी। इस बीच अगर सौमेन सड़क पर आया होगा तो मेरी नजर से तो वह चूक गया होगा। अब तक वह चुपचाप सीढ़ी चढ़ रहा होगा—फिर धीरे-धीरे दरवाजा खटखटाएगा, दबी आवाज में रानू का नाम लेकर पुकारेगा। पुकारे। मुझे सब पता चल जाएगा।

रानू दत्त राय

उनके लिए एक भी रात की रिहाई नहीं। वह देखो, फिर से तांडव मच गया। हो सकता है आज रात भर यह सब चलता रहेगा। बार-बार नींद टूट जाती है। गुस्सा खा-खाकर मैं थक जाती हूं। थकावट के बाद कमजोरी लगने लगती है। रोना आता है पर आज रोने पर स्वयं को ही शर्म लगती है। आत्मधिक्कार और ग्लानि की बात है। अपनी लाचारी जब पकड़ में आती है तब आदमी ठंडा पड़ जाता है। मुझे भी ठंडा पड़ जाना चाहिए, पर कहां हो पा रही हूं। वे कौन लोग हैं, मैं ठीक-ठीक समझ नहीं पाती। सिर्फ एहसास होता है कि उन लोगों में भयंकर किसी जलन की आग है और वह आग अचानक किसी चरम अवस्था में किसी पर बरस जाती है और वह आग की लपेट में चला जाता है। मेरे पति को भी यही लपेट निगल गयी है। यही सोचकर मेरे मन में एक सांत्वना सी होती है और गुस्सा भी आता है। सांत्वना इस बात की कि मेरी तरह कितनी ही औरतों के पति, पिता और संतान इस तरह से मौत के शिकार बन गए हैं—और गुस्सा इस बात का है कि हम लोग कुछ नहीं कर पा

रहे हैं। कई महीनों पहले इतना बड़ा कारखाना बंद हो गया और मेरे पति की नौकरी चली गयी। मकान का किराया बाकी पड़ता गया। गृहस्थी चलनी मुश्किल हो गयी। भोगी स्वभाव के मेरे ससुर संयम में कभी निपुण नहीं रहे। उनके पेंशन के पैसों से गृहस्थी किसी तरह चल तो रही है, पर क्या इसे जीना कहते है ? मुझे कष्ट होता है। मन ही मन छटपटा जाती हूं। बाहर निकल कर कोई नौकरी-चाकरी जुगाड़ करने को दिल चाहता है पर ससुर जी सिर्फ पुराने विचारों के ही नहीं हैं, मन के भी संकीर्ण हैं। हो सकता है जबर्दस्त किस्म के डरपोक व्यक्ति भी हों। पति के लिए थोड़ी दौड़ धूप करने की इच्छा थी, शायद इस तरह उनका कुछ पता चल भी जाता—पर ससुर जी मुझे कहीं अकेले नहीं जाने देते। कभी-कभी लगता है यह एक तरह का कैदखाना है। मैं किसी पिंजड़े में फंस गयी हूं और वह स्वार्थी बुड्ढा मुझ को खाली संदूक बनाकर खुद यक्ष की तरह बैठा है।

नहीं। अब मुझसे सहा नहीं जाता। अब मैं जरूर भाग जाऊंगी। आखिर क्यों मैं यहां पड़ी रहूंगी ? इस सूनेपन और झूठी प्रतीक्षा...और.. और स्वादहीन ये दिन और रात...उफ ! इसके अलावा सब के सब किराएदार एक एक करके भाग गए। मुहल्ला बिलकुल खाली सा हो रहा है। पड़े हैं तो सिर्फ कुछ बूढ़े, बूढ़ियां और बच्चे कच्चे। रह रह कर बम फटने की आवाज, गोली चलने की धुंधली आवाज, या फिर कोई आर्तनाद। इनको छोड़ कर बाकी का समय विकट स्त-ब्धता लिए स्थिर सा खड़ा है। कभी-कभी झट से किसी के चलने की आवाज आती है। कहीं कोई आदमी नजर नहीं आता। इस सुनसान यक्ष पुरी में मेरे बाईस साल का यौवन खत्म हो रहा है। मैं यहां नहीं रहूंगी। भाग जाऊंगी।

पर जाऊंगी कहां ? पिताजी मां मन ही मन मुझसे नाराज हैं क्योंकि उनके चुने हुए लड़के को मैंने नापसंद कर दिया था, उनकी इच्छा के विरुद्ध छुपकर सौमेन से शादी कर ली। रजिस्ट्री होने के बाद दोनों पक्षों को सूचित कर दिया गया था। मेरे घर में कुछ दिनों तक भूकंप होता रहा और आग बरसती रही। मेरे पति के घर खास कुछ नहीं घटा। घटता यदि सास जिंदा होती। कारण, इन सब मामलों में औरतें ही औरतों की दुश्मन होती हैं। मेरी मां ही मेरी सबसे बड़ी दुश्मन है वह मुझे मालूम है। इसलिए उस घर में जाने का सवाल ही नहीं उठता। दुश्मन हंसेगा। तो फिर मैं कहां जाऊं ? मन ही मन मैं खोजती फिरती हूं, सोचती रहती हूं। सोचते सोचते दिन रात बीत जाते हैं। फिर भी मैं भागूंगी ही भागूंगी। ऊफ ! अन्दर ही अन्दर मैं सूखती जा रही हूं। कुछ दिन और वहां रहने पर मैं मर जाऊंगी। नहीं नहीं —मैं जीना चाहती हूं।

जाने के पहले बिना कुछ बताए ही वे चले गए। शाम को चाय पीने के बाद

एकाएक निकल गए। दिन भर गुमसुम थे। इन दिनों बात बात में वे नाराज हो जाते थे इसलिए मैं भी कुछ पूछती नहीं थी। बड़े बदमिजाज और गुस्सैल होते जा रहे थे। मैं सोचती थी, नौकरी चाकरी को लेकर परेशान होंगे। बात बिलकुल कम बोलते थे। चुपचाप घर से निकल जाते थे। लौटने का कोई ठीक नहीं रहता था। ससुर जी कभी कभी अधीर हो जाते थे। लौटने के बाद उन्हें कुछ बता देते। मुझे कुछ नहीं। उसकी जरूरत भी नहीं थी। मैं रात को उनका स्पर्श पाना चाहती। अभ्यास के कारण मेरा रक्त मांस चंचल हो उठता। वे धीरे से मुझे ठेल कर करवट बदलकर कहते—थोड़ा हटकर सोओ तो—बड़ी गरमी है।

मुझे रोना आता। तो क्या किसी कारण से मेरे ऊपर नाराज हैं। झूठा शक ? अविश्वास ? ऐसा ही कुछ। किसी ने कहीं उनके कान तो नहीं भर दिए। पर ईश्वर जानता है, मन से न भी हो तो—शरीर से मैं निष्पाप हूं। मैं चुपचाप रोती रहती।

आश्चर्य की बात है उन्हें पता लग जाता था। अचानक छाती से लपेट कर चूम कर कहते—नहीं रानू नहीं—तुम्हारे ऊपर मुझे कोई गुस्सा नहीं। किसी और पर भी गुस्सा नहीं। सारा गुस्सा और दुख मुझे अपने ही पर है। अपने को अब मैं नहीं ढो पा रहा हूं। तुम विश्वास करो—मैं जल रहा हूं रानू—बुरी तरह जल रहा हूं।

नारी की स्वाभाविक भूमिका में मैं कहती—अपने सारे कष्ट, सारी यंत्रणा मुझे दे दो।

—पगली कहीं की...कहकर वे चुप हो जाते। मुझे कसकर बांधे हुए, बाजू शिथिल हो जाते। फिर वे चित सोए पड़े रहते। मैं जानती थी कि वे अंधेरे में देख रहे हैं, कुछ सोच रहे हैं। मैं कहती—क्या हुआ है, मुझे नहीं बताओगे ? तुम्हारे पैर पड़ती हूं, मुझे बताओ।

वे कुछ नहीं कहते। कभी-कभी कहते—कोई खास बात नहीं।

मैं सोचती उनका सारा कष्ट सिर्फ रुपयों पैसों को लेकर है। शायद बेकार आदमी के मन में ऐसा ही होता हो। मैं कहती—ज्यादा मत सोचो। कुछ न कुछ काम मिल ही जाएगा। जिस दिन वे गए, उसकी पहली रात—नींद में ही कई बार वे एक ही बात दोहरा रहे थे। मैं तब तक सोयी नहीं थी। वो बात सुनते ही मैं चौंक गई थी। छाती का खून मानों उछल गया था। क्या कह रहे हैं ये ?....

ट्रेटर (विश्वासघाती) मैं ट्रेटर...ट्रेटर...उफ...मैं ट्रेटर...।

न जाने मैं क्या समझी और शायद कुछ भी नहीं समझी। पर जो रहस्य का काला पर्दा था, वह मेरी आंखों के सामने थोड़ा खुल गया था। हो सकता है यह

मेरी गलत धारणा रही हो, या सुनने में भूल हो सकती थी। फिर भी मेरा सारा खून ठंडा पड़ गया। मेरी जांघे भारी हो गयीं। सर बर्फ की तरह अकड़ गया। मैं बेसुध सी पड़ी रही।

ससुर जी को यह बात मैंने आज तक नहीं बतायी है। कहना उचित नही समझा। मैं जानती हूं क्या घटा है। शंख की चूड़ी और सिंदूर डाले सुहागन का यह रूप मेरा झूठा रूप है। दूसरे की गृहस्थी में मैं झूठी बहू दबकर पड़ी हुई हूं। वे अब कभी नही लौटेंगे।

फिर भी खून में प्रतीक्षा कर कांटा चुभता रहता है। घर की विशाल सीढ़ियो से जब हवा गुजरती है, अजीब सी आवाज उठती है।

लगता है किसी ने घंटी बजायी। मैं फड़फड़ा कर उठ बैठती हूं। दरवाजे की तरफ दौड़ी हुई जाती हूं। दरवाजा खोलते खोलते मन ही मन सोचती हूं कि देखते ही पहले क्या कहूंगी। फिर दरवाजा खोलती हूं। पीले रंग की रोशनी के धुंधलके में कुछ रेखाएं कांप कांप कर मिट गयीं। सूनेपन के कंपन से एक प्रतिच्छाया उठकर फिर मिट गयी। मेरे पीछे पीछे मेरे ससुर जी दौड़े हुए आए। अस्फुट आवाज में दबी सांस से पुछा— आया क्या ? सोमू आया ? सोमू है न ? कौन है ? बहू, ओ बहू। कुछ कहती क्यों नहीं ?

मैं क्या कहूं ? सिर्फ इतना ही बोली—हवा है।

फिर मैं चली आयी। पीछे की तरफ मुड़ते ही बैठक में रखी उस तस्वीर पर नजर पड़ी। गुस्से में, क्षोभ में, और दुख में उसे तोड़ देने की इच्छा हुई। जो नहीं है, उसके निश्चल प्रतिबिम्ब की ओर देखकर कहने को जी चाहता है—ट्रेटर। विश्वासघाती।

दीपक मित्र

जिसने दरवाजा खोला उसे मैं नहीं जानता। पर उसके बगल से जो कमरा दिखाई पड़ा, उस कमरे की ऊंची टेबल पर रखी उस तस्वीर को मैं पहचान गया। उसे मैं अच्छी तरह जानता हूं। क्षण में मेरे सिर में एक आग सी जल उठी। कान से गरम गैस निकल गयी। आंखें फूल उठीं। सौमेन। यह घर सौमेन का था। और मुझे इसी घर में आना था।

मेरा चौंकना इस महिला ने गौर किया या नहीं, मुझे नहीं मालूम, पर मुझे देख कर वह खुद भी चौंक उठी थी। कांपती हुई आवाज में एक कदम पीछे सरक कर बोली—किसे चाहिए ? मैंने अपने को संभाल लिया। ठंडी आवाज में बोला—आज रात मैं यहीं ठहरूंगा। चिल्लाइए नहीं। इससे कोई फायदा नहीं होगा। मैं आप लोगों का कोई नुकसान नहीं करूंगा। सिर्फ आज की यह रात...।

ताज्जुब की बात है, महिला पीछे हट गयी। मैंने अंदर घुसकर झट पट दरवाजा बंद कर दिया। और थोड़ा आगे बढ़कर धम् से बैठ गया। फिर बोला—एक ग्लास पानी चाहिए। सिर्फ पानी। इतनी रात गए खाना मांगकर परेशान नहीं करना चाहता। कोई चटाई हो तो दे दीजिए। यहीं पर सो जाऊंगा।

उसने कुछ कहा नहीं। क्या यह सौमेन की पत्नी थी ? अगर थी तो अब भी क्यों सुहागन बनी हुई थी ? तो क्या अभी तक इन लोगों को उस बात की खबर ही नहीं थी।

मैंने अब तक पाकिट में हाथ डाल कर ही रखा था—ताकि किसी तरह का झंझट हो तो उसे निकाल कर डरा-धमका दूं। पर शायद अब उसकी जरूरत नहीं। पाकिट से मैंने हाथ निकाल लिया। कमरे के अंदर का हिस्सा मैंने ध्यान से देखा। दोनों तरफ दो कमरे थे। दरवाजे पर मैला फटा पर्दा लटक रहा था। सामान के नाम पर कुछ नहीं था। एक रैक पर कुछ किताबें थीं। एक टेबल दो कुर्सियां पड़ी थीं। दीवार पर कैलेंडर लटक रहा था और स्टूल पर सौमेन की वह तस्वीर रखी हुई थी। तस्वीर की तरफ देखने में मुझे डर लग रहा था। लग रहा था, सौमेन कर रहा है—तेरे चेहरे से किसी खूनी का चेहरा तो नहीं मिलता। मैं तुझसे नहीं डरता दीपू।...

वह पानी बड़ी जल्दी ले आयी। मैंने उसकी तरफ देखे बिना ही एक सांस में पानी पी गया। फिर ग्लास जब नीचे रखने ही जा रहा था कि वह हाथ बढ़ाकर गलास लेने लगी। मैंने कहा—सुनिए।

वह चुपचाप मुड़ कर खड़ी हो गयी।

– घर में और कौन कौन हैं ?

—मैं और पिताजी।

—यह तस्वीर जिसकी है वह कहां है ?

—मालूम नहीं।

—आप कौन हैं ?

—घर की बहू।

—तो यह तस्वीर आपके पति की है ?

—हां।

थोड़ी देर तक मैं चुप रहा।

सौमेन की पत्नी बोली—और कुछ जानना चाहते हैं ?

—हां। जिसे आपने पिताजी कहा, वे अवश्य ही आपके ससुर होंगे ?

—हां।

—आपके पति नहीं हैं, क्यों ?

—मालूम नहीं ।...अपको बिस्तर लाकर देती हूं ।

सौमेन की पत्नी चली जा रही थी कि ठीक उसी समय दूसरे कमरे का पर्दा उठाकर अचानक वो बूढ़ा गोरिल्ला आ गया और बोला—कौन, कौन आया है ? सोमू ?...कौन—कौन हो तुम ? आप कौन हैं ? कुछ कह क्यों नहीं रहे हैं ? बहू, यह कौन है ?

सौमेन की पत्नी बोली—चुप भी रहिए पिताजी । ये आपके लड़के के दोस्त हैं—उनकी खबर लाए हैं ।

मैं चौंक उठा । मेरी छाती धड़कने लगी । क्या वह जान बूझ कर ऐसा कह रही थी—या फिर निर्बोध बूढ़े ससुर को परेशान नहीं करना चाहती थी ? मैंने उसकी तरफ नजर उठायी तो देखा उसकी दृष्टि निष्पलक थी । उसमें एक उज्ज्वलता थी, और ओठों पर दबी मुस्कान । क्यों ? मेरे रिवालवर ने शायद पाकिट के अंदर जंग पकड़ लिया था । उसका ट्रिगर खराब हो गया था । आखिरी गोली मानो भीग गयी हो ।

वह बूढ़ा मेरी तरफ झुककर दबी आवाज मे बोला—सोमू कैसा है बेटा ? कहां है वो ? क्या कर रहा है ? बराबर का बच्चा ही रह गया । इतना डरने का क्या था ? मैं पुलिस के बड़े अधिकारी के पास जाता, मैं खुद रिटायर्ड सरकारी अफसर हूं—।

मैंने उन्हें रोककर कहा—उसे पुलिस से कोई डर नहीं था । आपका लड़का ट्रेटर था—विश्वासघात करने के कारण ही....।

—खबरदार । बूढ़ा गरज उठा ।

मै हंस पड़ा । बोला—आप अपनी बहू से पूछिए ।

सौमेन की पत्नी मुझे हैरान होकर देखने लगी । बोली—हां, पिताजी, ये ठीक ही कह रहे हैं ।

—असम्भव है ।....यह आदमी झूठा है ।...बूढ़े ने चिल्लाना शुरू कर दिया—झूठा कहीं का, बदमाश । मैं किसी का विश्वास नहीं करता । सब के सब ट्रेटर हैं । सभी विश्वासघाती हैं ।

सौमेन की पत्नी थोड़ा आगे बढ़ कर बोली—क्या कर रहे हैं पिताजी, चुप कीजिए ।

बूढ़े ने उंगली उठाकर दरवाजा दिखाकर कहा—अभी यहां से निकल जाइए । किसने कहा था झूठी खबर लाने के लिए ? चले जाइए यहां से, मैं कह रहा हूं । मेरा सोमू विश्वासघाती है ?...अब मैं पाकिट से रिवालवर निकाल कर उठ खड़ा हुआ । बोला—ज्यादा चिल्लाइए नहीं । जाइए अपने कमरे में चले जाइए । आज रात मैं यहीं ठहरूंगा । ज्यादा तंग करेंगे तो जान गंवानी पड़ेगी, कहे देता हूं ।...

देखिए, आप अपने ससुर को उनके कमरे में ले जाइए। मेरा दिमाग आपे में नहीं है।

दो चार क्षण मेरे हाथ में धरे औजर को देखकर बूढ़े ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढंक लिया। रो पड़ा। फिर बैठ गया। लटपटी आवाज में बोला—मारो, मुझे मार ही डालो। सोमू को क्या हुआ है, अब मैं समझ सकता हूं। मुझे जीने से कोई लाभ नहीं।

सौमेन की पत्नी अपने ससुर को संभाल रही थी। अब वह बड़े अजीब ढंग से मुस्कराई।—क्या हुआ ? नहीं मार सकेंगे ? गोली नहीं है और ? या यह कोई खिलौना मात्र है ? असली बात मैं समझ गयी हूं। आप अपनी खोली से निकाल नहीं पा रहे हैं। धक्के खा-खाकर बहुत थक चुके हैं, है न ?

गुस्से में मेरा दिमाग ठीक नहीं था। कहा—सौमेन की तरह लड़के को जिसने जन्म दिया है, मुझे अधिक घृणा तो उससे है। पर आज मैं थका हुआ हूं। सिर्फ थोड़ा सा आश्रय और जरा सी नींद के बदले मैं आज सब कुछ दे सकता हूं।

बहू बूढ़े को खींच कर उसके कमरे में ले गयी। फिर अपने कमरे में लौट आयी। वहां से बिस्तर लाकर, जमीन पर अच्छी तरह से बिछा कर बोली—सो जाइए। मुझे बड़ी नींद आ रही है आज। और...।

बिस्तर में लेटकर मैंने कहा—रुक क्यों गई ? और क्या ?

—आपको धन्यवाद।....कहकर द्रुत गति से सौमेन की पत्नी अपने कमरे में चली गयी। मुझे नींद नहीं आई। नहीं ही आई। सौमेन की वह तस्वीर मेरी आंखों के आगे थी। ताल के किनारे उसकी श्वास नली को मैंने ही काट दिया था। उसकी लाश को जला डाला था।

उस कमरे से हल्की सी जो आवाज उठ रही थी, उससे मैं अंदाजा लगा सकता था कि उस कमरे में क्या हो रहा है। जो थोड़ा सा काम बाकी रह गया था, वह चुपचाप सम्पन्न किया जा रहा था। सौमेन की पत्नी सुहाग के शंख की चूड़ियां तोड़ रही थी। सिंदूर मिटा रही थी। बक्से से सौमेन की सफेद धोती निकाल कर बांध रही थी। सिसक सिसक कर रो भी रही थी। उसका रोना बढ़ रहा था।

अगरबती के धुएं की तरह, कुहासे की तरह, उसका विलाप धीरे धीरे दरवाजे के दरार से होकर चारों ओर वातावरण में फैल रहा था।

न जाने कितनी देर अपने कानों को दबा कर मैं पड़ा रहा। फिर भी मुझे लगा—इस शोकाकुल दुनिया से मैं किसी भी तरह भाग नहीं पा रहा हूं। और वह विशालकाय अजगर—विलाप का यह सांप मुझे अपनी लपेट में कस कर जकड़ कर मेरा दम घोंट रहा है। मुझे थोड़ी हवा चाहिए थी, जरा सी हवा।

उसके बाद सुबह होने के पहले मुझे थोड़ी नींद सी आयी। मैंने सपना देखा कि

हजारों की तादाद में सौमेन की तस्वीरें मेरे चारों तरफ गिर रही हैं लगा ये तस्वीरें मानो सारी दुनिया को ढंक लेंगी। जमीन में बिखरे ताश के पत्तों की भांति विशृंखल सौमेनों के बीच मैं अपना रास्ता ढूंढ नहीं पा रहा था...।

ढलती शाम के दो चेहरे

मति नन्दी

हावड़ा स्टेशन की विशाल टीन की छावनी के नीचे खड़ी खड़ी दोनों बहनें चारों तरफ नजरें दौड़ा रही थीं। वे हर आदमी को पैनी नजरों से देख रही थीं—पर उस तरह से उन लोगों की तरफ कोई नहीं देख रहा था। सभी व्यस्त थे। सभी को कोई न कोई काम था। वैसे काम उन दोनों के पास भी था।

वे दोनो स्टेशन की विशाल छावनी के नीचे आवाज की गमगमाहट और व्यस्तता के बीच खड़ी खड़ी हैरान हुई जा रही थीं। सारे स्टेशन में एक आवाज गूंज रही थी। दोनों बहनें एक दूसरे की तरफ देखने लगीं। अचानक उनकी बातें बंद हो गयीं। छोटी बहन ने उंगली के इशारे से बताया—'वो देखो'। दोनों की नजरें डेकची की तरह विशाल लाउडस्पीकर पर पड़ीं। छोटी बहन गला साफ करती हुई बोली, 'क्या करें ?'

बड़ी बहन ने उस ओर देखने का बहाना बनाकर एक बार देख लिया। दीवार पर टेक लगाए उनका भैया अपने बालों में उंगलियां फेर रहा था। अब फूंक-फूंक कर हाथों से बालों को झाड़ फेंकेगा।

बड़ी बहन बोली—चलो उस तरफ चल।

भरी भीड़ को चीरती हुई वे दोनों उत्तर की तरफ चलीं। छोटे से टिकट घर के सामने लोगों की लम्बी कतार थी। उसके पास ही जमीन पर फैलकर लोग सोए-बैठे थे, फिर उसी के बगल से लोग हांफते दौड़ते आ जा रहे थे। दोनों बहनें तीसरे दर्जे के विश्रामालय पर पहुंचीं। एक बेंच पर दोनों बहनें सटसट कर बैठ गयीं। खिड़की से बाहर का रास्ता दिख रहा था। बसें कतार से खड़ी थीं। कमरे के अंदर हल्की रोशनी थी। अजीब सीलन भरी बदबू थी। पानी का नल था। टिकट के लिए लड़कियों की कतार थी और प्रतीक्षा में बैठे दूर के यात्री।

—दीदी पानी पिऊंगी।

—पीकर आ।

छोटी बहन की तरफ बड़ी ने ध्यान दिया। झुक कर नल दबाकर पानी पी रही थी। बड़ी बहन को अजीब अजीब सा लग रहा था। छोटी बहन का फ्राक पसलियों के पास फटने सा हो रहा था। लोटा हाथ में लिए एक आदमी उसकी ओर देख रहा था।

—तूफान एक्सप्रेस आज लेट है।

बड़ी बहन ने आंखें फेरीं। देखा, उसके पास खड़ी महिला कह रही थी --क्या पता कितनी देर बैठना पड़ेगा।

—कोई आने वाला है क्या ?

वो हंसी। हंसती हुई पूरे कमरे में नजर दौड़ाकर बोली—चिट्ठी मिली कि कल पहुंचेंगे, पर कल आकर भी लौट गई। वे नहीं आए।

बड़ी बहन उठ खड़ी हुई, छोटी बहन कहीं नहीं दिख रही थी।

—आप कहीं जाएंगी क्या ? या किसी के लिए आयी हैं ?

— नहीं, हम लोग जाने के लिए आए हैं।

बड़ी बहन ने बात को आगे बढ़ाना नहीं चाहा। स्टेशन की विशाल छावनी के नीचे आदमियों और शब्दों के बीच आकर खड़ी हुई। खड़ी होकर छोटी बहन को ढूंढ़ने लगी। कदम कदम बढ़ाकर स्टेशन में बने कई गेटों में से एक पर जाकर वह खड़ी हो गयी। यहां से हावड़ा पुल दिख रहा था। पुल के उस पार कलकत्ता है। कलकत्ता की किसी गली में उन लोगों का मकान था। उस घर के एक तल्ले के एक कमरे में वह मां, भाई और छोटी बहन के साथ रहती थी। जाड़ों के दिनों में ठंड और गरमी के मौसम में गरमी उस कमरे को अपनी बाहों में जकड़ लेती थी। दक्षिण की हवा छत पर से होकर बह निकलती थी। सिर्फ हवा ही नहीं, बादल भी उड़ जाते। धूप चली जाती, शाम भी गुजर जाती।

नाक सिकोड़ कर उसने कोई महक लेनी चाही। अजीब सी कोई गंध थी। बाबूजी को श्मशान ले जाने के समय भैया एक शीशी सेंट खरीद लाया था। वैसी ही कोई महक। खाली शीशी को छोटी बहन ने कहीं संभाल कर रखा था। पर कहां गई छोटी बहन ?

'दिल्ली देखो', 'आगरा देखो' कहकर हैंडल घुमाता और कुतुब मीनार, ताज-महल, एक के बाद एक दिखाता वह आदमी एक ही सुर में चिल्ला रहा था। स्टेशन के खम्भे पर लटकी तस्वीरें देखते देखते छोटी बहन को वह आदमी याद आ गया। एक दिन छोटी बहन ने उस आदमी से पूछा था—तुमने कभी आगरा या दिल्ली देखा है ? उसकी बातों का जवाब दिए बिना ही वह बक्से के चोंगे में झांकता हुआ वह चोंगे से लगे बच्चों के सर को मक्खियों की तरह हटाने में जुट

गया था । छोटी बहन को वह आदमी याद आने लगा । उसके काफी दिनों के बाद मुहल्ले में एक नया बायसकोप आया था । वह आदमी अब क्यों नहीं आता था, यह बात कई बार छोटी बहन के मन में आयी थी । सोचने से ही कुतुब मीनार, ताजमहल, हवाई जहाज, जटायू की लड़ाई, उसकी आंखों के सामने से एक एक कर तस्वीरें साफ-साफ दिखायी देने लगी थी । विज्ञापन की तस्वीरें देखने के लिए एक बार वह एक बहू के करीब आ गयी थी । नजर मिलते ही पता चला, वह उसी को देख रही थी । तस्वीर में अंग्रेजी में कुछ लिखा था । बड़बड़ा कर वह पढ़ने लगी, साथ ही आड़े नजर बहू की तरफ भी देख लिया । उसके कपड़े से कोई मीठी सी सुगंध आ रही थी । धीरे से लंबी सांस ली उसने । चाकलेट पर जो चमकीला कागज लपेटा हुआ रहता है, उससे ऐसी ही सुगंध निकलती है ।

—नहीं, उतना अच्छी तो नहीं है...।

छोटी बहन ने गर्दन घुमा कर देखा—बहू तस्वीर को देख रही थी ।

—पिछले दशहरे की छुट्टी पर हम लोग वहां गए थे । बाप रे । आने जाने में बड़ी तकलीफ उठना पड़ती है । होटल भी बहुत महंगा पड़ता है ।

छोटी बहन की इच्छा हो रही थी कि इस मीठी सी सुगंध को वह चूसकर अपनी छाती में इकट्ठा संजो कर रख ले । बोली--सुन्दर नहीं हैं, आप क्या कह रही हैं । वहां ऐसा क्या...!

—बिलकुल अच्छा नहीं । वन जंगल की तस्वीर, वहां जाता ही कौन है । उससे तो कोनारक वाली तस्वीर ज्यादा अच्छी है । वहां देखने लायक भी कुछ है ।

—आप गई हैं क्या ?

—मेरे ननदोई गए थे ।

—अब कहां जा रही हैं ?

—रानीगंज ।

—किसके पास जा रही हैं ।

बहू हंस पड़ी । ठीक उसी तरह जिस तरह तस्वीर में कोई हंसता है । उसके बाद कुछ कहना चाही, पर बोले बिना ही हंसी । यह देखकर छोटी बहन भी हंसी ।

—अगले साल उनको जब छुट्टी मिलेगी, तब हम कश्मीर जाएंगे ।

—दीदी । ट्रेन सात नम्बर से खुलने वाली है । जल्दी करना ।

हाफ पैंट डाले, एक लड़के ने दौड़ते हुए आकर हाथ में सूटकेस उठा लिया । बेंत का टोकरा हाथ में लटकाकर बहू ने कहा—अच्छा चलती हूं ।

छोटी बहन थोड़ा थोड़ा कर आगे बढ़ती हुई कोलैप्सिबल गेट की रेलिंग पर हाथ रख कर सात नम्बर प्लेटफार्म पर खड़ी ट्रेन की तरफ देखने लगी।

इतनी आवाजें—फिर भी वह कुछ नहीं सुन रही थी। खंभों से चिपकी वह लोहे के समान बनकर खड़ी थी। सर पर लाल टोपी, खाकी पोषाक डाले वह आदमी इधर उधर ताकता हुआ उसकी ओर ही आ रहा था। बड़ी बहन को अब कुछ भी सुनायी नहीं दे रहा था। वह आदमी बगल से निकल गया। जाते समय एक बार उसे देखा। बड़ी बहन ने सोचा विश्रामालय में जाकर प्रतीक्षा करना ही ठीक रहेगा। हो सकता है, छोटी बहन अब तक वहां आकर बैठी हो।

बेंच भर चुकी थी। बड़ी बहन दीवार के सहारे टेक लगा कर खड़ी रही। वह महिला न जाने कहां से घूम फिर कर आयी। बैठने की जगह न मिलने पर उसी के पास आकर खड़ी रही,—नः अब तक भी नहीं आए।

—कौन आ रहा है ?

कुछ कहना चाहिए, यही सोचकर पूछा था। पूछ कर देखने लगी। और देखते देखते उसने देखा, उतनी बड़ी-बड़ी आंखें, जो उस चेहरे पर शोभती थीं, और भी खिल उठीं। ठोढ़ी के नीचे उम्र की सिकुड़न थिरक उठी।

—आएगा कौन ? कोई भी नहीं।

दूसरी आवाज में हूबहू वही बात थी। सर भन्ना गया। छोटी मौसी दो रुपए देकर बोली थी—बार बार आने पर मैं भी कैसे क्या कर सकती हूं। कमरे में उस समय मुहल्ले का कोई था। लौटते समय बड़ी बहन ने मौसी को कहते हुए सुना—होगा कौन ? कोई भी नहीं।

—तीस रुपए ज्यादा मिलेंगे, यही सोच कर डेढ़ सौ मील दूर नौकरी करने चला गया। क्या जरूरत थी, मालूम नहीं। स्कूल से जितना पाती हूं, उसमें अगर ये भी कुछ जुटा लेते तो सात आदमियों की गृहस्थी अच्छी तरह चल जाती। बड़ी बहन ने सर हिलाया।

—मेरी बात कभी कोई सुनता ही नहीं। पिछले आठ साल से देखती आ रही हूं। और शादी से पहले मेरे रुपए छुएंगे तक नहीं।

—वे कहां नौकरी करते हैं ?

—डी० वी० सी० में।

—मेरे भैया ने वहां कोशिश की थी, पर नौकरी मिली नहीं।

—क्या कह रही हैं आप ? उसने अपनी कोशिश से कितनों की नौकरी जुटा दी है। अच्छा, मैं पूछूंगी। आप हैं न अभी यहां या ट्रेन का समय हो गया है ?

—नहीं। नहीं। ट्रेन का समय नहीं हुआ है। मैं यहीं रहूंगी।

बड़ी बहन को अब कुछ भी सुनाई नहीं पड़ रहा था। सिर्फ अपने दिल की आवाज कानों में गूंज रही थी—मैं रहूंगी—मैं नहीं जाऊंगी।

—मैं एक बार और देखकर आती हूं।

महिला जा रही थी। वह भी धीरे से चल पड़ी। भरी भीड़ में महिला छिप गयी। बड़ी बहन पीछे सरक आयी और स्टेशन के फाटक पर आकर खड़ी हो गयी। शाम ढल रही थी। बस स्टैण्ड पर दफ्तर से लौटा हुआ आदमी बस की खिड़की से बाहर की तरफ देख रहा था। जंग लगे हुए टीन जैसा चेहरा था सबका। धूप की आंच हावड़ा के पुल को तपा रही थी। स्टीमर का गंभीर भौंपू बज उठा। पीठ झुका कर मेले वाले झूम झूम कर पुल की चढ़ाई पर चढ़ रहे थे। बस से उतर कर ड्राइवर धीरे धीरे बीड़ी का धुआं आकाश की ओर निकाल रहा था। शाम ढल रही थी। लिलुआ में लड़कियों के लिए सरकारी आश्रम है। भागती हुई जो लड़कियां पकड़ी जाती हैं, पुलिस उन्हें इस आश्रम में जमा कर देती है।

--कहेंगे हम लोग यहां रहेंगे, हम लोगों का कोई घर नहीं है। कोई भी नहीं है। कह सकेगी न ? कहते कहते भैया का चेहरा इस शाम की तरह हो गया था।

बड़ी बहन फिर स्टेशन की छावनी के नीचे लौट आयी। रेलिंग पकड़े छोटी बहन चलती ट्रेन को देख कर हंस रही थी।

ट्रेन की खिड़की से कई चेहरे प्लेटफार्म की ओर ताक कर हंस रहे थे। हंसते हुए चले जा रहे थे। इस तरह उसका भी चले जाने को जी चाहा।

लाइन पर आड़े ढंग से बना एक पुल है। प्लेटफार्म के किनारे से सड़क ऊंची होकर पुल पर पहुंची थी। थैला लटकाए तीन आदमी सड़क से जा रहे थे। वे लोग पहाड़ पर चढ़ रहे थे। उसके बाद उसने सोचा—बड़ी बहन राह देख रही होगी।

विश्रामालय में बड़ी बहन को न पाकर वह छावनी के नीचे लौट आयी। वजन मापने वाले यंत्र पर एक आदमी अपना वजन ले रहा था। उसने देखा। बूढ़े ने कार्ड देखा और तेज कदमों से चला गया।

कितना गैर जिम्मेदार आदमी है। तीन मिनट ही रह गए हैं और वह अभी तक आया नहीं।

छोटी बहन ने मुंह घुमा कर देखा। छः सात लड़के लड़कियों का झुंड था।

---उसके लिए रुकने से, हम लोगों की भी गाड़ी छूट जाएगी।

—तो फिर ?

उन लोगों ने अपने में ही सलाह-मशविरा किया और व्यस्त हो गए। थोड़ी ही देर में चश्मा लगाए एक लड़की दौड़ कर आयी। बहुत दुबली थी। लगता था सातवीं कक्षा में पढ़ती है। उसे देखकर छोटी बहन समझ गयी कि वह झुंड इन्हीं लोगों की चर्चा कर रहा था।

—वे लोग अभी अभी गए हैं।

—चले गए ?

—लड़की ने चमड़े के बेग को हाथ में कस कर पकड़ लिया। चश्मे को नाक पर ठीक से बैठाया, उसके बाद इस तरह से देखा, मानो पूछ रही हो—अब मैं क्या करूंगी ?

—क्यों अकेली नहीं जा पाएंगी ?

--क्यों नहीं जा सकती। पर उन लोगों के साथ रहने से घर पहचानने में आसानी होगी। इतना कहकर लड़की बोल उठी—अरे !

लड़का व्यस्त होकर आया। उस लड़के लड़कियों वाले झुंड में छोटी बहन ने इसे भी देखा था।

—आप अभी आ रहे हैं ? लड़के ने पूछा।

—हां, आप ?

—मैं भी।

—तो फिर। ट्रेन तो निकल चुकी है। रास्ते में जुलूस में ट्राम अटक गयी थी। अब क्या होगा।

—पता नहीं, जुलूसों का यह सिलसिला कब खत्म होगा ?

—छोड़िए भी। अब क्या करेंगे ?

—अब तो नहीं जा सकते।

—घर पर कहकर आया हूं, लौटने में दस ग्यारह बज जाएंगे।

—शादी का घर है। अब अगर लौट जाऊंगा तो घर पर सभी खिल्ली उड़ाएंगे।

—चलिए रेल में बैंडल तक घूम आएं।

—पर उसके पहले कुछ खा लेना चाहता हूं।

वे दोनों चले गए। उसी समय उतने बड़े से स्टेशन की सारी बत्तियां जल उठीं। कोई ट्रेन आयी थी। स्टेशन में अनगिनत लोग उतर रहे थे इतने लोग बाग—छोटी बहन को अच्छा नहीं लगा। वह फिर प्रतीक्षालय में लौट आयी।

छोटे भाई को मां ने चांटा लगाकर कहा था—मुंहजले थोड़ा पहले नहीं जा सका ? किसकी शादी के जलसे में बिना न्यौता खाने जाकर मार खाकर लौटा था।

वह बहनों की ओर देखकर भभक-भभक कर रो पड़ा। उस समय छोटे भाई का चेहरा चपटा सा लग रहा था।

बड़ी बहन तस्वीर के थोड़ा और करीब आकर खड़ी हुई। जो लोग रेल से कट कर मरे थे, उनकी तस्वीरें थीं। मंच पर उसकी अपनी छाया पड़ी। अपना ही

चेहरा देखने के लिए वह थोड़ा पीछे की तरफ तिरछी होकर खड़ी हो गई। उसे लगा, उसका अपना चेहरा कितना बदसूरत, कितना भयंकर है। भैया ने एक बार चिल्लाकर कहा था—मैं क्या कर सकता हूं ? क्या करूंगा ? कोशिश कर तो रहा हूं। बड़ी बहन को पूरे कांच पर भैया की तस्वीर ही दिखायी पड़ी। ममता और दुःख से उसका मन भर आया। रेल में कटे हुए लोगों के लिए मन उदास हो गया।

वह महिला फिर दिख गयी बड़ी बहन को।

पुरुष के हाथ में सूटकेस और बैंडिंग था। वे लोग आपस में बातें नहीं कर रहे थे। बड़ी बहन ने दौड़ कर उसका हाथ पकड़ लिया।

महिला ने सिर हिलाया।

—उनका पता दीजिए, भैया को भेजूंगी। इतना कहकर बड़ी बहन देखती रही, और देखते देखते उसने देखा, दो चेहरों के आयतन में शोभे, ऐसी दो आंखें, लटकी हुई ठोड़ी और टूटे हुए चूल्हे की मिट्टी की तरह ओंठ।

— वहां छंटाई के लिए नोटिस दे दिया गया है।

महिला चली गयी। बड़ी बहन जाते जाते उसे देखती रही। उसके कन्धे पर सूटकेस बिस्तर का बोझ मानों किसी ने लाद दिया हो। बड़ी बहन थकावट के मारे ऊंघने लगी। आंखों की पलकें भारी हो उठीं। किसी तरह चारों तरफ नजर दौड़ा कर उसने सोचा, छोटी बहन शायद उसकी प्रतीक्षा कर रही होगी।

प्रतीक्षालय मे आकर बड़ी बहन ने छोटी बहन को देखा।

वे दोनों पास पास चुपचाप बैठी रहीं।

काफी देर के बाद बड़ी बहन ने कहा—यहां बैठने से क्या फायदा ? चल उधर चलते है।

चलकर वे दोनों स्टेशन के दूसरे छोर पर पहुंच गए।

छोटी बहन ने पूछा—अब हम क्या करेंगे ?

बड़ी बहन खड़ी-खड़ी सोचती रही। सोचकर बोली—यहां थोड़ी देर रुकते हैं।

रेस्तरां का दरवाजा खुला। लड़के-लड़की का एक जोड़ा निकला। यह देखकर छोटी बहन सोचने लगी, शायद ये लोग अब घूमने निकलेंगे।

उसने खांसा, थूका। पीठ झुका कर उल्टी करने को उसका जी चाहा। बड़ी बहन ने पीठ पर हाथ रखा और उसे अपने करीब खींच लिया।

बोली—कुछ कहेगी क्या ?

— नहीं।

—भूख लगी है ?

—नहीं।

फिर रेस्तरां का दरवाजा खुला। आवाज सुनायी दी। आवाज सुनकर वह ऊंघने लगी। ट्रेन ने सीटी बजायी।

छोटी बहन ने कहा—शंख जैसी आवाज है न ?

—हां।

—दीदी, तुझे याद है, बाबूजी के साथ घूमने निकले थे और किसी इंजन में चढ़े थे।

—हां, याद तो है।

—ड्राइवर का एक सोने का दांत था। मुझे उसने गोद में उठाया था।

—और उसने जब इंजन की सीटी बजायी, डर के मारे तूने उसकी छाती में मुंह छुपा लिया था।

छोटी बहन हंस पड़ी।

बड़ी बहन ने कहा वो देख।

शादी के बाद नयी दुल्हन को लेकर दुल्हा घर लौट रहा था। नया बक्सा, नया बिस्तर, नए जेवरात, नए कपड़े। दुल्हन सकपकायी हुई चल रही थी। दूल्हा सिगरेट फूंक रहा था।

—दीदी, दुल्हन के बाल देख। काफी पतले हैं।

—हां।

दूल्हे की उम्र भी अधिक है।

—हां।

—भैया का वो दोस्त फिर आया क्यों नहीं रे ?

—क्या मालूम।

—बहुत अच्छी तरह बातें करता था।

बड़ी बहन कुछ बोली नहीं।

—एक बार उसने मुझे चाकलेट लाकर दिया था। याद है तुझे। जवाब न मिलने पर भी छोटी बहन चुप नहीं हुई। बोली—मां कह रही थी, शायद तू उसे पसंद है।

—अब चुप भी कर।

छोटी बहन की आंखें भर आयीं। खांसी रोकने के लिए वह झुक गयी। धीमी आवाज में बोली—पानी पिऊंगी।

पीकर आ।

छोटी बहन नहीं गयी। बड़ी बहन को तन्द्रा सी आ रही थी। वह एकटक सामने की ओर देख रही थी। छोटी बहन उस तरफ देखती हुई बोली—अब हम क्या करेंगे ?

—नहीं मालूम ।

—भैया ने क्या कहा था ?

बड़ी बहन मानों याद करने लगी ।

—वे लोग क्या अब आएंगे ?

—क्यों ?

—तो फिर यहां क्यों आए हैं ?

बड़ी बहन ने चारों तरफ नजर दौड़ायी । आदमी, रोशनी, कोलाहल, देख-सुन-कर, फिर एकटक देखती रही । फिर ऊंघती हुई आवाज में बोली—हम प्रतीक्षा करेंगे । वे लोग आएंगे, पूछेंगे, साथ में कौन हैं, कहां जाओगी, क्यों जाओगी । हम दोनों बहनें निकल पड़ी हैं, बम्बई जाने के लिए । साथ में कोई नहीं है । वहां हम सिनेमा में उतरना चाहते हैं । तब वे लोग हमें पकड़ कर ले जाएंगे । पता पूछेंगे । हम नहीं बताएंगे । तब वे हमें आश्रम भिजवा देंगे ।

—वहां क्या करोगी ?

—मालूम नहीं ।

—दीदी चल भाग चलते है ।

धीरे धीरे बड़ी बहन की तन्द्रा दूर हो गयी । ठंडी आवाज में बोली—कहां भागूंगी ?

—कहीं भी ।

—उसके बाद ?

छोटी बहन सिर्फ देखती रही । बड़ी बहन ने हाथ बढ़ाकर उसे अपनी छाती से लगा लिया । उसके करीब झुक कर बोली—डर गयी क्या ?

छोटी बहन छाती में मुंह छुपा कर थरथराकर कांपने लगी । बड़ी बहन ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर दबाया ।

तब एक ने सोचा, आदमी का चेहरा जंग लगे टीन के जैसा है । और दूसरे ने सोचा—हंसता हुआ ट्रेन का चेहरा चला जा रहा है ।

सूखा

सुनील गंगोपाध्याय

छिपदह से डालटन गंज जाते समय गाड़ी खराब हो गयी। चकाचक नया स्टेशन वैगन अचानक खराब हो सकता है, यह सपने में भी उम्मीद नहीं थी। पुल पार कर चढ़ाई पर उठते समय दो तीन बार कमजोर सी आवाज निकाल कर गाड़ी जब रुक गयी, तो भी किसी ने ध्यान नहीं दिया।—रुकी है, रुके, चलेगी तो है ही—यह सोच कर सब अपनी-अपनी आंखों से प्रकृति को अपने-अपने ढंग से निहारने लगे। मि० खेमका ने सिगरेट केस खोलकर आगे बढ़ा दिया। अंगरेजी, हिन्दी, यहां तक कि बंगला में भी उन्होंने एक-एक कर सब को उसके लिए अनुरोध किया। सिगरेट केस में आठ सिगरेट थे, एक ही बार में खत्म हो गए। दस मिनट बीत जाने पर भी गाड़ी नहीं चली। पीछे से एक ट्रक हार्न बजा रहा था, मि० खेमका तब खुद ही गाड़ी से उतर गए। पतला सा पुल पार कर नदी के किनारे से लगा बिल्कुल खड़ा रास्ता था। नदी तो क्या, नदी का कंकाल कहना ही ठीक होगा। रक्त-मांस कुछ नहीं। अरुण भी नीचे उतरा, गाड़ी के अंदर घुटन भरी गर्मी। दोनों हाथों को पीछे कर छाती चौड़ी कर अंगड़ाई लेकर उसने शरीर को दुरुस्त किया। बदन में खुजली सी होने लगी थी। स्नान किए बिना आराम नहीं मिल सकता था। नदी में अगर पानी होता तो सब यहीं पर उतर जाते। जबर्दस्ती फालतू मजाक की तरह असहनीय धूप निकल आयी थी, हालांकि दिन के अभी साढ़े ग्यारह ही बजे थे।

यहां शायद बहुतों की गाड़ी खराब हो जाती होगी या जानबूझकर रुक जाती होगी, क्योंकि पहाड़ी चट्टानों पर कठकोयले या चॉक से शिक्षित हाथों का बहुत कुछ लिखा हुआ देखने को मिला। चॉक लोगों को यहां मिलता कहां से था? घूमने निकलते समय कब लोग पाकिट में चॉक लेकर चलते है? सबसे अधिक जो लेख चमक रहा था—मदिरा+लाल क्लब=हैवेन। अरुण धीमी आवाज में बोला—गुड हेवेन्स। हेल।

ड्राइवर गाड़ी का बोनेट खोल चुका था। खेमका उसी में झांक रहा था। गाड़ी के अंदर से हेरल्ड ट्रिब्यून का लाहिड़ी गुस्से में आकर बोला—हेई खेमका, ह्वाट दि हेल यू... ।

खेमका चुस्त आदमी ठहरा। कभी विचलित नहीं होता था। तुरंत सर उठाकर बोला—लेट्स डू वन थिंग—गाड़ी जब तकलीफ दे रही है, तो हम लोगों का उतर जाना ही ठीक है। सामने ही रूपा टुंगरी का डाक बंगला है। हम दुपहर का खाना वहीं जाकर खा लेते हैं।

तब तक तीन चार लोग और उतर आए। लाहिड़ी का मिजाज सुबह-सुबह कभी भी ठीक नहीं रहता। अरुण ने देखा है कि सुबह के समय हर वाक्य के साथ वह 'हेल' उच्चारण करता है। लाहिड़ी ने मुंह बिचकाकर घड़ी देखी। घड़ी उसने समय देखने के लिए नहीं, तारीख जानने के लिए देखी। मुंह से बोला—आज आठ तारीख है। माई गुडनेस, आज तो मुझे पटना पहुंचना ही पड़ेगा। तुम्हारी टाटा कम्पनी ने ऐसी टूटी-फूटी गाड़ी दी है कि—!

खेमका ठहाका मार कर हंस पड़ा। बोला—बिलकुल ब्रांड न्यू गाड़ी है, इसीलिए तो दिक्कत दे रही है। चलो-चलो, यहां तो छोटा सा प्यारा सा डाक बंगला है। आपको अच्छा लगेगा मि० रंगाचारी आपकी क्या राय है?

रंगाचारी को कोई आपत्ति नहीं थी, और दूसरों को भी कोई खास आपत्ति नहीं थी, पर लाहिड़ी सबसे बड़े अंगरेजी अखबार का आदमी था, इसलिए उसका मिजाज भी कुछ ज्यादा तेज था। वह हड़बड़ाने लगा—डालटन गंज के डी०एम० से मुझे तीन बजे मिलना था, पर यहां तो ..बंगला कितनी दूर है? अब इस धूप में पैदल चलवाओगे?

—पास ही है। दिख तो रहा है।

—वहां खाने का सारा सामान-वामान मिल जाएगा? इस इलाके में तो कहीं कुछ खाने की चीज नहीं।

—वह सब मुझ पर छोड़ दो। मेरे साथ सारा इंतजाम है। कोई दिक्कत नहीं होगी।

खेमका किसी भी हालात में घबराता नहीं था। लाहिड़ी के साथ वह हंसकर ही बोल रहा था, पर अब ड्राइवर की तरह मुंह फेर कर अपना पूरा चेहरा बदल कर कठोर स्वर में ड्राईवर को धमकाया और तुरंत ही उस मुखौटे को उतार कर हंस कर लाहिड़ी से बोला—कभी-कभार अनरुटीन्ड इनसिडेंट मुझे अच्छा लगता है। चलिए।

गाड़ी का क्लीनर माल लेकर हमारे पीछे-पीछे चल रहा था। एक केस बीयर और तीन बोतल स्कॉच तब भी बाकी थीं। सौसेज भी सारे खत्म नहीं हुए थे।

उस तरफ टेढ़ी नजर देखकर लाहिड़ी के चेहरे का रंग थोड़ा बदला।

डाक बंगले में दो कमरे थे। साफ सुथरा स्नानघर। तीन अर्दली थे। थोड़ी देर पहले ही कोई केन्द्रीय मंत्री अपने दलबल के साथ यहां ठहरे थे, इसलिए अर्दलियों ने अभी तक अपनी वर्दी भी नहीं उतारी थी। खेमका ने क्रिकेट खिलाड़ी की तरह बड़ी आसानी से फटाफट सारा इंतजाम ठीक कर लिया। किसी भी हालत में तीन से ज्यादा मुर्गे मिले नहीं, इस बात पर अपना अफसोस जाहिर कर उसने बीयर की बोतल खोली। लाहिड़ी की सिकुड़ी हुई भौं थोड़ी सीधी हुई। टेबुल पर पैर पर पैर फैला कर बोला—अरे खेमका, इधर आसपास तुम्हारी टाटा कम्पनी का कोई लंगरखाना है क्या ?

—नहीं, इस तरफ तो नहीं है। चार प्वाइंट पर हम लोग रिलीफ दे रहे हैं। आपने जो कल देखा था—।

—खैर, जान तो बची। पिछले तीन दिन से इतना अत्याचार किया है।

—अत्याचार ? मि० लाहिड़ी, यू मस्ट फेस लाईफ। आप जर्नलिस्ट लोग...।

—सुबह-सुबह मुंह गंदा मत करवाओ। लाईफ (छपने लायक नहीं) लो बीयर उड़ेलो।

—देश का हाल क्या है, यह आप अपनी आंखों से देखेंगे नहीं ? विदेशी रिपोर्टर तक...।

—देश का हाल देखने के लिए तुम लोगों को इतनी क्या गरज पड़ी है ?

—फालतू बको मत। वलगर। ए अरुण तेरे पास चार मिनार है तो एक दे।

खेमका का सिगरेट केस फिर से भर चुका था। झट से डब्बा बढ़ाते ही लाहिड़ी बोला—तुम्हारा गोल्ड फ्लैक पीते-पीते तो स्वाद बिगड़ गया है। दे अरुण चारमिनार दे।

अरुण दूर ही से सिगरेट के पाकिट को फेंक कर बोला—लाहिड़ी भैया, आज यहीं ठहर जाएं तो कैसा रहेगा। जगह बड़ी एकान्त है।

—तुझे क्या ? सात दिन चाहे छुट्टी लेकर मजे करो। मुझे तो परसों ही कलकत्ता पहुंच कर हवाई जहाज पकड़ना पड़ेगा। हालांकि एक ही दिन—मिजाज उचट जाने पर कुछ नहीं लगता—।

खेमका बोला—सच में सहा नहीं जाता। ऐसा करुण दृश्य...।

—क्या करुण है ? कौन सी चीज...ऐं ?

लाहिड़ी पैर उतार कर सीधा होकर बैठा। विशाल चौड़ा चेहरा था लाहिड़ी का। आँख पर अधिक पावर वाला चश्मा। असल में उसका चेहरा बच्चे की तरह था जिस पर गुस्सा अचम्भा या निराशा, ये सारी अभिव्यक्तियां साफ-साफ दिखायी पड़ती थीं। इस समय भी बिना मिलावट के विस्मय के साथ बोला—

कौन सी चीज करुण है, ऐं ?

बम्बई ट्रिब्यून का देशपांडे बोला—मि० लाहिड़ी, आपने क्या ध्यान दिया? मैंने एक तस्वीर खींची है, बेतला रिलीफ सेंटर... । लाईन में बैठे-बैठे ही एक बुढ़िया की गोद में सर रखकर एक बुड्ढा मर गया । अपनी आंखों से यह सब क्या देखा जा सकता है ? जयप्रकाश जी को देखा बार-बार पसीना पोंछ रहे थे । मैंने भी अपनी आंखें बंद कर ली थीं ।

रंगाचारी हंसते-हंसते बोला— आंखें बंद कर लेने के पहले कैमरे से तस्वीर तो तुमने सही उतार ली । अब उस तस्वीर को टाइम्स या गार्डियन को बेचोगे । देशपांडे तीखी आवाज में बोला—कभी नहीं । मैं अपने देश की इन शर्मनाक तस्वीरों को विदेशियों के हाथों कभी नहीं बेचता ।

लाहिड़ी मन लगाकर सुन रहा था । अब बोला--यह तेरा करुण दृश्य था ? क्या इससे करुण दयनीय दशा हम लोगों की नहीं है । ऐ...साले खेमका... ।

खेमका मुस्कराता हुआ, पर डरने का ढोंग दिखाकर बोला –अरे, अरे, मैंने क्या कसूर किया ?

—साले, सारे कष्टों की जड़ तो तुम ही हो ।

—क्यों ? देश में क्या हो रहा है, क्या आप लोग... ।

—देश में क्या हो रहा है, यह हम अपनी गरज से देखेंगे या हमारे अखबार हमें देखने के लिए भेजेंगे । तुम न्यौता देकर क्यों यह दिखाने के लिए ले आए ? जो दान दक्षिणा चढ़ा रहे हो ढिंढोरा पिटवाकर वही दिखाना चाहते हो । न्यौते पर बुलाकर कोई मुर्दा दिखाता है ? रात दिन स्कॉच पिला रहे हो । आराम से रखे हो— और बीच-बीच में एक बार कहते हो—जाकर मुर्दा देखकर वापस आने के लिए ? राम भजो । साले, तुम लोगों का खा रहा हूं, इसलिए यह मत समझ बैठना कि तुम लोग मुझे पसन्द भी हो मैं तो ठहरा नशेबाज आदमी । अच्छा माल देखता हूं तो छोड़ नहीं सकता, पर इसलिए इतना अत्याचार ।

खेमका अपना अंदाज बदल कर धीमी ताली पीट कर बोला—अच्छा कहा है आपने । मैं आपके साथ बिल्कुल एकमत हूं । पर मेरी तो नौकरी... ।

लाहिड़ी ने कुर्सी पर से उठ कर बरामदे में जाकर थूक फेंका । पाकिट से रूमाल निकाल कर नाक साफ किया । चश्मा खोलते ही उसका चेहरा बिलकुल बदल गया । एक असहाय सा चेहरा लिए उसने कहा—सच में कुछ अच्छा नहीं लगता । जाओ देखो न खाना बना है कि नहीं भूख लग रही है । नशा थोड़ा और जम गया तो खाना खाने की इच्छा ही नहीं होगी ।

डाक बंगले के आंगन में एक बड़ा सा कुंआ था । झुंड के झुंड लोग उस कुएं से पानी लेने आ रहे थे । एक अर्दली वहां खड़ा-खड़ा देख-रेख कर रहा था

ताकि एक आदमी एक ही घड़ा पानी ले सके। अरुण उसी तरफ देख रहा था। लाहिड़ी उसके पास आकर बोला—क्या देख रहा है? औरत? सात साल पहले एक बार उसी पलामू में आया था। उस समय मेरी उम्र तेरे ही समान थी। उस समय देखा था, इन ओरांव लड़कियों की क्या सेहत होती है। और अब देख। एक भी लड़की की न तो छाती है, न नितम्ब।

अरुण कुछ कहे बिना ही लाहिड़ी की तरफ ताककर हंस पड़ा।

लाहिड़ी बोला—तो फिर क्या भाषा पर कुछ सोच रहा है? कैसे क्या लिखेगा? तुम्हारे बंगला अखबारों में तो बड़ा ही साहित्य रचना पड़ता है। ले मैं कहे देता हूं। लिखना—अनगिनत जनता के चेहरे मानो दुख की छवि थे। नहीं, नहीं, छवि नहीं यह शब्द पुराना पड़ गया है। पसीना, विषाद का पसीना, नहीं, नहीं, विषाद का स्वेद, फर्स्ट क्लास, धूप, बाहरी धूप, ये बड़ा अच्छा हुआ, हेडिंग तक मैं बता दे रहा हूं... । आसमान में बहरी धूप के नीचे विषाद का स्वेद—बिलकुल खरी कविता।

अरुण कुछ बोले बिना फिर हंसा। यह मुस्कराहट थोड़ी दूसरे किस्म की थी। लाहिड़ी ने इस पर गौर किया। बोला, कुछ ज्यादा ही बक बक कर रहा हूं न? सिली एंड स्टूपिड। सोच कितने दु:ख की बात है। हजारों की तादाद में आदमी बिना खाए दम तोड़ रहे हैं और हम लोगों का काम क्या है? उसका वर्णन किस भाषा में करें—उसी पर माथापच्ची करना। है न? सच, कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

—लाहिड़ी, सुना है कहीं से एक साधु ने आकर बड़ा काम किया है।

—साधु! कैसा साधु?

बम्बई से कोई साधु आकर रोज एक हजार आदमियों को खाना खिला रहा है। साधु के पैसे वाले भक्त रुपया और चावल भेज रहे हैं। मामला बड़ा मजेदार है। चलिए न, जब यहां रह ही गए हैं तो मामला क्या है, कवर कर लें।

—साधू लोगों को खिला रहा है, इसमें तेरा या मेरा क्या है रे?

—अरे, मामला देखने लायक है। आपके अंग्रेजी अखबार के लिए अच्छी स्टोरी बन सकती है।

—आह। चुप भी कर न। बीयर इतनी कड़वी है, लगता है पेचिश की दवा पी रहा हूं...लगता है मिलावट है।

—बीयर तो थोड़ी कड़वी ही होती है।

—फालतू मत बक। तू ठहरा दूध पीता बच्चा, तू मुझे सिखाएगा कि बीयर कड़वी है या नहीं।

लाहिड़ी संकुचित सा बैठा रहा। चश्मा उतारा हुआ असहाय सा चेहरा।

एक बार इसके पास, तो दूसरी बार और किसी के पास जाकर वह उलट पुलट कुछ बकता और जब कोई टोकता तो चिल्लाता—आह। चुप भी करो न। स्टाप हाउलिंग, विल यू ? अचानक लाहिड़ी ने खेमका को पुकारा—ऐ साले खेमका, तेरे खिलाफ मैं रुस्तमजी से कहूंगा, तेरा तबादला मैं रांची करवा दूंगा।

खेमका बरामदे के बिलकुल किनारे बैठा था। उसके चेहरे पर धूप पड़ रही थी, इसलिए चेहरा चमक रहा था। मीठी आवाज में खेमका बोला—आप अगर ऐसा करते हैं, तो मैं समझूंगा मेरे भले के लिए ही कर रहे हैं। आप हमेशा से ही मेरे दोस्त रहे है।

—दोस्त वोस्त कोई नहीं मैं तेरा।

—हमेशा से ही हैं। पर इस समय मुझसे कौन सी गलती हो गयी ?

लाहिड़ी कमर पर हाथ डाले खड़ा था। पैनी नजर से खेमका की गलतियों को ढूंढ रहा था। इधर उधर ताक कर अपने ही हाथ के खाली गिलास पर उसकी नजर टिकी और वह तुरंत बोल पड़ा—उस समय से देशी बीयर पिला रहे हो स्कॉच क्या अपनी मेहरारु को पिलाओगे ? एं ?

खेमका झट उठकर टेबुल के नीचे से स्कॉच की बोतल निकाल कर बोला—मैंने गौर किया है, मन उदास होने पर आप ह्विस्की के बदले बीयर पीना ही पसन्द करते हैं। इसलिए —।

खाना बन चुका था। सफेद पतले किस्म का बढ़िया चावल, टीन का मक्खन, और मुर्गे का झोल। रंगाचारी फुसफुसाकर अरुण से बोला— कई दिनों में आज का चावल सबसे बढ़िया है। ताज्जुब है सबसे सूखी जगह पर सबसे बढ़िया चावल मिला हमें। है न ?

अरुण बोला—मुर्गा भी बड़ा स्वादिष्ट है। बड़ा बढ़िया बनाया है।

—मिर्च थोड़ी ज्यादा है।

उस समय दिन के एक ही बजे थे, पर लाहिड़ी को नशा चढ़ चुका था। वह उंगली से खाना तितर-बितर कर रहा था। खाने की तरफ उसका मन नहीं था। आंखें लाल हो चुकी थीं। आज सारा दिन उसका इसी तरह से बीतेगा, हालांकि अरुण ने देखा है कि यही आदमी जब रिपोर्ट करने बैठता है तो उसका चेहरा पलट जाता है। असाधारण स्मरण शक्ति और जोरदार भाषा है उसकी। एकाग्र मन से काम करता है वह।

अरुण ने पूछा—लाहिड़ी दा, आप तो कुछ खा ही नहीं रहे हैं।

—धत् क्या खाऊंगा ? अच्छा नहीं लगता। सब सड़ा हुआ है। मुर्गा बिलकुल सड़ा हुआ है।

खेमका विचित्र सा मुंह बनाकर बोला—जिन्दा मुर्गा सड़ गया ? हा-हा !

उसकी देखादेखी सभी हंस पड़े ।

लाहिड़ी नाराज होकर बोला—यह क्या मजाक है, ऐं । मैं कह रहा हूं । अलबत्ता कहता हूं कि यह मुर्गा सड़ा हुआ है । धत् तेरे की — ।

लाहिड़ी को चावल मास आदि जमीन में बिखेरते देख देशपांडे बोला—दादा, नहीं खाना है तो मत खाओ, पर खाना बर्बाद मत करो ।

—खूब बर्बाद करूंगा, तुम्हें क्या ?

— यह अन्याय है । कितने लोगों को खाना नहीं मिल पाता और एक तो हम भरपेट खाते हैं, यही एक जुल्म है, तिस पर बर्बाद करना... ।

—उफ ! चुप भी करो । कहा न कि मैं बर्बाद करूंगा ।

—उसका कोई मतलब नहीं । बंगले के बेयरे लोग खा सकते हैं—या किसी भिखारी को दिया जा सकता है ।

—शट् अप । मैं कुछ सुनना नहीं चाहता । किसे खाना नहीं मिलता—भिखारी...मुझे यह सब कुछ अच्छा नहीं लगता । मैं और सह नहीं सकता ।

यह कोई नयी बात है क्या ?...पहले क्या कोई बिना खाए....फिर बुलाकर दिखाने को क्या था....आज दिन भर कोई भी, कौन भूखा है प्यासा है, इस पर मैं बातें नहीं करूंगा । बहुत हो चुका । आज दिन भर की छुट्टी है समझे ।

आज अकाल और भूख से छुट्टी है । समझे आप लोग । आज सिर्फ औरत और शराब पर बातें करूंगा । खबरदार । और कोई भी किसी और तरह की बातें नहीं करेगा ।

—उसकी जरूरत ही नहीं पड़ेगी मि० लाहिड़ी । गाड़ी बन चुकी है, खाना खाकर हम लोग रवाना हो सकते हैं ।

—मजाक समझ रखा है । खाना खाकर इस वक्त मैं तुम्हारी उस टुटेली गाड़ी में बैठूंगा ? मेरी बला से । आज हम लोग यहीं रुकेंगे ।

—पर आपने तो कहा था कि परसों कलकत्ता में आपको हवाई जहाज पकड़ना है ।

—हवाई जहाज मुझे पकड़ना है तो तुम्हें इतनी चिंता क्यों ? कह तो दिया कि आज छुट्टी है ।

दिल्ली के दोनों पत्रकार उसी समय जाना चाहते थे । देशपांडे की भी रहने की इच्छा नहीं थी । अपनी ली हुई तस्वीरें अगर वह तुरंत न दे तो उसकी कोई कीमत नहीं रह जाएगी । अंत तक चार लोग चले गए । बाकी के चार रह गए । गाड़ी उन्हे पहुंचाकर फिर वापस आने वाली थी ।

बरामदे में आराम कुर्सी पर सभी बैठे थे । लाहिड़ी ने गिलास में फिर से ह्विस्की डाल रखी थी । उसने जबर्दस्ती दूसरों के गिलास में भी भर दी । एलको-

हल उसके खून के साथ जा मिला था। लाहिड़ी छटपटा रहा था। कभी तो कुर्सी से उठ खड़ा होता, कभी चहलकदमी करता, फिर कभी बैठ जाता। धूप झुलस रही थी। इस धूप में हवा चलने पर एक अलौकिक आवाज सी उठती है। जंगल से वह आवाज भरी हवा मानो दौड़ती हुई आ रही थी।

अनगिनत औरत मर्द तब भी कुएं से पानी भरने के लिए चले आ रहे थे। पानी भरने वाली मशीन की घड़ घड़ की आवाज और उनकी दुर्बोध्य भाषा की लड़ाई कानों में आ रही थी। लाहिड़ी अपने साथियों को सम्बोधित कर बोला—सब चुपचाप क्यों हो गए? गपशप चलना चाहिए। ऐ रंगाचारी, अभी अभी तो रशिया घूम आया, बता वहां की औरत कैसी है? मिलती है?

रंगाचारी जम्हाई भर कर बोला—मुझे ढूंढने का वक्त ही नहीं मिला। इतना कसा हुआ प्रोग्राम था।

—तुमने औरत नहीं खोजी होगी, यह मैं मान लूं? उस बार जब जर्मनी गये था तो, बोलो न, आज बस कहानी को दुहरा लो।

—आप ही कुछ कहिए न।

—मैं क्या कहूंगा। जुल्फी के बाल पक गए, मन उदास हो जाता है। अब क्या? ऐ अरुण, तेरी तो कच्ची उम्र है, शादी भी नहीं की है, एक दो प्यार की कहानियां फेंक न।

—लाहिड़ी दा, स्पेन में आपके साथ जो घटा था उसी के बारे में बताइए न।

रामयश सिंह बहुत ही गंभीर किस्म का आदमी था। इन्टरव्यू लेने के अलावा जल्दी अपना मुंह नहीं खोलता था। शराब भी चुपचाप पी लेता था। रंगाचारी ने फुसफुसाकर पूछा—बिहार में कितनी प्रतिशत जनता सूखे से प्रभावित है?

रामयश सिंह बोले—अभी तक तो चौवन प्रतिशत है।

—भूख से मृत्यु की संख्या?

—सरकारी रिकार्ड तो नहीं है। पर सुना जाता है—।

लाहिड़ी गरज उठा। बोला—फिर वही बात? पागल बना डालोगे क्या? कहा न कि आज छुट्टी है। एक दिन के लिए भी क्या नौकरी नहीं भूल सकते?

—लाहिड़ी साहब, यह सिर्फ नौकरी का इंटरेस्ट नहीं है, यह मानवता का तकाजा है।

—शट् अप। मैं कुछ नहीं सुनना चाहता।

—शराबी के साथ तर्क करने से कोई फायदा भी नहीं।

—मैं नशे में नहीं हूं। दूसरे के पैसे से शराब और मुर्गा खाकर मानवता पर बातें मत कर। बुल शिट। इस समय औरत पर बातें होंगी। शराब और मांस के बाद औरत पर बातें करना ही ठीक है।

—आप कहिए। सुनने के लिए हम सब तैयार हैं।

—पिछले साल जनवरी में मैं जब मैड्रिड के होटल में था, रात का समय था। वह लड़की बाथ टब में शरीर डुबोए पड़ी थी। मैंने दस्तक दी तो तौलिया लपेट कर....मुझे उस समय बुरी तरह नशा चढ़ चुका था...उफ। देखो तो रंगाचारी तो सो रहा है ऐ रंगाचारी—एई।

रंगाचारी की नाक बजने लगी थी। लाहिड़ी ने तीन चार बार चिल्लाकर पुकारा, कोई फल नहीं।

झूमते हुए लाहिड़ी ने पास जाकर उसके बाल पकड़े और बोला—ऐ साले रंगाचारी।

रंगाचारी फड़फड़ाकर उठ बैठा। बोला—नींद आ गयी थी। देखिए न। (छपने खेमका भी सो रहा है।

—साले खेमका की शिकायत मैं रुस्तम जी से जरूर करूंगा। ऐई खेमका... लायक नहीं)।

खेमका आंखें खोल कर बोला—मैं सो नहीं रहा हूं। आप कहते रहिए, मैं सुन रहा हूं। तौलिया लपेटी हुई वह लड़की—।

—हां तो एक झटके में तौलिया खोल दिया। क्या देखता हूं, जगजननी का रूप। क्या बताऊं। मैं बाजी लगा सकता हूं वैसी लड़की करोड़ों में एक नहीं मिलेगी। सारे बदन में चाकू के समान धार थी। छाती क्या थी, मानो दो सर्च लाइट, और जांघें ? वह लड़की पहले ही मुझे क्या बोली जानता है ? लड़की उस समय मुझे क्या बोली...?

इसका जवाब कौन देता ? तीनों की नाक से नींद की हल्की आवाज निकल रही थी। अकेला अरुण जाग रहा था। मीठा मीठा मुस्कुरा रहा था।

लाहिड़ी के चेहरे पर वेदना उभर आयी। आंखें फाड़ कर बोला—सभी सो गए ? हैं। मर्द हैं ये ? औरत की बात सुनते हुए सो गए ? साले कहीं के।

अरुण बोला—आप बोलिए लाहिड़ी दा। उस लड़की ने क्या कहा ?

—सुनेगा तू ? मेरे हाथ में तौलिया था। वह लड़की दिखावे की हंसी हंस कर बोली—मेरी पीठ भीगी है, पानी पोंछ दो। मैंने कहा—धत्, मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। तीन भैंसे अपनी नाक बजा रहे हैं, ऐसे में कहीं इस तरह गप जमती है ? चल चलते हैं। कहीं थोड़ा घूम आएं।

—कहां जाएंगे इस धूप में ? बैठिए न। लाहिड़ी दा आप कहां जन्मे थे ?

—इलाहाबाद में। मेरे पिताजी वहां प्रोफेसर थे। क्यों, तेरा कोई काम है ?

—यूं ही पूछ रहा था।

—ऐ, ह्विस्की की बोतल इधर तो ला। अच्छा छोड़ रहने दे। अच्छा नहीं

लगता। अब क्या करें बता तो ?

—आप भी सो जाइए।

—दोपहर को पड़ा पड़ा सो जाऊंगा ? धत्। इससे तो अच्छा रहता कि चला ही जाता। सोते समय नाक से बोलते हैं, ऐसे भैंसों के बीच रहना—तू अब क्या करेगा ?

—कुछ भी नहीं। मैं यहीं चुपचाप बैठा रहूंगा। यहां आने पर बहुत सी पुरानी बातें मुझे याद आ गयीं।

—कौन सी बात ? कोई प्रेमिका—?

—नहीं। नहीं। मेरा जन्म पूर्वी बंगाल में हुआ था। जब बंगाल में पचास का अकाल पड़ा था, 1943 के साल में। मैं पूर्वी बंगाल में ही था - उन दिनों ही की बात मुझे एकाएक याद हो आयी।

—तू तो उस समय छोटा सा रहा होगा।

—हां। मेरा पेट कभी ठीक नहीं रहता था। हर समय भूख लगती थी। दिन भर केवल रोता रहता था और खाना मांगता रहता था। घर वालों को बड़ा कष्ट दिया था मैंने।

—अजीब बात है। यहां आकर तुझे ये बातें कैसे याद आयी ? क्यों ?

—पिताजी कलकत्ता में मास्टरी करते थे। उन दिनों के हालात तो आपको मालूम ही हैं। पिताजी महीने में बीस रुपए भेजा करते थे। उस समय पूर्वी बंगाल में चावल छप्पन रुपए प्रति मन बिकता था। घर में हम पांच जने थे। दिन भर में सिर्फ एक बार माड़-भात हमें जुटता था और साथ में उबला हुआ आलू। मैं पाकिट में हर वक्त उबला आलू रखा करता था। चौथी क्लास में पढ़ता था। स्कूल जाकर भी पाकिट से उबला हुआ आलू निकाल कर खाता था। हमारे क्लास के सभी लड़के उबले आलू लाया करते थे। लंच के ऊपर नमक रख कर हम आलू खाते थे। मुझे पचता नहीं था, पेट का मरीज था। उबला आलू माड़-भात मुझे सहता नहीं था। फिर भी भूख तो भूख थी। मां को तंग करता रहता। मां खाना खाने बैठती तो मां का खाना छीन लेता था।

लाहिड़ी बिना कारण ही सर झटकने लगा। बोला—समझ गया।

फिर बरामदे के कोने में जाकर दूसरी तरफ ताक कर बोला—मैं समझ गया तेरी मां जिंदा नहीं है। है न ?

—नहीं। उसी साल मेरी मां टी० बी० की बीमारी से मर गयी। राक्षस के समान भूख थी मेरी। पेट में कुछ बर्दाश्त नहीं होता था। फिर भी मां का खाना छीन कर खा जाता था। मां किसी से कुछ कहे बिना तकरीबन रोज ही भूखी रह जाती थी। उसी से मां को टी०बी० हो गयी। उस समय तो मैं समझता नहीं

था। अब सब याद आता है। कल लंगरखाने में जब लाईन देखी तो मेरे मन में मानो कुछ होने लगा। आप कह सकते हैं मुझे थोड़ा मजा ही आ रहा था। मुझे लगा मैं कितने आश्चर्यजनक रूप से जी गया।

लाहिड़ी गरज उठा—'मजा आया' का क्या मतलब ? यह कोई मजे की घटना है ?

अरुण की मुस्कराहट मेरी समझ से परे थी। हंस कर ही उसने कहा—पचास के उस अकाल में मैं भी तो मर सकता था। पर मैं मरा नहीं। अपनी मां को मार कर मैं जिंदा रहा। जिंदा रहना ही क्या एक मजे की बात नहीं है ?

लाहिड़ी ने सिगरेट के अंतिम टुकड़े को उंगलियों में दबा कर दूर फेंक दिया। पैंट के पाकिट में हाथ डाल कर खुदरा पैसों को झनझनाने लगा। एक हाथ से उसने अपने बालों को पकड़ा। अचानक छलांग लगाकर बरामदे से नीचे उतर कर एक फूल तोड़ा। फिर चिल्लाकर बोला—जा अरुण, तू कमरे में जा। बत्ती बुझा कर थोड़ी देर सो जा। तुझे अच्छा लगेगा।

अरुण आंखों से लाहिड़ी की चाल का पीछा कर रहा था। बोला—मैं ठीक हूं मुझे यहीं अच्छा लग रहा है।

लाहिड़ी कुएं की तरह बढ़ा। एक लड़की पानी भर कर लौट रही थी। उससे कहा—माझिन। मुझे थोड़ा पानी दे। मुंह धोऊंगा।

लड़की सकपका कर खड़ी हो गयी। उसने लाहिड़ी की नशे से लाल आंखों की तरफ देखा, उसके बाद कन्धे पर रख कर ही कलश को झुकाकर थोड़ा सा पानी उड़ेल दिया। दोनों हाथों से ठंडा पानी लेकर लाहिड़ी ने अपना चश्मा उतार कर अच्छी तरह से मुंह धो डाला। जी भर कर पानी भी पिया। फिर लड़की से बोला—आ, तुझे मैं पानी भर कर देता हूं।

फिर अर्दली को बोला—ठीक है। अब तुम जा सकते हो। इन सब को पानी मैं भर कर दूंगा।

झांककर उसने देखा—पानी कुएं में बहुत गहराई पर था।

जीने के लिए

प्रफुल्ल राय

माघ का महीना बीतने को था पर ठंड में कोई कमी नहीं, तिस पर आज सुबह से आकाश मे बड़े बड़े बादलों के टुकड़े झूम रहे थे। बीच-बीच में थोड़ी सी धूप भी दिखाई पड़ रही थी। बादलों से लदे आसमान में बिजली चमक रही थी जो थोड़ी सी ललाई दिखते ही तुरंत मिट जाती थी।

बिष्टुपद उत्तर के मैदान में जब पहुंचा तब ठंड की शाम ढल चुकी थी। पेड़ों की छाया लम्बी हो चुकी थी।

बिष्टुपद करीब चालीस साल का हो रहा था। ढिबरी जैसी मोटी नाक पर बेडौल मटमैली आंखें। भौं नाम मात्र की थीं। काले काले मोटे ओठ नीचे की तरफ लटक चुके थे। आवाज टूट चुकी थी। अस्वाभाविक लम्बा था। रूखे बदन के काले चमड़े पर खड़ी उभर आयी थी। सब कुछ मिलाकर बिजली से जले तार के पेड़ के समान हो गया था वह। उसके पूरे बदन में सिर्फ चौड़ी-चौड़ी मोटी हड्डियां रह गई थीं। इस कद काठी पर बिष्टुपद के शरीर पर अगर थोड़ा मांस चढ़ा होता तो वह पहाड़ की तरह बलवान बन जाता।

कपड़े के नाम पर उसकी कमर में एक गंदा चिथड़ानुमा लंगोट होता और कई एक चिप्पियां लिए रंग बिरंगा एक जामा। सर पर एक अंगोछा लपेट कर रखता और कंधे पर एक कुल्हाड़ी। कमरे में एक कटारी खुंसी रहती।

पिछले तीन दिनों से बिष्टुपद के पास कोई काम नहीं था। कोई रोजगार भी नहीं था। उसके जैसे भूमिहीन रोज की मजदूरी करने वालों के यहां सोना चांदी जमा नहीं रहता जो बैठ कर खाना खा सकते हैं। दो-चार दाने जो चावल के थे उनसे कल तक का गुजारा हो गया था। आज अगर काम जुटा तो बीबी बाल-बच्चों को खिला नहीं सकेगा तो उपवास के सिवा चारा भी क्या था।

नींद खुलते ही बिष्टुपद काम की तलाश में निकल गया था। पर काम था कहां? घूम घूम कर जब वह बुरी तरह थक कर निराश हो गए, तब उसे उत्तर

के इस मैदान की याद आयी।

उत्तर के इस मैदान ने कई बार विष्टुपद की जान बचाई थी। यहां से उसने कभी फल वगैरह कभी शाक-सब्जी, कभी कोई चिड़िया या कभी-कभार जमीन का कछुआ, तो कभी खरगोश को पकड़ कर ले जाकर अपने बाल बच्चों की जान बचायी थी। आज भी वह बड़ी उम्मीद से इस मैदान में आया था।

मैदान में आकर थोड़ी देर तक बिष्टुपद खड़ा रहा। सुनसान जगह थी। दाहिनी या बायीं जिस तरफ भी आंखें दौड़तीं, घास से भरी जमीन थी। जाड़े के मौसम के कारण घास सजीव और ताजा नहीं लग रही थी। विवर्ण होकर फीकी पड़ी हुई थी। बीच-बीच में झाड़ियां नहीं, छोटे छोटे पेड़ पौधे थे। मैदान से होकर एक नाला भी बह रहा था।

चारों तरफ देखते हुए विष्टुपद ने चलना शुरू किया। ढलती दुपहर में सर के ऊपर से झुड की झुंड चिड़ियां उड़ रही थीं। बिष्टुपद ने सोचा, अगर साथ में गुलेल लाता तो बड़ी आसानी से दो-एक चिड़िया नीचे उतार लाता। बड़ी गलती हो गई थी।

चलते हुए जो भी झाड़ियां या वृक्ष सामने पड़ रहे थे, बिष्टुपद उन्हें बड़ी पैनी नजर से देख रहा था। घास से भी उसे अपनी चाह की चीज कुछ दिखायी नहीं पड़ रही थी।

काफी देर चलने के बाद मैदान के बीचोंबीच नजर पर नजर पड़ते ही बिष्टुपद चौंककर रुक गया। नहर के किनारे एक औरत खड़ी थी, वह निर्निमेष उसे ही घूर रही थी।

बिष्टुपद जहां खड़ा था, वहां से दस कदम चलने पर ही उस औरत तक पहुंचा जा सकता था। दूरी ज्यादा नहीं थी, इसलिए बिष्टुपद साफ-साफ देख पा रहा था कि उस औरत की आंखों में घबराहट और शक था।

इस सुनसान मैदान में ठंड की ढलती शाम में यह औरत आयी कहां से—बिष्टुपद समझ ही नहीं पा रहा था। वह भी उसे घूरने लगा। औरत का रंग साँवला था, ढाँचा गोल गोल। चपटी नाक, पुष्ट छाती। सेहत इस कदर तरोताजा और उछली हुई कि छोटी सी साड़ी उसे संभाल नहीं पा रही थी। उसके हाथ में भी एक बड़ी सी कटारी थी।

काफी देर के बाद विष्टुपद ने पूछा—तुम कौन हो भाई ?

तीक्ष्ण पर डरी आवाज में वह बोली—कोई भी हूं, तुम यहां से चले जाओ।

—कहने से ही क्या जाया जा सकता है ? यहां पर मुझे काम है।

—क्या काम है ?

—है कुछ।...कहकर बिष्टुपद थोड़ा चुप रहा। उसके बाद बोला—इस सुन-

-सान जगह पर तुम क्यों अकेली आयी हो ?

वह औरत बोली—मुझे भी कुछ काम है ।

अनजाने में बिष्टुपद आगे कदम बढ़ा रहा था। अचानक वह औरत बड़ी तेजी से चिल्लायी—खबरदार। एक कदम भी आगे मत बढ़ाना, वरना कटारी चला दूंगी। बिष्टुपद चौंक उठा। देखा थोड़ी देर पहले का भय अब उस औरत में नहीं रहा। उसकी आंखों की पुतलियां चमक रही थीं। डर कर बिष्टुपद ने कहा—ठीक है। जब तुम्हारी इच्छा नहीं तो आगे नहीं बढ़ूंगा। पर तुम हो कहां की। कहां से यहां आयी हो, बताने में क्या हर्ज है ?

औरत कुछ नरम पड़ी। बोली—मैं तालडांगा में रहती हूं, वो...उत्तर की तरफ।

—वह तो बहुत दूर का रास्ता है। दो कोस तो होगा ही।

—हां। वो तो है।

—इतनी दूर से आयी हो ?

—जरूरत पड़ने पर आना ही पड़ता है।

—क्या जरूरत है कहो ?

औरत बोली—अब जानने की इतनी ही इच्छा है तो सुनो। मैं शाक सब्जी, फल की तलाश में आयी हूं।

बिष्टुपद अवाक् रह गया। हैरान होकर कहा—कैसी ताज्जुब की बात है। मैं भी उसी के लिए आया हूं।

औरत की आंखें फिर चमक उठीं। बोली—झूठ बोल रहे हो।

—कसम से कह रहा हूं। झूठ नहीं बोल रहा। बिष्टुपद ने व्याकुल होकर कहा—भगवान कसम। सुबह से बाल बच्चे भूखे हैं। पिछले तीन दिनों से एक पैसा भी नहीं कमा सका हूं। इस मैदान से अगर कुछ न ले जा सका तो बाल बच्चे मर जायेंगे।

बिष्टुपद के व्याकुल स्वर और उसके कातर भाव को देखकर महिला को उस पर विश्वास हो गया। फिर भी उसने पूछा—तुम्हारा कोई बुरा इरादा तो नहीं है न ?

—कहा न भगवान कसम। ठीक है। तुम मेरे पास आओ। तुम्हें छूकर कहता हूं।

—छूकर कहने की जरूरत नहीं है। तुम्हारा घर कहां है।

—पयारपुर—उस दक्षिण की तरफ। बिष्टुपद ने उंगली के इशारे से बताया।

—तुम्हारा घर भी तो बहुत दूर है। तीन दिन चलना पड़ता है। अपने ऊबड़ खाबड़ पीले दांत निकाल कर बिष्टुपद ने हंसकर कहा तुमने तो कहा न कि

जरूरत पड़ने पर दूर से भी आना पड़ता है....।

औरत बोली - वो तो है।

बिष्टुपद बोला —इतनी बातचीत हुई, किसी को किसी का नाम नहीं मालूम। मेरा नाम तो बिष्टुपद है। तुम्हारा ?

—निशि, निशिबाला।

थोड़ी देर की चुप्पी। उसके बाद बिष्टुपद ने कहा—एक बात कहना चाहता हूं।

—क्या ?

—तुम जिस काम के लिए आई हो, मैं भी उसी काम के लिए आया हूं। आओ न, हम दोनों मिलकर शाक सब्जी, फल-वल खोजें। ठंड की दुपहर है — अभी शाम मे ढल जाएगी। तुम जवान औरत हो। अकेली अकेली मैदान घूमना ठीक नहीं।

थोड़ी देर तक हिचकिचाने के बाद वह बोली—वही ठीक रहेगा। चलो, तुम्हारे साथ चलती हूं।

फिर वह खुद ही बिष्टुपद के पास आकर खड़ी हो गयी।

उसके बाद मैदान में घूमते हुए दोनों में एक अलिखित अनुबन्ध हुआ। यहां से जो कुछ भी मिलेगा वे बराबर का हिस्सा करेंगे।

उसके बाद मैदान की हर एक झाडी, हर एक गड्ढे में निशी और बिष्टुपद ढूंढने लगे। लेकिन दो चार छोटे-छोटे मटियारी कछुओं को छोड़ कर और कुछ नहीं मिला। इनके कड़े कड़े छिलके उतारने के बाद मांस मिलता भी कितना।

दोनों घूमते-घूमते आपस में बातें भी कर रहे थे। कभी निशी पूछती—घर पर तुम्हारे कौन कौन हैं ?

इस थोड़े से समय में बिष्टुपद के लिए उसके मन से डर और शंका निकल चुकी थी। उसे विष्टुपद पर पूरा भरोसा हो गया था।

बिष्टुपद बोला घर पर बाल बच्चे और बीवी है।

—कितने बच्चे हैं ?

—तीन। दो बड़े लडके और एक लड़की।

—तो पांच आदमियों की गृहस्थी है तुम्हारी ?

—हां।

—क्या करते हो तुम ?

—मजदूरी का काम करता हूं।

—उसमें गुजारा हो जाता है ?

—होता कहां है ? आधे दिन आधा पेट खाता हूं। बाकी के दिन उपवास।

थोड़ा सोचकर निशी बोली—जमीन-वमीन है कुछ ?

बिष्टुपद बोला—जमीन कहां से लाऊंगा ?

—तो फिर बस इसी शरीर का भरोसा भर है ।

—हां ।

—इसमें तो बड़ी तकलीफ है ।

—उपाय क्या है ? इसी तरह जितने दिन टिक सकता हूं, टिकूंगा ।

फिर बिष्टुपद बोला—केवल मेरी ही बात सुनोगी ? अपनी नहीं सुनाओगी ?

निशी बोली—कोई नयी बात तो मेरी है नहीं । शरीर की मजदूरी ही मेरा भी भरोसा है ।

—वह क्या मैं नहीं समझा ? तुमने क्या सोचा था ? मैं सब कुछ समझते हुए भी...।

—क्या पूछना चाह रहे हो ?

गर्दन मोड़ कर बिष्टुपद ने अपने साथी को एक बार देख लिया । उसके बाद बोला—मांग में सिंदूर नहीं । हाथ में शंख की चूड़ी नहीं । छोकरी का अभी तक ब्याह नहीं हुआ है क्या ?

अनमनी सी निशी बोली—हुआ था ।

—तो फिर ?

बिष्टुपद क्या जानना चाहता था, निशी समझ गई । शादी होने के बावजूद शंख की चूड़ी और सिंदूर की कमी थी । बिष्टुपद के मन में संशय था ।

भारी उदास आवाज में निशी बोली—मेरा मर्द रहा नहीं ।

बिष्टुपद ने जीभ से शोक सूचक आवाज निकाली । फिर बोला—इसी उम्र में मर्द को खो बैठी ?

निशी ने कोई जवाब नहीं दिया ।

बिष्टुपद फिर बोला—हुआ क्या था ? कोई बीमारी ?

निशी बोली—नहीं । जोतदारों के साथ लड़ने गया था । वहीं मारा गया । बर्छी घुसा कर पेट फाड़ डाला उन लोगों ने । नाड़ी तक पेट से बाहर निकल आयी थी । आंखों से देखा नहीं जा सकता था ।

कहते कहते एकाएक इस सुनसान मूक मैदान को चौंका कर वह चिल्लाकर रो पड़ी—ओ बाबा रे । मेरे जवान मर्द को उन लोगों ने मार डाला रे ।

बिष्टुपद ने थोड़ा संकोच किया । उसके बाद निशी के रूखे बालों पर हाथ फेरते हुए उसे ढांढस बंधाया—रोओ मत औरत । मत रोओ । नुकसान जो होना था, सो तो हुआ ही ।

थोड़ी देर में जब निशी का शोक संभला, बिष्टुपद ने पूछा—कितने बच्चे हैं तुम्हारे ?

अस्पष्ट सी आवाज में निशी बोली -- हैं नहीं ।

अच्छा ही है ।

निशी चुप रही ।

बिष्टुपद ने फिर पूछा— इस दुनिया में और कौन है तुम्हारा ?

—बूढ़ी सास है । दिन रात मुंह फाड़े पड़ी रहती है । बड़ी भूखी है बूढ़ी । पहाड़ समान बेटे को खा गई, फिर भी भूख नहीं मिटती उसकी । उसकी भूख मिटाने में ही मैं किसी दिन खत्म हो जाऊंगी ।

—जमीन वमीन कुछ है ?

—अगर होती तो शाक पत्तियां चुनने के लिए मैदान में चरती फिरती ?

दोनों ढूंढ रहे थे, ढूंढते ही जा रहे थे । पर मातृ रूपा यह जमीन आज बड़ी कंजूस हो गयी थी, बड़ी ही निर्दयी । चार मटियारी कछुओं के बाद अब तक पांच बेल मिले थे । इसका आधा हिस्सा तो कुछ भी नहीं बनता ।

ठंड की शाम ने और भी गाढ़ा रंग पकड़ लिया । धूप बिलकुल नहीं थी । पश्चिम की ओर पेड़ पौधों की आड़ में सूरज ने कब टुप से डुबकी लगा ली, बिष्टुपद और निशी को मालूम ही नहीं चला । बड़ी तेजी से चारों तरफ की रोशनी धुंधली पड़ती जा रही थी ।

सुबह से ही आकाश में चारों ओर बदलों के टुकड़े लटक रहे थे । बूंद-बूंद पानी भी पड़ने लगा था । उत्तर की ओर से कनकनाती ठंडी हवा हाड़ मांस को चीरती जा रही थी । ठंडे घास भरे मैदान में ओस जमा हो रही थी ।

दाहिनी तरफ से निशी बोली—आज बहुत ठंड है । है न ?

अनमना सा बिष्टुपद बोला -- हां ।

—फिर पानी भी पड़ने लगा ।

—हां ।

बिष्टुपद निशी की बातों का जवाब तो दे रहा था पर मन ही मन कुछ और ही सोच रहा था । हिस्से में तो दो कछुए और ढाई बेल ही मिलेंगे, इसे लेकर घर पर किस-किस के मुंह में दाना डालेगा ?

बिष्टुपद बोला—और भी तो कुछ चाहिए निशी । मेरे घर पर तो पांच पेट हैं ।

निशी बोली—ठीक कह रहे हो । पर शाम ढल चुकी है, पानी भी बरसने लगा है । अब और क्या मिलेगा ?

निशी की आवाज में संशय था ।

—देखता हूं --कहते कहते एकाएक बिष्टुपद की आंखें चमक उठीं । सामने की तरफ उंगली दिखाकर उसने उत्तेजित होकर पूछा—वो क्या है री ?

निशी उस तरफ देखकर बोली - सूअर है । लगता तो वही है ।

—हां । ठीक बता रही हो ।

—वो वहां क्या कर रहा है ?

बिष्टुपद ने ध्यान से देखकर बताया --मिट्टी खोद रहा है ।

निशी बोली—सुअर जब मिट्टी खोद रहा है तो इसका मतलब है कि वहां कुछ है । मिट्टी के नीचे कुछ अगर न होता तो सूअर बेकार में मिट्टी नहीं खोदता ।

बिष्टुपद बोला—चलो आगे बढ़ कर देखे ? कहते कहते उसके दिमाग में बिजली की तरह एक बात कौंध गई । जब कुछ मिला ही नहीं तो बिष्टुपद इस सूअर को ही मार डालेगा । इस जानवर का वजन कम से कम एक मन तो होगा ही । आधा हिस्सा निशीबाला को देने के बाद जो बचेगा, उससे पांच प्राणियों के लिए तीन चार दिन की खुराक जुट जाएगी । उसके बाद की चिंता बाद में की जाएगी ।

मन की बात निशी को बताने पर भयभीत होकर वह बोली—बात तो बढ़िया है, पर...

---पर क्या ?

—इतने बड़े जानवर के साथ लड़ सकोगे ? ऊपर से अगर दंतेल होगा तो तुम्हारी खैर नहीं ।

बिष्टुपद बोला -- मेरे पास कटारी कुल्हाड़ी सब कुछ तो है ।

निशी बोली—कुल्हाड़ी कटारी से उस यमदूत को तुम घायल भी नहीं कर पाओगे ।

बिष्टुपद कुछ सुनने समझने के लिए तैयार नहीं था । बोला—घायल न कर सका तो न सही । पर कोशिश तो करूंगा ही ।

निशी को सोचने का मौका न देकर बिष्टुपद आगे बढ़ गया । निशी क्या कर सकती थी । उसने बिष्टुपद का पीछा किया ।

नजदीक पहुंच कर बिष्टुपद ने देखा—वह दंतैला नहीं था, जंगली था । मिट्टी खोद खोद कर काफी गड्ढा बना चुका था । गड्ढे पर नजर पड़ते ही उसकी आंखें चमक उठीं । एक विशाल जंगली आलू मिट्टी में गड़ा हुआ आधा दिखायी दे रहा था । वह समझ गया कि उसने ही उस आलू को खोद निकाला था ।

बिष्टुपद ने अंदाज लगाया कि कम से कम यह आलू दस सेर का होगा । यह भी कुछ कम नहीं । मन ही मन उसने तय कर लिया कि अब उस के साथ लड़ने की जरूरत नहीं । उसे भगा कर ही वह आलू को हड़प लेगा ।

पीछे से लोभी की आवाज में निशी बोली—कितना बड़ा आलू है, देखा

आदमी ?

विष्टुपद बोला—हां । देख रहा हूं ।

वह अपने मन से मिट्टी खोदता जा रहा था । आदमी की आवाज सुनते ही उसने चौंक कर मुह उठाया । उस की छोटी-छोटी आंखें मटमैली और लाल-लाल थीं, सारा शरीर और चेहरा मिट्टी से पोता हुआ था ।

उसको भगाने के लिए बिष्टुपद ने जीभ से उर—रा रा—हट--हट हेई की आवाज निकाली । वह हिला तक नहीं । एक टक बिष्टुपद को ताकता रहा । उसकी छोटी-छोटी आंखों में संदेह था ।

बिष्टुपद ने फिर आवाज निकाली । उसके साथ-साथ निशी ने भी, पर वह निश्चल खड़ा रहा ।

बिष्टुपद बोला—साला खच्चड़ है । लगता तो नहीं कि यहां से हिलेगा ।

निशी बोली—उसको पता लग चुका है कि हम आलू को उठा ले जायेंगे ।

—हो सकता है । बिष्टुपद कहने लगा । हल्ला करने से कोई फायदा नहीं छोकरी । साले का बदन कुल्हाड़ी का वार खाने के लिए गुदगुदा रहा है । इतना कहने के साथ ही साथ उसने कंधे से कुल्हाड़ी उतार कर सूअर की गर्दन पर बैठा दी ।

पर वार ठीक जगह पर नहीं पड़ा । उसकी गर्दन का थोड़ा सा छाल उतार कर वार फिसल गया था । हिंसक दृष्टि से पल भर बिष्टुपद को ताक कर उस ने एकाएक बिष्टुपद को खदेड़ा ।

वह एकाएक इस कदर खदेड़ेगा, बिष्टुपद ने सोचा नही था, जी जान लेकर दोनों दौड़ने लगे ।

उन्हें काफी दूर तक दौड़ाने के बाद सूअर फिर से आलू के पास जा पहुंचा । बिष्टुपद ने भी हिम्मत नहीं हारी । वे लोग भी फिर से उसके करीब लौट आए । आते ही विष्टुपद ने कुल्हाड़ी का एक वार लगाया । इस बार उसकी पीठ का बहुत सा मांस उतर आया । जख्मी जानवर ने फिर से बिष्टुपद को खदेड़ा ।

इस बार उसने बिष्टुपद को काफी दूर तक भगा दिया । थोड़ी देर के बाद बिष्टुपद ने फिर उसके पास आकर उस पर वार किया । कुछ समय तक इसी तरह चलता रहा ।

दूसरी तरफ सर्दी की शाम गाढ़ी हो चुकी थी । पेड़ पौधों की आड़ में छायाएं लम्बी हो गयी थीं । थोड़ी देर पहले की बूंदा बांदी अब तेज धार का रूप ले चुकी थी, उत्तर की हवा तो चल ही रही थी ।

निशी बिल्कुल निराश हो चुकी थी । उसने कहा—रहने दो आदमी । उस यम-

राज से तुम आलू नहीं छीन पाओगे।

पर बिष्टुपद ने भी जिद ठान ली थी। उसने कहा—कभी नहीं। आलू लिए बिना मैं यहां से नहीं हिलूंगा। मैं आलू भी उठाऊंगा और उस के बच्चे को भी खत्म कर डालूंगा। मेरे दिमाग में एक बात आयी। इस बार उसके सामने हम दोनों नहीं आएंगे। मैं उसके आगे खड़ा रहूंगा और तुम उसके पीछे। अगर वह मुझ पर झपटा तो तुम पीछे से वार करना और अगर तुम पर झपटा तो मैं उसे काट डालूंगा।

परिकल्पना स्वरूप बिष्टुपद उस के सामने और निशी उसके पीछे होकर खड़े रहे।

उस ने क्या समझा, क्या मालूम। शायद उसने भी अंदाज लगा लिया कि इतने कष्ट से उसे मिले हुए आलू के हिस्सेदार आ खड़े हुए हैं।

बिष्टुपद के वार करने के पहले ही वह गर्दन लटकाकर बिष्टुपद की तरफ दौड़ा। इस बार जानवर इतनी तेजी से भागा कि बिष्टुपद को अपने को बचाने का समय ही नहीं मिला। सुबह से पेट मे एक दाना भी नहीं पड़ा था। शरीर में ताकत कुछ नहीं रह गयी थी। मन भर उसका धक्का खाकर बिष्टुपद छिटक कर गिर पड़ा और तुरंत उसे लगा कि उसकी जांघ में सूअर के दांत घुसते जा रहे हैं।

बिष्टुपद चिल्ला उठा—मुझे मार डाला, मार डाला, मार डाला—बचाओ बचाओ। कहते हुए उसका हाथ अपने कमर तक चला गया। तेज धार वाली कटारी को खोल कर उसने उस की नाक के नीचे सारी ताकत लगाकर उसे भोंक दिया। तुरन्त ही खून का फव्वारा छूट पड़ा।

पीछे की ओर से निशी उस पर वार पर वार करने लगी। क्षत-विक्षत जानवर अब बिष्टुपद को छोड़ कर पीछे की तरफ मुड़ कर निशी पर झपट पड़ा। वह भी अपने को नहीं संभाल सकी। छिटक कर गिर पड़ी। सूअर के दांतों से उसका शरीर चिर गया। उसी हालत में वह आंधी की तरह वार पर वार करती जा रही थी।

बिष्टुपद की जांघ काफी जख्मी हो गयी थी। खून भी बह रहा था। पर उसने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। पागलों की तरह दौड़ कर उसने उस पर कुल्हाड़ी का वार किया। निशी को छोड़कर वह फिर बिष्टुपद की ओर दौड़ा। जमीन पर से उठ कर निशी ने पीछे से आक्रमण किया।

चोट खाकर वह एक बार बिष्टुपद तो एक बार निशी की तरफ दौड़ रहा था। देखते ही देखते सर्दी की शाम के धुंधलके में वह सुनसान मैदान दुनिया की आदिम रणभूमि में बदल गया। खाद्य के लिए मानव-मानवी हिंसक प्राणी के साथ

जी-जान से लड़ रहे थे ।

काफी देर तक की लड़ाई के बाद कुल्हाड़ी की चोट से छटपटा कर वह कलेजा फाड़ कर चिल्ला उठा । असहनीय दर्द से थोड़ी देर तक जमीन पर लुढ़कता रहा, फिर तीर की तरह पश्चिम के जंगल की ओर दौड़ता हुआ आंखों से ओझल हो गया ।

उस के भागने के बाद बिष्टुपद और निशी काफी देर तक बेजान से पड़े रहे । उसके बाद हांफते हांफते दोनों ने उठकर आलू के बाकी हिस्सा खोदकर निकाला ।

आलू कछुओं और बेल को एक जगह इकट्ठा कर वे अपना हिस्सा करने ही जा रहे थे कि उसी समय जोरों की बारिश आयी । जब तक लड़ाई चलती रही, उन्हें कुछ पता ही नहीं चल पाया था । उत्तेजना और आदिम हिंस्रता के अलावा शरीर और मन को किसी और चीज का बोध ही नहीं रहा था । अब बिष्टुपद को लगा, उसे बड़ी जोरों से ठंड लग रही है । हड्डियां ठंड के मारे कांप रही थीं । दांत पर दांत बैठ रहे थे ।

बिष्टुपद बोला—क्या पाजी बरसात शुरू हुई है ।

निशी कांपती हुई बोली—यहां खड़े रहने पर हम जरूर मर जाएंगे । कुछ उपाय करो ।

—कहां जाऊं, कहो तो ।

कुछ सोचकर निशी बोली—पश्चिम की तरफ एक श्मशान है । वहा एक छोटा सा कमरा है । चलो वहीं चलते है ।

बिष्टुपद को याद आ गया । बोला हां, हां, चलो वहीं चलें ।

दोनों दौड़ते हुए श्मशान की झोंपड़ी तक जा पहुंचे । यह कमरा कभी श्मशान में आए हुए शव यात्रियों के लिए बना था ।

खून पोंछ कर निशी और बिष्टुपद थोड़ी देर तक बैठे बैठे हांफते रहे । उसके बाद बिष्टुपद बोला—मुझे भूख लगी है छोकरी ।

निशी बोली—मुझे भी भूख लगी है । आओ खाने का जुगाड़ करें ।

फिर निशी ने उस जंगली आलू को थोड़ा काटा ।

बिष्टुपद ने एक कछुए की खोली उतार कर उसका मांस निकाला ।

थोड़ी देर पहले कोई मुर्दा जला गया था । वहां से थोड़ी आग ला कर मांस और आलू को भून कर दोनों ने खा पी कर संतोष की डकार ली ।

बिष्टुपद ने कहा—सारा दिन गुजर गया, अब जाकर पेट में कुछ पड़ा है ।

निशी बोली—मुझे भी ।

—खाना तो खत्म हुआ । अब अगर एक बीड़ी मिल जाती । बिष्टुपद ने कहा ।

—हां, मुझे भी पान का बड़ा शौक है । अगर मिल जाता तो...।

जोरों की बारिश हो रही थी। आकाश को चीरती हुई बिजली गरज रही थी।

निशी बोली—यह बारिश आज रुकेगी नहीं।

—हां, ऐसा ही लगता है। बिष्टुपद ने सर हिलाया।

—आज की रात शायद यहीं पर बितानी पड़ेगी।

—हां।

थोड़ी देर के बाद बिष्टुपद बोला—बैठकर क्या होगा? मैं तो सो रहा हूं।

निशी बोली—मैं भी सो रही हूं।

कमरे के दोनों तरफ दोनों सो गए। बीच में काफी फासला था।

रात जब और भी गाढ़ी हुई तो अचानक निशी बोली—आदमी...।

रात के दूर किसी छोर से बिष्टुपद ने आवाज दी—क्या कह रही हो?

—मेरे पास आओ।

—क्यों?

—ठंड बहुत है। मुझे थोड़ा सा बांहों में लपेट लो न।

इस दुर्योग से भरी ठंडी रात में एक दूसरे के शरीर की गर्मी को पकड़ रखने के लिए निशी और बिष्टुपद दोनों एक दूसरे से लिपट कर सोए रहे।

दूसरे दिन सुबह कछुए और लड़ाई में जीते हुए जंगली आलू का अपना-अपना हिस्सा लेकर निशी गयी उत्तर की तरफ और बिष्टुपद दक्षिण की ओर चल पड़ा।

मुझे देखिये

शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय

कृपया मेरी तरफ एक बार देखिए। इधर देखिए। मैं यहां हूं। थोड़ी देर पहले किसी तरह धक्कम-धुक्का कर बस के पांवदान पर पैर टिकाकर उठ पड़ा और फिर घनी भीड़ में इसके-उसके बगल के नीचे से चूहे की तरह जगह बनाता हुआ इत्ती दूर चला आया। बस की छत से लगा डंडा काफी ऊंचा है—मैं ठहरा छोटे कद का आदमी—उतनी दूर मेरा हाथ ही नहीं पहुंचता। मैं सीट के पीछे का हिस्सा पकड़ कर खड़ा रहता हूं। फिर थोड़ी देर में अपने को ढीला छोड़ देता हूं। बस के हिलने के साथ मैं भी झूला झूलने लगता हूं पर आस-पास खड़े लोगों के सहारे अपने को गिरने से बचा लेता हूं। इसके लिए मेरे आस-पास के खड़े लोग मुझ पर कोई खास नाराज नहीं होते, क्योंकि मेरा वजन इतना कम है कि किसी पर मैं गिर भी पड़ूंगा तो मेरे भार का उसे एहसास नहीं होगा। हां, इस समय मैं बस के पीछे की सीट को पकड़ कर खड़ा हूं। मेरे दोनों तरफ पहाड़ की तरह ऊंचे-ऊंचे लोग हैं। वे लोग मुझे इस कदर ढंके हुए हैं कि मैं शायद दिखाई ही नहीं पड़ रहा हूं, या दिखाई देने पर भी मुझे कोई गौर ही नहीं कर रहा है। यही तो मुश्किल है। बहुत से लोग मुझे देखते हैं, पर मुझ पर गौर नहीं करते। इस समय मैं जिनके पास खड़ा हूं या जिसके आमने-सामने हूं, हो सकता है वे मुझे देख रहे हैं, लेकिन निर्लिप्त ढंग से—मानों मेरे न रहने पर भी किसी को कोई लाभ या हानि नहीं। शायद इसका कारण यह है कि मेरे चेहरे में ऐसा कुछ नहीं है जिससे मैं अलग ढंग से पहचाना जाऊं। जी हां, मेरी ऊंचाई सिर्फ पांच फुट दो इंच है। दुबला हूं पर इतना भी नहीं कि लोगों की नजर पड़े। काला हूं पर इतना काला नहीं कि एक बार लोग और मुड़ कर देखें। चालीस साल के बाद मेरे बाल झड़ तो गए हैं, पर गंजा भी नहीं हूं—गंजे को भी कुछ लोग गौर से देखते हैं। और मेरा चेहरा—वह न तो बहुत ही बदसूरत है और न ही खूबसूरत। मेरी नाक चपटी भी नहीं, छोटी

भी नहीं। आंख बड़ी भी नहीं, और बटन जैसी भी नहीं। इसीलिए तो कह रहा हूं कि इस भीड़ में से क्या कोई मुझे देख भी रहा है? नहीं, कोई नहीं देख रहा और देखने पर भी गौर नहीं कर रहा —यह मुझे मालूम है।

शादी के बाद मेरे साथ एक मजे की घटना घटी थी। शादी के रस्म-रिवाज खतम होने के दो एक दिन बाद मैं अपनी पत्नी को लेकर बाजार गया था। दो-चार दिनों में ही ससुराल जाना था, उसी सिलसिले मैं मिलनी के लिए कुछ कपड़े खरीदने थे। सड़क पर आकर मैंने अपनी पत्नी से पूछा—न्यू मार्केट चलोगी? मेरी जो स्थिति है उसमें न्यू मार्केट में खरीदारी करना कोई माने नहीं रखता। हम लोग बराबर घर के पास के कटरे में सस्ते में कपड़े-वपड़े की खरीदारी कर लिया करते हैं। फिर भी मैंने न्यू मार्केट चलने का आग्रह इसलिए किया था क्योंकि मेरी पत्नी गांव की लड़की थी और न्यू मार्केट उसने देखा नहीं था। दूसरा कारण यह भी था कि मेरे ससुराल वाले मुझसे अधिक पैसे वाले थे। मैं ने न्यू मार्केट की बात इसलिए उठाई थी ताकि मेरी नयी पत्नी खुश होगी। और ससुराल के लोग जब सुनेंगे कि मैंने कपड़े न्यू मार्केट से खरीदे हैं तो उन पर मेरा रौब पड़ेगा। पर न्यू मार्केट का प्रस्ताव मेरी बड़ी भारी भूल निकली। अगर मैं वहां नहीं जाता तो वह घटना घटती ही नहीं। मामला यह हुआ कि न्यू मार्केट में घुसने के बाद दूकानों की चमक-दमक मेरी पत्नी देखकर मोहित हो उठी। जिस किसी दूकान के सामने खड़ी हो जाती, शो केस में आंखें टिका कर पांव-पांव आगे बढ़ती। मेरी तरफ वह देखना तक भूल गयी। उस समय मेरी पत्नी बिलकुल नयी-नयी थी। इस बात को लेकर स्वाभिमान करना मेरे लिए स्वाभिमान ही था। कुछ-कुछ दिखाकर उस पर मैं रौब जमाने की चेष्टा करता, पर वह विशेष किसी चीज पर ध्यान दिये बिना सब कुछ को देखती निहारती रही। मेरा स्वाभिमान जब चरम सीमा पर पहुंच उठा तो जानबूझ कर मैंने अपनी चाल भी धीमी कर ली। मेरी पत्नी ने इस पर गौर नहीं किया और अपने ही मन से चलती रही। यह देखकर मैं एकदम रुक गया पर मेरी पत्नी चलती ही रही। दूकानों की तरफ वह विह्वल नजरों से देखती। गार्ड आफ आनर देने के समय सिपाही जिस ढंग से चलते हैं, वह उसी मुद्रा में चल रही थी। मैं दूर खड़ा देखता रहा, वह चकाचौंध रोशनी के बीच भीड़-भाड़ को चीरती हुई अकेली आगे बढ़ी जा रही थी। बीच-बीच में वह कुछ बोल भी रही थी। मैं साथ में हूं, यह जानकर बोल रही होगी पर सच में मैं साथ में हूं या नहीं, यह उसने गौर नहीं किया। इस तरह कुछ दूर आगे बढ़ने के बाद किसी चीज को देखकर बड़े उत्तेजित ढंग से वह मुझे चीज दिखाने के लिए मुंह फिरा कर मुझे खोजने लगी तो बिलकुल खड़ी की खड़ी रह गयी। चारों तरफ ताक-

ताक कर वह बड़े व्याकुल भाव से मुझे खोज रही थी। उसी समय मजाक करने का लोभ में संभाल नहीं पाया। न्यू मार्केट में भूलभुलैया की तरह जो गलियां है, उनमें से जो सामने पड़ी, मैं उसी में घुस पड़ा। सोचा, वह देहाती लड़की ढूंढती रहे मुझको, वह मेरा ख्याल ही नहीं रख रही थी, उसका अब मजा चखे। मैं मन ही मन हंसता रहा, और झांककर देखा कि मेरी पत्नी रोती सूरत बनाकर चारों तरफ नजर घुमाती हुई तेज गति से इधर-उधर जा रही थी। वह मेरी ओर भी आई, पर एक बार भी वह मुझे पहचान नहीं पाई। पागल की भांति मुझे खोजती हुई मुझे ही पार कर गयी। तब मैंने सोचा देहात की होते हुए भी यह लड़की बड़ी चालाक है। मैं जान-बूझ कर छुपा हुआ हूं, यह सोचकर जान-बूझ कर वह मुझे पहचान भी नहीं रही है। पर उसके चेहरे का करुण भाव जब करुणतम हो उठा तो लगा वाकई उसने मुझे नहीं देखा है। अंत में घड़ी की एक दुकान के सामने उसका रास्ता रोककर मैंने कहा—इधर—मैं यहां हूं। यह बुरी तरह चौंक उठी, अवाक् नयनों से मुझे देखती रही। थोड़ी देर तक देखते रहने के बाद एक लम्बी सांस लेकर कांप-कांप कर हंसकर बोली—तुम! तुम! कहां थे तुम! कितनी देर से मैं तुम्हें ढूंढ रही हूं। ताज्जुब की बात है कि उस समय मुझे लगा कि वह सच बोल रही है। घर लौटते समय मैंने उससे कहा मैंने लुका-छिपी खेलते समय तो बार-बार तुम्हें पकड़ने का मौका दिया। मैं सामने ही तो खड़ा था। पहले तो उसने विश्वास ही नहीं किया। पर मेरे बार-बार कहने पर वह अचरज के साथ बोली सच कह रहे हो। तो फिर कभी इस तरह तुम नहीं छुपना। ऐसा करने से कभी बड़ी मुश्किल में हम पड़ सकते हैं।

—रोक के भाई कंडक्टर। मैं यहीं उतरूंगा...देखिए भाई साहब...देखिए। मेरा चश्मा है, संभाल के'...पर वह देखिए। मेरी बात किसी ने सुनी नहीं। मेरे उतरने के पहले ही कंडक्टर ने सीटी बजा दी और एक मोटा सा आदमी गेट रोक कर अचल मुद्रा में खड़ा रहा। हवाई शर्ट डाले एक छोकरे की कोहनी के एक धक्के से मेरा चश्मा भी टेढ़ा हो गया। इसीलिए तो मैं कह रहा हूं, कोई मुझ पर गौर नहीं करता। बस में नहीं, ट्राम में नहीं, सड़क चलते नहीं।

आज का दिन वैसे अच्छा ही है। मीठी हवा और धूप मिला एक प्यारा सा दिन। बरसात का मौसम और इसलिए गर्मी भी तीखी नहीं। इस समय इस रास्ते से चलना मुझे अच्छा ही लगता है। वो...वो थोड़ी ही दूर पर जो एक चौराहा दिखाई पड़ रहा है, बस उसके आगे ही मेरा दफ्तर है यह देखिए चौराहे के पास पहुंच कर मैं रास्ता पार ही करने वाला था कि ट्रैफिक पुलिस ने हाथ दिखा दिया। मेरे पार होने के रास्ते पर रास्ता रोककर कितनी ही गाड़ियां

खड़ी थीं। क्यों भई ट्रैफिक पुलिस, मैं रास्ता पार कर रहा था, क्या तुम्हें दिखाई नहीं पड़ रहा था। थोड़ी देर हाथ ऊपर रखते तो क्या हाथ टूट जाता ?

जिस लिफ्ट में खड़ा होकर मैं दुतल्ले पर जा रहा हूं, वह लिफ्ट संभवत: सौ साल पुरानी है। इसके चारों ओर काले लोहे की ग्रिल है—ठीक खुले पिंजरे की तरह। बीच-बीच में लिफ्ट थोड़ी कांपती है और बहुत ही धीरे-धीरे ऊपर उठती है। पिछले तेरह साल से मैं इसी लिफ्ट से ऊपर उठता रहा हूं। पिछले तेरह सालों से—सप्ताह के छ: दिन लिफ्टमैन राम स्वरूप अभोगी हमें ऊपर ले जाता है। क्यों भाई राम स्वरूप तुमने तो मुझे छोटे में ही देखा था—उस समय मैं यही कोई छब्बीस सत्ताईस साल का था। उस समय मेरे चेहरे पर बुढ़ापे की छाप नहीं थी। अब बोलो तो मेरा नाम क्या है। अगर सच में मैं यह सवाल कर बैठूं तो राम स्वरूप हंस पड़ेगा। बोलेगा अरे जरूर याद है, आप तो अरविंद बाबू हैं।

पर नहीं। मैं किसी भी जमाने में अरविंद नहीं था। मैं हमेशा से बचपन के दिनों ही से हूं अरिंदम बसु।

मेरी नौकरी बैंक की है। दुतल्ले में मेरा दफ्तर है। पहले मैं दूसरे-दूसरे विभागों मे था पर पिछले दस साल से मैं कैश में बैठ रहा हूं। मैं बहुत ही झटपट रुपया गिन सकता हूं। हिसाब मैं भी पक्का हूं। इसलिए अफसर मुझे कैश से दूसरे किसी विभाग में नहीं भेजते। अगर कभी गया भी तो बुला लिया गया। पिछले दस सालों से मैंने बड़ी कुशलता के साथ काम किया है। कभी पेमेंट में तो कभी रिसीविंग में। अधिकतर पेमेंट के डेस्क पर ही मैंने काम किया है। कारण वहीं पर सबसे अधिक सजग आदमी की जरूरत पड़ती है। एक तार के पिंजड़े समान घेरे के बीच में बैठता हूं। मेरे सामने कई खानों वाली टेबल है जिसमें किसी खाने में रुपयों के नोट, और किसी खाने में खुदरे पैसे रहते हैं। किस खाने में किस वक्त क्या है, यह मैं आँख मूंद कर ठीक-ठीक बता सकता हूं। पेमेंट के समय खाना खोल कर मैं गिन कर रुपए निकालता हूं, फिर खाना बंद करता हूं। उसके बाद फिर गिनता हूं, फिर...रुपए...देकर अगले पेमेंट के लिए हाथ बढ़ाता हूं टोकन लेकर फिर ड्राअर खोलता हूं, रुपए गिन कर...एक ही क्रम लगा रहता है। घेरे में बनी छोटी सी खिड़की से जो लोग मुझे देखते हैं, उन्हें मेरा काम क्लांतिजनक लगता होगा। सोचते होंगे, बड़ा ही एकरस काम है। वे मुझे देखते हैं, पर मुझे याद नहीं रखते। रामबाबू हमारे बड़े पुराने कस्टमर हैं -बहुत बड़े कारखाने के मालिक हैं। बैंक के एजेंट भी उनकी खातिर करते है। पर आदमी बड़े झक्की किस्म के हैं। अधिकतर अपना आदमी न भेज कर स्वयं चेक भुनवाने आ जाते हैं। कितनी ही बार मैंने उन्हें पेमेंट दिया है

खिड़की से हंसकर उन्होंने मुझे धन्यवाद भी दिया है। एक बार मेरे बड़े साले ने कलकत्ता आकर घूमने में बहुत रुपया उड़ाया था। एक बार वह पार्क स्ट्रीट के किसी बड़े रेस्तरां में मुझे भी ले गए। वहां पहुंच कर मैंने देखा, राम बाबू बैठे हैं। अकेले ही हैं। हाथ में है सफेद स्वच्छ जिन का गिलास। वे भावुक आंखों से देख रहे थे। सच पूछिए तो भाग्योन्नति की बात मैं सोचता-वोचता नहीं। कम से कम इस कारण तो भेंट करने की बात मैंने सोची ही नहीं थी। मैं तो पुराना जाना पहचाना चेहरा देख कर ही आगे बढ़ गया था। अचानक रामबाबू भौं तानकर बोले मैंने आपको कहीं देखा है। जरा कहिए तो। याद ही नहीं आ रहा है।' उस समय मेरे साले के सामने मुझे बहुत शर्म आ रही थी। अगर इस आदमी ने सचमुच ही मुझे नहीं पहचाना, अगर वाकई यह आदमी घमंडी ठहरा, तो मेरी तो ख्वामख्वाह बेइज्जती हो जाएगी। मैंने ताव से अपने बैंक का नाम बताया। कहा कि मैं कैश में...। तुरंत स्वच्छ जिन की तरह रामबाबू का चेहरा भी साफ हो गया। प्रसन्न मुद्रा में बोले, 'पहचान रहा हूं। बात क्या है जानते हैं ? वह उस छोटी सी खिड़की और उस पिंजड़ेनुमे जगह में ही आपको देखने का अभ्यस्त हो गया हूं। अचानक इस जगह पर—आप समझे नहीं। असल बात तो यह है कि एक पर्सपेक्टिव होता है—उसके सिवा आदमी का और है ही क्या कि जिससे वह पहचाना जाए ? उस पिंजड़े की खिड़की के अंदर जिस तरह आप हैं, उसी तरह यह कोट-पैंट और यह गंजा सिर—इस में मैं हूं। इन सब से अगर हमें अलग कर दिया जाए तो हम लोगों का कोई परिचय नहीं है। देखिए न, थोड़ी देर पहले में पर्सपेक्टिव की बात सोच रहा था। बचपन में हम लोग रेलवे कालोनो में रहते थे। मेरे पिताजी रेल की नौकरी करते थे। जब हम कटिहार की रेलवे कालोनी वाले क्वार्टर में थे तो अक्सर बगल वाले क्वार्टर से एक लड़की आया करती थी। उसकी मां सौतेली थी, इसलिए घर में उसे प्यार नहीं मिलता था। हमारे घर में रसोई में चूल्हे के पास मेरी मां के पास आकर वह कभी-कभी बैठ जाया करती थी। बड़ी सिमट कर फटे हुए फ्राक से घुटने ढंक कर परांठे बेला करती थी। रोती हुई मेरी छोटी बहन को गोद में लेकर सुलाती थी। मां मुझे कहती, "मैं तेरी शादी उसी के साथ कर दूंगी।' यह सुनकर मैं उस लड़की को अच्छी तरह से देखता था--और मुझे नशा सा आ जाता था। कितना करुण, सूखा चेहरा था उसका। फिर भी कितनी सुंदर थी वह, मानो धरती पर ज्यादा दिन रहने के लिए नहीं आई हो। इतना कहकर रामबाबू ने एक लम्बी सी सांस ली।

मैंने व्याकुल होकर पूछा, "उसके बाद क्या हुआ ? वह मर गयी क्या ?" राम बाबू ने सर हिलाया, "नहीं, नहीं, मरेगी क्यों। बड़े होकर मैंने उसी से तो

शादी की । वह अब भी मेरी पत्नी है । भयंकर मोटी हो गई है, तिस पर बदमिजाज । मुझे भी अपने शासन में रखती है । जब देखता हूं कि वह फ्रिज खोल रही है, अलमारी से गहने निकाल रही है, नौकर को डांटती है या ड्राईवर को गाड़ी निकालने के लिए कह रही है, तब सच में विश्वास नहीं होता कि यह वही बेला है—जिसकी बीमारी में मां संतरे दे आयी थी । आज की ही बात लीजिए । उसके साथ खूब झगड़ा करके निकला हूं । मन में तनाव था । उन दिनों का वह प्यार कब खत्म हो गया, पता ही नहीं चला । पर यहां एकांत में बैठकर वही पुराने दिन, चूल्हे के पास बैठी फटी फ्रॉक से घुटने ढँक कर उसके बैठने का ढंग मुझे याद आ गया । मुझे अपनी मां की याद आयी । मेरी मां असीम ममता से उसके बैठने की दीन भंगिमा को देखा करती । यहां बैठेबैठे मेरा मन भी प्यार से भरा-भरा जा रहा है । घर लौटते ही उसकी नाराजगी दूर करने की कोशिश करूंगा । समझे आप । कहकर राम बाबू सफेद स्वच्छ जिन को ओठों से लगाकर हंसे । फिर बोले, 'वह जो खिड़की नुमा चीज है—जिसके जरिए आपको देखता हूं, वही सच्चाई है—वही खिड़की...।

यह जो तेईस-चौबीस साल का लड़का जो इस समय पेमेंट के लिए मेरे सामने खड़ा है, पीतल के टोकन को अनमने भाव से ठक-ठक कर रहा है, वह मुझे पहचानता है । उसके पिताजी पुरानी गाड़ियों की खरीद-बिक्री का व्यापार करते हैं । पहले उसके पिता आते थे, अब उनका लड़का आता है । कभी-कभार नजरें मिल जाने पर पूछ लेता हूं, "क्यों, पिताजी अच्छे तो हैं ?" वह खुश होकर सर हिलाकर कहता है, 'हां' । पर मुझे संदेह होता है कि कभी अगर अचानक मुझे यहां से हटा दिया जाए और आम किस्म के साधारण चेहरे के किसी आदमी को इस कुर्सी पर बैठा दिया जाय तो इस फर्क को वह समझ ही नहीं पाएगा । वह तब भी अनमना सा खड़ा-खड़ा पीतल के टोकन धीरे-धीरे ठोकता रहेगा । अनमनी नजरों से ही नए चेहरे को देखकर परिचित सी हंसी देगा । गलती समझने में थोड़ा समय लगेगा । क्योंकि सच में उसने तो मुझे कभी देखा ही नहीं । हो सकता है वह अपनी नई प्रेमिका के बारे में सोच रहा है या फिर नया स्कूटर खरीदने की बात सोच रहा है । उसने गर्दन मोड़ कर रिसेप्शन में बैठी लड़की की तरफ कई पल ताका, उसके बाद घड़ी देखी । एक बार अपने टोकन का नम्बर देखा, खिड़की में देखा । मेरे थके हाथ नोटों का एक मोटा बंडल गिन रहे हैं । एक नजर मुझे देखकर उसने नजर घुमा ली । लेकिन मैं जानता हूं कि उसने मुझे देखा नहीं । पन्द्रह मिनट के बाद दिन के दो बजेंगे । उस समय कैश बंद करके मैं नीचे खाना खाने के लिए जाऊंगा । तब अगर रास्ते में उससे मेरी भेंट हो जाए या फिर जब मैं फुटपाथ की दुकान पर थिन अरारुट का बिस्कुट

और मिट्टी की प्याली में चाय पी रहा होऊं तो क्या वह मुझे पहचान पाएगा ?

केले कैसे दिए ? चालीस पैसों का जोड़ा। क्या कहते हो ? हां—हां अच्छे केले हैं न, यह मैं जानता हूं। पहचानता भी हूं। सुनहरा पीला रंग, चिकना बदन, विशाल चेहरा—अच्छा केला तो दिख ही रहा है हालांकि आज मेरे केले खाने का दिन नहीं है। कल ही तो मैंने खाया था। दो दिनों तक मैं लगातार केले खाता हूं। दो भई एक केला। नहीं, नहीं, एक ही चाहिए—यह लो बीस पैसे। अहा बड़ा अच्छा केला है। बहुत खूब। खाने के बाद भी उसकी याद में छिलके को मैं हाथों में पकड़े रहा। दस पन्द्रह मिनट में इधर-उधर घूमता रहा। केले का छिलका मेरे हाथ में ही था। मेरे चारों तरफ लोग-बाग निरुत्तेजित ढंग से चल फिर रहे थे। बड़े निर्विकार चेहरे थे उनके। इन लोगों ने कभी लड़ाइयां नहीं लड़ी हैं। देश या जाति के लिए इन्होंने जान नहीं गंवायी है। यहां तक कि इन्होंने एक साथ मिलकर किसी कठिन समस्या का समाधान भी नहीं किया है। जाति धीरे धीरे मर रही है। इन्हें समय का बोध नहीं—1969 का अर्थ इसके लिए एक संख्या मात्र है। दो हजार सालों का इतिहास ये नहीं समझते। इनके लिए टेलीपैथी या 'क्रीक रो' जैसे एक शब्द है, 'भारतवर्ष' भी वैसा ही एक शब्द मात्र है।

कृपया मेरी ओर देखिए। यह मैं हूं—अरिंदम बसु—अरिंदम बसु। न लम्बा, न दुबला, न गोरा। बस मात्र एक आदमी। मैं टेलीपैथी नहीं हूं, क्रीक रो नहीं हूं। भारतवर्ष भी नहीं हूं। उन शब्दों के बीच अरिंदम बसु—इन शब्दों में कुछ फर्क है, लेकिन क्या कभी इसे आप पकड़ सकते हैं ?

छोड़िए भी इन बातों को। कभी कभी मुझे शक होता है कि क्या मैं हूं ? या नहीं हूं। बैंक की उस खिड़की से लोग हाथ बढ़ाकर रुपए गिनकर लेते हैं। कोई कोई मुस्कुराकर धन्यवाद भी दे जाते हैं। पर आदमी बदल जाने पर भी वे लोग बिलकुल आज ही की तरह हाथ बढ़ाकर रुपए गिनकर लेंगे और उनमें से कोई कोई धन्यवाद भी दे जायेंगे। ख्याल ही नहीं करेंगे कि खिड़की के उस पार कोई बड़ा परिवर्तन हो गया है। न्यू मार्केट की उस घटना की बात ही लीजिए न—मेरी पत्नी चल चल कर मुझे ढूंढ़ रही थी। मुझे सामने देखकर, आंखों में आंखें डालकर भी मुझे अनदेखी कर आगे बढ़ गयी। सोचने लगी—क्या आश्चर्य की बात है। यह आदमी गया कहां ?

खूब संभाल कर केले के छिलके को मैंने फुटपाथ के बीचों-बीच रख दिया। उदासीन सज्जनों—अगर इनमें से किसी का पैर उस पर पड़े और फिसल कर अगर वह होश में आवे तब ? अगर आपको ज्यादा चोट नहीं आयी—गिड़ते-पड़ते भी अपने आप को संभाल लिया, तो भी देखिएगा आपको बड़ा फायदा होगा।

आप चारों तरफ ताककर देखिएगा—कहां किस रास्ते से आप चल रहे हैं आपको याद आ जाएगा दुर्घटना अगर गंभीर हुई तो आपके हाथ पैर टूट सकते हैं या सर फूट सकता है, यह सोच कर आप सजग हो जाइएगा। हो सकता है आपके अंदर जो सोया हुआ 'मैं' हूं वह जाग कर सोचेगा, 'जीना कितना अच्छा है'—उस समय शायद आप लोगों के बारे में और भी सजग हो जाएं—और हो सकता है आपको शायद यह भी याद आ जाए कि आज 1966 का साल है, जुलाई का महीना है। यह दिन आपकी शादी का दिन है, जिसे आप बेबाक भूल गए थे—और इस साल आपका चालीसवां वर्ष पूरा हुआ। तब आप सोचकर देखिएगा इस कांतिहीन भारत में किसी निस्तेज दुपहरी मे सड़क पर केले छिलके को डाल कर मैंने आपका बहुत बुरा नहीं किया है।

क्या आप इस चांद की बात सोच रहे हैं ? और साथ ही तीन दुस्साहसी व्यक्तियों की बात सोच रहे हैं ? सोचिए मत। यह सब सोचकर हम लोगों का होगा भी क्या। खामखा आदमी सोच सोचकर उत्तेजित हो उठता है और फिर थकावट होने लगती है। उनके पास अच्छी मशीन है, वे अच्छी तरह चांद पर उतर जायेंगे, फिर लौट भी आएंगे। लेकिन यह सोचकर आप एकाएक उत्तेजित नहीं होइएगा। रास्ता देखकर चलिए। राज भवन के सामने मुड़ते ही देखिए न कितना सुन्दर, कितना खुला मैदान है, खुला आकाश है। आस-पास जो लोग चल फिर रहे हैं, उन्हें देखिए, पहचान कर रखिए, जितना हो सके, दूसरों का चेहरा देख लीजिए ताकि कहीं भी दुबारा भेंट हो जाने पर आप उसे पहचान सके। इस सुन्दर शाम मैदान के पास आपके साथ-साथ मैं भी चल रहा हूं। मुझे देखिए। अभी अभी तो मैं अपने दफ्तर से निकला हूं। यही थोड़ी देर पहले की बात है। आज मैदान में खेल देखने जाऊंगा। लगता है आप भी उसी तरफ-- है न ?

देखिए तो कैसी अजीब बात है। यह लड़का...इसके ऑफ साइड में खड़े होकर एक सुंदर चांस बर्बाद कर दिया। अब तो सिर्फ दस मिनट रह गये हैं। अभी तक कोई गोल नहीं हुआ है। उस लड़के को—हे ईश्वर उसे किसने लाल जर्सी पहनायी है। उसे तो खेल के मैदान से निकाल देना चाहिए। हां साहब तो आप अपनी चुस्त बोली में गाली देकर उसके दिमाग का भूत उतार दीजिए। मेरी जीभ में खराब बोली अटकती है, पर देखिए गुस्से में मेरे हाथ पैर कांप रहे हैं। आज सुबह से चांद और दुस्साहसी आदमियों की बात सोच सोच कर मेरा मन चेतनाहीन हो चुका है। उसके ऊपर यह फालतू टीम। मेरे दल ने एक नम्बर खो दिया है। एक नम्बर। कितनी भयंकर बात है। समय तो बस आठ नौ मिनट ही रह गए हैं। आप क्या कह रहे हैं ? गोल होगा ? कैसे होगा ? इस टीम के सभी

खिलाड़ियों ने पीछे सरक कर गोल के आगे दीवार सी खड़ी कर दी है। और लोग खेल कैसे रहे हैं ? कौन कहेगा कि इनमें गोल कर देने की इच्छा है । और वह औफ साइड में जो लड़का खड़ा है—उसने सबसे आसान मौके पर मट्टी पलीद कर रख दी—मेरी तो तबियत हो रही है कि उसके सामने जाकर कहूं - यह मुझे देखो—मैं अरिंदम बसु हूं । इस टीम को मैं बचपन से सपोर्ट करता आया हूं । इसके जीतने पर भगवान का प्रसाद चढ़ाया है, इसके हारने पर आत्महत्या की सोची है । तुमने कभी यह सब कुछ सोचा है ? तुम्हें तो मालूम ही नहीं कि मैं इस भीड़ में भी एक खास आदमी हूं । बड़े दुख में छलछलायी आंखों से मैंने घड़ी में समय देखा है । हालांकि उससे किसका क्या ? मैं रोऊं या हंसूं —या कुछ भी करूं —कोई तो मुझे देख नहीं रहा ।

नहीं जनाब, गोल नहीं हुआ । रेफरी ने लम्बी सीटी बजा दी । खेल खत्म । अब कृपा करके मेरी ओर एक बार देखिए । कितना थक गया हूं मैं । मेरे कंधे मानों टूट रहे हैं । देखिए तो, अपनी टीम से मुझे कितना प्यार है, पर टीम को इससे क्या लेना देना ? वे तो मुझे पहचानते तक नहीं । लेकिन उनके हर खेल की हार जीत पर रोया हूं । उछलकूद मचायी है । अनजान आदमी की पीठ भी थप-थपा दी है—खामखा ही । इससे किसको क्या ? यह जो मैं सुबह से चांद और तीन आदमियों के बारे में सोच-सोच कर चिंताग्रस्त हूं—अच्छी तरह खाना भी नहीं खा सका हूं इतना उत्तेजित था मैं --पर इससे भी किसका क्या बनता बिगड़ता है ?

कृपा करके मेरी तरफ एक बार देखिए । नहीं । मैं जानता हूं आप अपनी टीम का हाल देखकर परेशान हैं । उस पर चांद और उन तीन आदमियों के बारे में भी आपको सोचना पड़ रहा है । कितना कुछ घट रहा है धरती पर । इस धरती पर कितना कुछ घट रहा है। आदमी साड़े उनतीस फीट लम्बी लाँग जम्प कर रहा है। गोली दागने से प्रेसिडेंट की मौत होती है। वोट में आपकी पार्टी हार रही है। क्रांति आने में बड़ी देर हो रही है। इसलिए मैं अरिंदम बसु, बैंक का कैश क्लर्क —आपके इतना नजदीक होते हुए भी आप मुझे नहीं देख पा रहे हैं।

वह जो दुतल्ले के बरामदे पर रेलिंग पर झुक कर खड़ा है, वह है मेरा चार साल का छोटा लड़का—हापु । बहुत चंचल है । सुबह से उसने जिद ठान ली है, 'रथ का मेला देखने जाऊंगा । आप जल्दी आ जाइएगा पिताजी ।' इस समय वह मेरे ही लिए बरामदे में खड़ा होगा । गुच्छेदार बालों के नीचे उसकी आंखें चमक रही होंगी । इतनी दूर से भी मैं देख पा रहा हूं ।

मैंने जीने पर पैर रखा ही था कि ऊपर से वह धप धप करता हुआ नीचे उतर

आया। उसकी मां ऊपर से चिल्ला रही थी—हापु—ऊ कहां गया ? ए हापु—ऊ-ऊ। हापु हंसता हुआ मुझ पर आ गिरा। बोला कितनी देर कर दी पिताजी, आप चलेंगे नहीं ? हां, जनाब बाहर से लौटने के बाद अपने लोगों के बीच आते ही मेरी जान में जान आ जाती है। मैंने बच्चे को गोद में उठा लिया। उसके बदन में पसीने की मीठी महक थी। जाड़े की धूप की तरह गरम-गरम उसका शरीर था। उसके शरीर में मुह छुपा लेने पर लगता था, मैं एक अदृश्य स्नान कर रहा हूं। मैंने कहा, 'जाऊंगा बेटे। बड़ी भूख लगी है। जरा आराम करके खाना तो खा लूं।'

जब तक मैंने आराम किया, तब तक हापु मेरे बदन के साथ चिपका रहा। अधीर होकर कहने लगा, 'जल्दी करो न पिताजी।' उसकी मां ने उसे डपट दिया। मैंने बड़ी ममता से कहा, 'अहा, डांटो मत, बच्चा है। असल में उसकी यह जिद मुझे बहुत भाती है।'

बड़ा ही नटखत बेटा है मेरा। मेले में पहुंचते ही मेरा हाथ छुड़ाकर भागना चाहता है। मैंने कहा, 'ऐसा नहीं करते बेटे। तुम मेरा हाथ पकड़ कर रहो। तभी मेरे साथ अच्छी तरह घूम घूम कर मेला देख सकोगे।' वह इधर उधर देखने लगा। उसके बाद चिल्लाकर पूछा — 'वो क्या है पिताजी ? और वो 'वहां क्या है ?' मैं उसे दिखा देता हूं कि वह झूला है, वह सर्कस का तंबू है, और वह वह है मरने का कुआं।'

हाथ में एक भुना हुआ पापड़ लिए हापु झूले में चढ़ बैठा। झूला घूम रहा था, हापु दिखाई पड़ रहा था। ऊपर जब आकाश की तरफ झूला उठता हापु हि-हि हंसता, हाथ हिलाता—फिर झूला क्षण में नीचे उतरता फिर ऊपर उठ जाता। सारे समय मेरी ओर देख देख कर हापु हंसता रहा। देख देख कर मेरा जी भी खुश हो रहा था।

मरने के कुएं के ऊंचे चबूतरे में खड़ा होकर मैं देख रहा था—बड़ी आवाज के साथ मोटर साईकिल तेज गति से चक्कर काट काटकर ऊपर की तरफ उठ रही थी। हापु मुझसे लिपट कर यह सब देखता रहा।

उसके बाद आधे घंटे का सर्कस देखा हम लोगों ने। दो सर वाला आदमी, गाती हुई गुड़िया, आठ फुट लम्बा आदमी। हापु बोलना बंद कर हैरत भारी नजरों से सब कुछ देखता रहा।

बाहर आकर मैंने उसे छोड़ दिया। वह मेरे साथ-साथ चल रहा था। उसका हाथ मेरे पसीने से भींग रहा था, इसलिए उसका हाथ मैंने छोड़ दिया।

वो हापु जा रहा था। दुकान में टंगी सीटी देख रहा था। झुक कर फिर आगे बढ़ कर हवाई जहाज की दौड़ देखने लगा। एयरगन, रंगीन गेंद, घूम-घूम कर

वह सारी दूकानें देख रहा था। धीरे धीरे दूकानों की भीड़ में हापु जाने लगा...। उस समय मैं अपनी टीम की बात सोच रहा था । खामखा आज एक नम्बर बर्बाद चला गया। चांद की ओर तीन आदमी चले जा रहे थे—क्या वे चाँद तक पहुंच पायेंगे ? अचानक ख्याल आया कि हापु कहीं दिखाई नहीं पड़ रहा है। भीड़ में एक सेकेंड पहले ही उसके नीले रंग की शर्ट मुझे दिखाई दी थी। देखते-देखते वह आंखों से ओझल हो गया। हापु—ऊ चिल्लाता हुआ मैं दौड़ कर आगे बढ़ा....।

हां साहब। आप लोगों में से किसी ने देखा है, नीले रंग की कमीज पहने हुए चार साल के किसी लड़के को ? उसका नाम हापु है। बड़ा ही नटखट। नहीं देखा है ? लच्छेदार बाल, चमकती हुई शैतानी से भरी आंखें...। नहीं नहीं गुड़ियों की दुकान के आगे जो खड़ा है, वह नहीं, हालांकि दोनों में बड़ा मेल है। नहीं, उसके चेहरे का कोई खास निशान मुझे याद नहीं पड़ रहा है। वह बिलकुल साधारण चेहरे का, कुछ-कुछ मेरे ही जैसा है। मैं सिर्फ इतना ही बता सकता हूं कि उसकी उम्र चार साल है, बदन पर नीले रंग की कमीज। पर नीले रंग की कमीज पहने तो कई लड़के यहां पर हैं, उनमें से चार साल के भी कई हैं। नहीं साहब, मेरे लिए संभव नहीं कि इन हजारों लड़के लड़कियों के बीच-बीच मेरा हापु है—और शायद हापु के लिए भी कहना मुश्किल होगा कि ठीक-ठीक कौन सा आदमी—ठीक-ठीक कौन सा व्यक्ति—आप समझे नहीं, एक बार उसकी मां भी नहीं समझ सकी थी। अगर आप में से किसी की नजर हापु पर पड़े तो कृपया उसे कह दीजिएगा कि, यह, - हां मैं ही उसका पिता हूं —। इसलिए कृपया मुझे एक बार देख तो लीजिए कृपा कर भूल नहीं जाइएगा।

पीछे की भूमि

देवेश राय

हवा थी बेतरतीव—सारे दिन ही। सारे दिन ही चैत के महीने की तरह हवा बह रही थी बेतरतीब—सारे के सारे दिन। क्लास खत्म कर कामनरूम में जाते समय विनय की आंखें स्कूल के उत्तर में बने मकान पर जा पड़ी। कामनरूम से क्लास में जाते समय यूकलिप्टस पेड़ की चोटी पर विनय की दृष्टि पड़ी थी—कब्रिस्तान यहां से दिखाई नहीं पड़ता, जिसके पूर्वी-दक्षिण कोने मे वह पेड़ था।

इस हवा से शरीर का पानी अधिक सूख जाने से चमड़ा खुरदरा सूखा-सा हो जाता है। चेहरे पर हाथ फेरने से बुखार की बू आ रही थी। कपड़े अगर साफ सुथरे होते, धुले घुलाए, प्रेस किए हुए या दाढ़ी बनाई हुई होती, तो शायद इतना खुरदरापन सूखापन महसूस नहीं होता।

स्कूल के उतर की तरफ जो मकान था, उसके सर पर आकाश के सिवा और कुछ नहीं था, यूकलिप्टस पेड़ से ऊंचा कुछ नहीं था। वह आकाश और यूक-लिप्टस शून्यता को और बढ़ा रहा था। मानो वहां कुछ था जो अब नहीं है—समाप्त हुए जलसे के मंच की तरह। इस शून्यता को विनय ने अपने साथ इतना एकात्म कर लिया था कि इस बेमौसम बसंती हवा से उसका मन जितना खुश और चंचल होना चाहिए था वह न हो सका। उसके शरीर में कमी कुछ मौजूद थी, पर अब वह अतीत बन चुका था, उसे ऐसे अनुभव का बोध हो रहा था। मैदान में अशोक लड़कों को लेकर क्रिकेट खेल रहा था। अशोक की पैंट और विकेट के पीछे उसकी जो भंगिमा थी, वह विनय को मोहित कर रही थी। काले बोर्ड पर अपने ही हाथो से बनाए पेड़ की डाल पर उड़ने को तैयार चिड़िया के चित्र की तरफ वह ताक रहा था। और वह दरवाजे पर बेतरतीब हवा के बीच खड़ा था। अगर दाढ़ी आज सुबह बनाई हुई होती, या कपड़े यदि धुले और प्रेस किए रहते तो वसंत की इस हवा को निमत्रण समझ कर वह अपनाता, जलीय पदार्थ सूख जाने पर सूखे जैसा। चेहरा और फटे हुए गालों पर आंख भींच कर

हवा के झोंकों को चूस कर विनय मानो अपने को फिजूल मे खर्च कर रहा था, वसंत की हवा को दक्षिण मलय कहा जाता है। यह ठहरा उत्तरी बंगाल, इसके दक्षिण में समुद्र था, समुद्र के किनारे कलकत्ता बसा था यह हवा कलकत्ते की तरफ से आ रही थी—यह अनुभूति विनय को नाहक बर्बादी की तरफ धकेल रही थी।

शाम को हवा धीमी पड़ चुकी थी। कृष्ण पक्ष का प्रथम चन्द्रमा आकाश में लटका हुआ था। पड़ती हवा मे रात की कठोर ठंड थी, सड़क की धूल साफ हो चुकी थी।

चप्पल का हाल ऐसा था कि चलते समय एक ऐसी खास आहट होती थी मानों कोई लंगड़ा कर चल रहा हो, पर जनता के पैरों की आहट तले वह अनसुनी ही रह जाती, पर शाम को जनता की भीड़ कम रहने पर विनय के कानों में वह स्पष्ट सुनाई पड़ती। लंगड़ा कर चलने की आहट कानों में गूंज रही थी, गहरी रात को अचानक नींद खुल जाने पर जिस तरह से घड़ी की आवाज सुनाई पड़ती है—विरामहीन, अर्थशून्य। इतना एकरस, ऐसा निश्चित और क्रोधशून्य कि विनय को लगा कि समय अब रुकने का ही नही, चलता ही रहेगा। विनय अचानक एक बार रुका। पैरों की आहट भी रुकी। तो फिर ये आवाज मेरे ही पैरों की थी। मेरे राह चलने की आवाज थी। मेरी ही। इस निश्चय पर पहुंच कर विनय फिर चलने लगा। लंगड़ाते हुए, क्रोधशून्य, अभ्यस्त, यह नहीं बदलेगा, रुकेगा नहीं। सैंडल अभी ठीक करवा लूंगा, अभी। उसने अपने चारों तरफ और सामने की ओर देखा। कोई उपाय नहीं। अगर यह कलकत्ता होता तो सब के पैरों की आहट में मेरे पैरों की आहट छुप जाती—यहां किसी और के पैरों की आहट नहीं थी। मरणासन्न रोगी जिस तरह रोग से पीड़ित शरीर को कभी सकुचित करता है और कभी फैलाता रहता है? हाथ चलाता है, और आंखें फाड़ता है, मानों अति आवश्यक, अत्यन्त जरूरी निरुद्देश्य कुछ मांग की चाह जता कर दूसरे ही क्षण मुरझा जाता है, ठीक उसी तरह से जूता मरम्मत की मांग से चंचल और व्यग्र होकर दूसरे ही क्षण मुरझा गया। छक्र छक् छकर छक् यह एक अजीब सी आवाज, चाहे अंधेरा हो या उजाला, कृष्ण पक्ष हो या शुक्ल पक्ष, दाढ़ी बनी हो या नहीं, एक ही आवाज होती रही। अगर जनता होती—। नही है—। इसलिए झकड़िया गाड़ी चले, बैल गाड़ी चलती रहे, उससे चें चें की आवाज उठती ही रहे, उठती ही रहे, कोई मानने वाला नहीं, कोई खबरदार करने वाला नहीं, कोई मालिक नहीं, न ही कोई नौकर, यहा सभी जनता है, छक्र छक्, छक्र छक्। बुखार से पीड़ित रोगी की तरह कुछ कठोर सी आवाज निकाल कर विनय ने मानों अपने अनुभवों को मुक्त करना चाहा, और पैरों की आहट उसे

लगा कि पैरों की इस आहट को रोकने की कोई प्रक्रिया उसे मालूम नहीं, इस शहर को मालूम नहीं—इस लिए छक्र छक्, छक्र छक्।

सारे दिन के अपने अनुभवों को खास कर शाम को राह चलते समय, उसने जिस तरह की आवाज निकाल कर अपने को व्यक्त किया था, उससे विनय के पेट के निचले हिस्से से कंठ तक गाढ़ी हंसी का तार मानों बज उठा। हंसने का लोकाचार भूल कर विनय ने जी जान से शराबी की तरह हंसने की कोशिश की। शायद हंसने के जरिए उसका इरादा अपने मुंह की बदबू को सूंघने का था। डकार लेने की पहली कोशिश के समय वह थमा नहीं क्योंकि वह सोच रहा था—बचपन से लेकर आज तक उसके पेट में कितनी ही चीज इकट्ठी हो गयी होंगी। पेट सड़ कर फूल गया होगा। आह हा! क्या बात है? दो भाई आलू कबाब, शाम के समय---। इस चिंता से उबरते उबरते उसने तीन चार बार डकार लेना चाहा। गले की नली में उसने खिचाव महसूस किया। चिंता से उबर कर एक दो कोशिश के बाद उसने एक डकार लिया। वह मुंह खोलना भूल चुका था, इसलिए बदबू सूंघ नही सका। अब उसने मुंह खोला, एक दो कोशिश के बाद बोला—अहा। कर क्या रहे हो? अपने को धमका कर वह चलने लगा। और तुरन्त ही आवाज सुनाई पड़ी छकर-छक्। छकर छक्। उस आवाज को न सुनने का ढोंग कर विनय ने सोचा—चल तो रहा हूं पर कहां, यह तो नहीं सोच रहा। क्या सोचा है मैंने? नहीं, घर से निकलते समय भी नहीं सोचा था। सुबह की चाल की तरह क्या शाम को सुबीर दा के घर पर जाना ही पड़ेगा? क्या होगा जाकर? यही न कि अखबार को फिर एक बार पढूंगा, या बाहर वाली चौकी पर सो जाऊंगा। या उस लड़की का क्या तो नाम है? गुलाब, टगर या जुही? बिल्ली उल्ली कोई?

विचार का सूत्र विनय से खो गया। इस सूत्र के खोने के बाद उसे दूसरा सूत्र मिल गया। छकर-छक्, छकर-छक्। पैरों की जिस आहट से वह अचेतन था, कोई मौका पाकर उसने फिर से उस पर आक्रमण किया। छकर-छक्, छकर-छक्। नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा। सुबीर दा के घर मैं नहीं जाऊंगा। गली सामने आ चुकी थी। इसलिए विनय ने अपने आप को सुनाया—नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा, किसी भी हालत में नहीं जाऊंगा। गली आ गई, बायीं तरफ। नहीं मुड़कर, नहीं जाऊंगा, नहीं जाऊंगा—कहते कहते दो कदम आगे बढ़कर उसने अपने को धमकाया—क्या हो रहा है यह सब? यहां कम से कम सुबीर दा का घर तो है, चला जाता हूं, नहीं तो सारे समय घर पर ही रहना पड़ता।

विनय बायें मुड़ा। छकर-छक्, छकरछक्। अजीब मुसीबत है। सब कुछ गोलमाल हो रहा है। आज तो बाबुई के गाने की कापी में तस्वीरें बना देने की

बात थी। लड़की का नाम बाबुई है। बालिका का नाम बाबुई है। छकर-छक्, छकर छक्। वही एक शब्द होता ही रहा। अंधेरा हो या उजाला, विराम हीन। सुधीर बाबु के घर के नजदीक आकर विनय पहले तो उदास हो गया। कलकत्ता के लिए उसका मन उदास हुआ। मां, बाप, भाई बहनों से भरे घर से, यार दोस्तों से भरे वहां के काफी हाउस से, लोगों की भीड़ भरी ट्राम से वह यहां आया। फाटक खोलने के लिए लगातार होने वाले पैरों की आवाज को थोड़ी देर के लिए उसने रोका। गेट खोलते समय उसने एक लम्बी सांस खींची, उसके बाद फिर छकर-छक्, छकर-छक्—एक ही शब्द होता था।

विनय मानों एक ऐसा नाविक था जिसे कलकत्ता के बन्दरगाह पर जहाज ठहराकर शाम बिताने के लिए बंगाल—आसाम से लेकर मध्य प्रदेश तक फैले हुए विराट मैदान में छोड़ दिया गया हो।

और वही एक शब्द। चाहे अमावस हो या पूर्णिमा, सर्दी का मौसम हो या गरमी, दृश्य यों एक ही था। स्थिर दृश्य एक ही था, या चलचित्र था। वही तो पुराना आकाश, चांद, नक्षत्र पेड़—और साथ-साथ जो कुछ वह दृश्य बनाता है, सब तो बेजान था, पर इस निश्चल मंच पर उनके अभिनय करने की बात थी। और ये पात्र तथा पात्रियां, सभी जीवन का अनुकरण करना सीख गई हैं। पर अनुकरण से कला तो नहीं बनती। अगर ये कला का निर्माण कर सकते तो इस स्थिर सनातन दृश्य पट पर ही कितनी सुखद तथा दुखद घटनाएं घटती रहतीं। पर ऐसा नहीं हुआ। सारा कुछ एक प्रहसन तथा तमाशा बनकर रह गया—हाय रे!

वही एक। चाहे रोशनी हो या अंधकार। अगर कृष्ण पक्ष हुआ तो दृश्य बदल जाएगा, हालांकि बदलाव सूचित करता है कि शाम हो गई है। शुक्ल पक्ष की पहली रात और कृष्ण पक्ष की आखिरी रात प्रागैतिहासिक है। पूर्वी दक्षिण कोने में स्थित आम के पेड़ पर सर्दी की धूप ठहरी हुई थी। धूप को ढूंढ कर तो बैठा जा सकता था, पर चांद ढूंढकर? रसोई घर लम्बाई मे छोटा नही था, पर नाटा था। नाटा भी खास नहीं था। सर के ऊपर से टीन बदला नही गया था। बड़ी लड़की की शादी के समय सुधीर बाबू ने फर्श बनवाया था और उस समय जो रेलिंग बनाई थी, वह छत को छू रही थी। दम घोटने वाला। बरामदे के किसी कोने में सुधीर बाबू की मां की मृत्यु होने पर शुद्ध उबला खाना बन रहा था। रसोई मकान के पूर्वी हिस्से में थी, पर पड़ता था वह पश्चिम मे। उत्तर की तरफ दो कमरे थे और दक्षिण की तरफ लम्बा एक कमरा बना हुआ था।

वही एक पुराना दृश्य। रोशनी हो या अंधकार। सुबह का दृश्य बदल जाता है। शरद् ऋतु में सुबह का एक स्थिर रूप होता है—इसके अलावा तो वह

अस्थिर है। अस्थिर चलने वाली दौड़ने वाली सुबह रोज ही बदल जाती है, बदलती है, बदलती रहेगी। दुपहरी मानों डुबकी लगाकर तैरने के समान होती है। शाम को रहती नहीं। सस्ते नारियल तेल की महक, मुरमुर की कटोरी से आ रही थी। मीनू को तो शाम को भी बाल बनाने पड़ते हैं। वह बिना बाल बांधे सड़क में कैसे जा सकती थी। लेकिन सड़क पर तो मीनू को चलना ही था, क्योंकि मीनू पन्द्रह साल की थी। स्कूल से लौटने के बाद मीनू अपने भैया को तथा मुझे गुड़ तथा मुरमुरा दिए बिना जाती भी कैसे। इसलिए मीनू के हाथ का नारियल तेल सुगंध फैला रहा था मेरे मुरमुरे के कटोरे में। अहा। मीनू को कितना कष्ट होता है, कितनी परेशानी होती है। शाम के वक्त, अभी इसी शाम जच्चे के घर के बाहर जो चुप्पी रहती है, वही चुप्पी छायी हुई थी। और चराचर में ? या बंदरगाह की जमीन की तरह हमेशा से ही वहां श्मशान का दृश्य होता है। या इस घर में ? क्या मेरे घर में ? या मुझे ही ऐसा लगता है, छकर-छक्, छकर-छक्। सभी चल रहे थे। यह घर और हम। यह गाड़ी और घर के यात्री लोग ? न मालूम कब स्टेशन आएगा।

उत्तर की तरफ दो कमरे वाले कमरे के बगल से अंदर जाने के लिए टीन का दरवाजा था। कमरे के तीनों तरफ कई एक खिड़कियां थीं। पश्चिम की दीवार से सटा बाबुई का एक टेबुल था, जिस पर सरस्वती की एक तस्वीर और सरदर्द की दवा रखी हुई थी। लड़की को सर दर्द भी होता है। पढ़ाई के टेबुल पर लालटेन रखी हुई थी चिड़िया के घोंसलों से ढंकी हुई रोशनी दिखाई नही दे रही थी। पर पन्द्रह वर्षीय या षोडशी के चारों तरफ से रोशनी प्रभावित होती है। पश्चिम के तरफ की खिड़कियां बंद थीं पूरब की तरफ की खुली हुई थीं। बाबुई पूरब की खिड़की की तरफ पीठ करके बैठी थी, इसलिए बालिका के चेहरे के चारों ओर से रोशनी की छटा पूरब की खिड़की से बाहर निकल कर आ रही थी। कोई दर्शक रहता तो वह देखता कि उस लालटेन की रोशनी के आगे बाबुई के चेहरे की सीमा रेखा दिखाई दे रही है। (क्या वह पवित्रता की कड़ी थी ? पर इस रेखा में गोलाई का संकेत था। थोड़ा बहुत टूटा फूटा होने से शरीर की विशेषता मानों बढ़ गयी थी।) और उसके साथ उड़े बिखरे हुए बाल। बाबुई नहीं जानती थी कि वह एक छवि है, छवि नहीं जानता कि वह एक छवि है, दर्शक को मालूम है कि आदमी छवि बन सकता है, छवि जानती है कि आदमी छवि होता है, बाबुई गाना गाती है—तुमि कि केबोलि छवि ? (क्या तुम सिर्फ छवि हो— रवीन्द्रनाथ ठाकुर)

टीन के दरवाजे से घुस कर कुएं के पास के घेरे और उत्तर की दीवार के बीच अंधेरे बास के घेरे में एक सींक वाली खिड़की बनी हुई थी। खिड़की के सामने टेबल

था, टेबल के सामने चंदन। चंदन की उंगली का छोर दांतों में था। पश्चिम की तरफ पीठ कर पूरब की तरफ चेहरा कर चंदन खड़ा था। लालटेन की रोशनी उसके चेहरे पर और छाया बिखेर कर चरित रचना कर रही थी। आलोक और छाया के अनायास, गिरने से कौन सा चरित्र उभरता है? लालटेन दाहिनी तरफ था, चंदन की नाक ऊंची थी, इसलिए उसकी बायीं आंखों के कोने में अंधेरा छाया हुआ था। उसके बाजू चौड़े थे, सैंडो गंजी डाले हुए था। खिलाड़ियों की तरह सर के बाल छोटे छोटे थे। जबड़ा कठोर था पर आंखें कठोर क्यों? आखिर चंदन दांतों से नाखून क्यों काटता रहता है? सामने की खिड़की से पड़ते हुए आलोक स्रोत मैं दूर मिटते हुए आदमियों के बिना शरीर के सिर्फ सर दिखाई दे रहे थे। चंदन भयभीत था।

इसके बाद छोटे से आंगन के बायें की तरफ रसोई घर था। रसोई के बरामदे में जहां श्राद्ध के लिए खाना बन रहा था, वहां कुप्पी की असंयत शिखा छाया डाल रही थी—कभी रोशनी देती, कभी मिटा देती। टाट के घेरे के छेद में से धागे के सामने रोशनी रसोई घर की छप्पर की छत पर भी छाया डाल सकती थी, अगर छाया पड़ने के लिए आकाश नीचे उतर सकता, नीचे बिलकुल छत के ऊपर। बरामदे के किसी कोने में उपले, काठ के बक्से कोयला आदि अंधेरे मे लटपटा कर पड़े थे। श्राद्ध वाले कमरे में एक छोटे से चूल्हे में सुधीर बाबू की पत्नी खाना बना रही थी। कुप्पी की परिचित रोशनी में चैन की हवा के रोमांच की तरह सुधीर बाबू की तीस वर्ष पुरानी पत्नी अपरिचित-सी लग रही थी।

गोधूलि बेला में सारी दुनिया साफ सी थी। शाम के अंधेरे में वह खो जाती। सोचो। शाम को। सोचो। सोचना ही पड़ेगा। शाम को। मैं अब सोचूंगा, भाभी के साथ दो चार यों ही बातें करके दक्षिण की तरफ के बरामदे पर बिछी चौकी पर सो कर सोचूंगा—क्या?—क्या सोचूगा? सोचा था और इस समय भी मैं कौन से सोच में डूबा हुआ हूं?

'कौन?' भाभी की आवाज सुनते ही उसकी आंखों को समझा जा सकता था। छोटी सी पर ऊंची पटरी पर घुटनों के बल भाभी बैठी होगी। एक घुटने पर एक बाजू और दूसरे हाथ से चमचा या वैसा ही कुछ था। बायें हाथ में क्या था? पैर की आहट पाते ही कमर का ऊपरी हिस्सा सीधा कर गर्दन ऊंचा कर देखने लगी।

—मैं विनय हूं। रसोई की सीढ़ी पर विनय ने कदम रखा।

—विनय? आओ। घर पर सभी अच्छे तो हैं न?

विनय का जवाब सुनने के साथ-साथ भाभी का ऊपरी हिस्सा शिथिल हो गया। बायें हाथ से उसने चूल्हे में लकड़ी डाली। आग की कुछ चिनगारी बिखरी।

आंखें सिकोड़ कर मुंह फेर लिया भाभी ने। मानो कुछ पूछना चाहती हो, ऐसा भाव चेहरे पर लाकर विनय की तरफ देखा। हमेशा से ही विनय इस प्रश्न के जवाब में 'हां' कहकर चौखट पर बैठ जाता। भाभी एक ही बात रोज-रोज क्यों पूछा करती ? क्या वह सिर्फ आदत है। हर दिन की बात, एक, समान। बेला शायद यह बात समझती नहीं थी। उसके मन का अपनापन ही उसकी आवाज में पराएपन का सुर ला देती।

—बै....ठो। बैठे हुए विनय को भाभी ने कहा। विनय ने एक तिनका पकड़ने के लिए हाथ फैलाया और फिर उस तिनके से कुछ ऊलजलूल आंकने लगा। भाभी उस तिनके को देखने लगी, उस अर्थहीन अक्ल को भी। विनय ने तिनके को उठा कर फेंक दिया।

—स्कूल गए थे ? भाभी ने पूछा। अब भाभी पूछेगी, आज क्या-क्या खाया, उसके पहले ही मैं उठ जाऊंगा। कोई और आने पर भाभी जम कर गपशप कर सकेगी। उसकी अपनी कोई बात नहीं होती। बाप के घर से तीस साल पहले जितनी बातें सीख कर वह आयी थी, वह तो पांच ही सालों में खत्म हो चुकी थीं। यहां इस गांवनुमा शहर में बात ढूंढने से भी नहीं मिलती। जहां बात पैदा होती है, वह भाभी की जगह तैयार नहीं हुई थी। भाभी इस तरह से क्यों देख रही हैं ? इस भद्र महिला के चेहरे पर एक कैशोर्य है जो देखने से ही पता चलता है। बाबुई, चंदन, सोना, रूपा, मीरा, ये नाम उन्होंने आखिर रखे कैसे ? अब दो बात नहीं रही, क्यों ? चूल्हे में गरमी थी ? आंखों में धुआं इसलिए ?

—सुधीर नहीं आया ? विनय ने भाभी से पूछा।

—नहीं। पर तुम कहां जा रहे हो ? भाभी चूल्हे की तरफ ताक कर बोली।

—बस उस कमरे में जा रहा हूं। सुधीर लौटा नहीं है क्या ?

—ट्यूशन पर गए हैं।

सोचा तो था कि कुछ सोचूंगा ? शाम का समय तो चिंताओं का इतिहास होता है। पहला अध्याय—सोना रूपा मीरा, तथ्य का बड़ा अभाव है। दूसरा अध्याय—बाबुई। तीसरा अध्याय—मैं। चौथा अध्याय—भाभी। पांचवां अध्याय—सुधीर दा। बाबुई क्या सोचती है ?

बाबुई ने कहा था सुचित्रा मित्र (बंगाल की प्रख्यात गायिका) की तस्वीर बना देने के लिए। मैंने नहीं बनायी। बनाकर दूंगा भी नहीं। बाबुई तू पढ़ना छोड़ दे। गाना-वाना छोड़ दे। कपड़े-वपड़े धोया कर, रसोई घर साफ किया कर ताकि हाथ में हल्दी मसाले की महक हो। शरीर पर हल्दी मल कर स्वागतम् लिखे हुए मखमली लाल कपड़े के नीचे तेरी विदाई हो। नहीं तो तू मर जाएगी। जा मर जा। विनय को हंसी आ गई, पेट में नहीं, मुंह में हंसी आई। बाबुई बासु मरने

जा रही है, बचाएगा कौन ? शाम को बुरी चिंताएं मन में लाना मना है, दक्षिण द्वार पर जाना भी माना है। दक्षिण का दरवाजा खोल कर मरेगी, जरूर मरेगी। बिस्तर में बहुत दिनों से पड़े पीड़ित रोगी की हंसी के समान विनय को अपनी हंसी दिखाई पड़ी। इसलिए रोग से पीड़ित चिन्तित रोगी की तरह उसने अनुभूति की। पर शाम को सरस्वती की तस्वीर की बगल में सरदर्द की दवा की शीशी की तरफ देख कर क्या बाबुई सुचित्रा मित्र के बारे में सोचती है? सोचती होगी। और फिर अभी जो उम्र है उसमें दूसरी तरह की चिंता भी करती होगी। सब तरह की चिंताओं को जोड़ कर मन बड़ा बनता है। और मन बड़ा बनते बनते...। बाबुई ने सुचित्रा मित्र की तस्वीर मांगी थी। मैं बनाऊंगा- पर उससे पहले वह गाना सुनना होगा—आर देखोना आंधारे मोरे देखते दाओ— (और मुझे अंधेरे में मत रखो, मुझे देखने दो।)

—बाबुई तेरा 'अपनत्व' कहां है, मुझे दिखा सकोगी ?

—मेरा 'अपरत्व' कुछ भी नहीं। सारी जिन्दगी शून्य में खोजता रहा। हाय रे।

—विनय, चाय लाऊं ?

—नहीं।

क्या बेला अब तक विचित्र तरह से कुछ सोच रही थी ? नहीं। नहीं बेला कोई विचार नहीं शरीर है, चैतन्य नहीं अस्तित्व है। मैं भी। मैं भी ऐसा ही हूं। व्यक्ति का व्यक्तित्व होता है और व्यक्ति नगर में रहता है, मेरे छब्बीस वर्ष के पाप हैं। मैंने पन्द्रह वर्ष का सीधापन चाहा था। बाबुई वह गाना तो गाओ— आमार आपनारे देखते दाओ। (मेरे अपने को देखने दो।)

यहां स्टिम्युलस तो शरीर का है। मन का ? कहां ? मन—एक टुकड़ा घास। इतन कोमल, पतला मन तू कहां है ? ऐ मन तू है कहां ? मन रे तू मेरे शरीर में समा जा। आ—आ रे। मेरे सूखे शरीर में आंधी ला दे। मन उतर आ रे। आ।

मन का प्रसंग चलते चलते आंधी की बात सोचते ही आकाश—समुद्र पहाड़ सब मिल जुल कर उसके मन में एक अजीब सी छवि बन गए। छोटा मोटा हल्ला गुल्ला सुनते सुनते बड़ा कुछ खो सा जाता है। बहुत ही विस्तृत 'वाइड', 'वाइल्ड'। वाइड के साथ तालमेल बैठता है इसलिए 'वाइल्ड' शब्द दिमाग में आया, विनय यह जान कर भी उसे रद्द नहीं किया। वाइल्ड के अन्दर तो वाइल्ड नेस रहता ही है—कुछ न रहने पर तस्वीर बनाने की इच्छा हो जाएगी कहां से ? यहां की तस्वीर, लालटेन के चारों तरफ भुनहे चेहरे, बच्चे पहचान में नहीं आते। मनुष्य के शरीर की रेखाओं का संकेत, रग, लाइन के उजाले, रोशनी में रंग की छाया

या भाभी के कमरे से ऊपरी अंश का एकाएक व्यग्र हो जाना, पैर की आहट से द्रोणलता की तरह की रेखा। दोनों पैरों के मुंह छुपाए कुत्ता टुकुर टुकुर आंखों से देख रहा था। जानवर भी सुन्दर है, आंखों से मानवीय भी, पर भाभी के चेहरे से वह कैशोर्य कहां गया ? आंखें मुंद कर विनय मानों खुदाई की हुई मूर्ति की विलुप्त रेखाएं ढूंढ रहा था। किस रेखा में भाभी का कैशोर्य था ?

खूब गाढ़े रंग में कोई बड़ी चीज, चौड़ी चीज, बहुत भारी कोई चीज, भारी कोई वस्तु। सामने सभी विषयों की रेखा संकीर्ण और उनके रंग बेजान थे, सुचित्रा मित्र की तस्वीर में बाबुई क्या देखना चाहती है ? मैं क्या देखना चाहता हूं। देखने दो। मेरे अपने को।

गगनेन्द्र नाथ ठाकुर की बनाई यक्षपुरी —(अस्पष्ट आलोक, त्रिकोण आलोक और छाया पड़ने से कभी स्वर्ण स्तंभ का, कभी मनुष्य शरीर का संकेत, नन्दिनी की कुछ उंगलियां, लाल गुड़हल के फूल के गुच्छे, लाल असंभव प्रकार से जटिल, असंभव नहीं) अवनीन्द्र नाथ का शाहजहां (बहुत ही उदास उदास सा। फिगर मानों है भी या नहीं, रेखाएं मानों मिट जाएगी। सर्दी में जैसे आइने पर सांस का परदा—सूक्ष्म, सहता नहीं, सहता नहीं)।

रवीन्द्रनाथ का नृत्य --(प्राचीन मित्र की, एलिमेंटेलिटी, हाथ और पैर की सरल भंगिमा से, एलिमेंटेलिटी ही तो चाहिए, आह। ए-लि-मेंटल, हिब्रू मंत्रोच्चारण, ए-लि-मेंटल, लाउड रेखा पर रंग इतने जटिल क्यों ? भंगिमा शैतान की आरती की तरह क्यों है ? चेहरे पर मानों मृतक के आधार पर बने चित्रों की अमानवता, मर जाना या जीना कहां, आगे रंग में, लाउड रेखा में—बाबुई इसीलिए तो तेरा गाना मुझे इतना अच्छा लगता है, लाउड गला, उदार, खुला हुआ सुचित्रा की तरह, बाबुई तू सुचित्रा मित्र बनेगी। बाबुई तू सुचित्रा मित्र बनेगी ?)

नन्दलाल बसु का शिव (नहीं—नहीं, नहीं रे, नहीं। जिस घर में अन्नपूर्णा हो वह खाने को तरसे, यह तो बड़ी मुश्किल की बात है, मुश्किल—नहीं, नहीं, नहीं रे)। यामिनी राय जन्माष्टमी की छवि - (क्या बात है, बंकिम मुरली, त्रिभंग मुरारी, त्रिभंग कहां ? सिर्फ एक घुटना टूटा हुआ, उसमें सारे शरीर का बोझ पानी की धार की तरह उतरी बाढ़ की तरह, साल के पेड़ की तरह दृढ़, मछली की तरह आंखें, पूरी आंखें पूरी एक मछली की तरह स्वच्छ, इतनी सरल उनमें इतना विस्मय डालने की क्षमता मुझे नहीं है)। वैन गाग के क्रास आन दी स्टीम—(आह, मुझे बचाओ, यह यंत्रणा मैं नहीं सह सकता, काला कौआ, आकाश की गति, व्याकुल पखों में जंजीर, आंधी, नीचे महाकाव्य की नहीं, हाय यह मैं नहीं सह सकता, कौन है, मुझे बचाओ, हाय कौन मुझे बचाएगा, काले कौए के पंख

के पीछे सूर्य गायब था, इस अंधकार के आकर्षण से नीचे का स्रोत दोनों किनारे को मानों तोड़ जाएगा। मैं अनजान किनारे तक बह नहीं सकता, मुझे किनारा चाहिए, घर चाहिए, बाबुई तुम कहां हो, कौआ खून चूसने वाला बन जाता है, मेरी छाती में अब और खून नहीं, उस काले अंधेरे में मेरे खून में महाकाव्य का दरिया लाल हो गया—बाबुई, तुम कहां हो, मन तुम कहां हो, मेरी पसलियां कहां) नन्दलाल बसु का अर्जुन, अहा। सोया हुआ अर्जुन, रफ ड्राइंग, रफ रेखाएं, विशाल चेहरा, छाती, जांघ, गोलाकार होकर घुटने तक फैल गए हैं, मुड़े घुटने, कोहनी के बल पर बाजू की पेशियां मानो जमीन में खिले कमल की पंखुड़ियां हों, और दूसरा हाथ सहारे के लिए टिका हुआ। विद्रोही की तरह शरीर की समस्त भंगिमा चौकन्नी थी, मानों दोनों पंजों के बीच मुंह छुपाए शेर पेड़ों की मरमराहट की आवाज से चौंक उठा हो, पीठ चौड़ी मानो बरगद का पेड़ हो (मुझे मिल गया है, एलिटमेंटल और लिरिक, मुझे मैं पा गया हूं, पा गया हूं, मैं तस्वीर बनाऊंगा। समुद्र की तरह रफ, चराचर की तरह सजा हुआ, महाकाव्य की तरह महत् गीत की तरह करुण, मैं बनाऊंगा। बाबुई अर्जुन मैं ही हूं।)

प्रतिज्ञा के इस क्षण में विनय ने आंखें खोलकर ताक पर तुरंत बंद कर लीं। तुरंत उसकी नजर रसोई के टाट के फांक से आंगन में पड़े कीड़े की माफिक धूप की बूंदें, आंगन में रसोई की छाया थी। इस कमरे से धूप चौखट पार कर पड़ी थी—भीगी हुई साड़ी की तरह। दूसरी तरफ दोनों कमरों की रोशनी, कुहासे की तरह लग रही थी। मुझे मिल गया है, 'मैं आंकूंगा'—इस मंत्र को जपते-जपते, आंखें खोलकर, कभी आंखें बंद करके जपते हुए, उसे लगा किसी श्मशान का रोना गहरी रात को, बड़ी गहराई से, कहीं दूर से तैरती हुई आती सियार के आवाज की तरह सुनाई पड़ रही थी। लालटेन की भुतही रोशनी के इर्दगिर्द टूटी हुई रेखाओं के बीच कोई चेहरा, लालटेन की मटमैली रोशनी में उज्जवल रोशनी भी फीकी पड़ गई थी। भीगी हुई साड़ी की तरह रोशनी, रोशनी के कीड़े की तरह रोशनी, द्रोणलता की बेल की तरह शरीर की रेखाएं, अचानक उपस्थित कैशोर्य का अचानक ही गायब हो जाना, टाट में आंकी छाया की खिड़की, और दीवार की खिड़की के बीच किसी किशोर की सहमी हुई आंखें, पीछे मुड़ी हुई किशोरी के आगे सर दर्द की दवा विनय को घेरे रहे। बहुत उदास होकर मानो विनय ने कहना चाहा—मैं प्रसन्न नारायण विद्यालय का ड्राइंग मास्टर हूं। मैं नहीं आकूंगा। मैं तस्वीरें नहीं बनाऊंगा।

—कौन ? विनय काका ?

—हां।

—चुपचाप सोए क्यों पड़े हो ?

—धत् पढ़ने में मुझे अच्छा नहीं लगता।

—क्यों क्या अच्छा लगता है ?

—गाने में।

—तो फिर गाओ।

—नहीं। मां डांटेंगी।

—नहीं डांटेंगी। मैं जो कह रहा हूं।

—आज नरेन चाचा के यहां गया था। उनके नीचे जो बनर्जी लोग रहते हैं, वे गाना गाने के लिए बुला ले गए थे।

—कौन-कौन से गाने गाए ?

—बहुत अच्छा लग रहा था।

—क्यों ?

बाबुई कुछ बोली नहीं।

आंगन में, श्राद्ध वाले कमरे के टाट की फांक से निकली रोशनी कीड़े की माफिक रोशनी थी। वे दोनों एक दूसरे की नजर बचाने के लिए उस आलोक बिन्दु चिह्नित जगह पर ही एकटक देखते रहे। उस जटिल रेखाचित्र की तरफ देखकर विनय को याद आया था कि आज सारे दिन चैती हवा बहती रही और उसकी वजह से प्रकृति ने भी उसके शरीर में एक शून्यता बोध को जन्म दिया था। उस आलोक बिन्दु की तरफ देख कर बाबुई मानो निश्चित पतन से बच गयी हो। उसकी आंखों में, उसके चेहरे पर एक ऐसा शौक था जैसे वह किसी सुदूरपन में खो जाना चाहती हो। इस आंगन को केन्द्र-बिन्दु मान कर दोनों के बीच एक ऐसी चुप्पी विराजमान थी जैसे किसी भी क्षण लम्बी सांस के साथ शब्द का गर्भपात हो जाएगा। और उस सर्वनाश को रोकने के लिए ही वे दोनों चेहरे-मोहरे की भंगिमाओं से अपने को व्यस्त रखने की कोशिश कर रहे थे। तभी दोनों की आंखों के आगे आर्त रूप के विभिन्न आकार छूट टूट कर फिर नए बनकर नए रूप से टूट कर फिर नए आकार देने लगे।

हिस्टीरिया का रोगी जिस तरह कुछ देर तक अपार्थिव और उद्देश्यहीन कुछ के लिए जूझ कर पार्थिव और निर्दिष्ट वस्तु की ओर असहाय दृष्टि से देखता है, ठीक उसी तरह से इस समय ये दोनों एक दूसरे को देख रहे थे।

विनय हंसा। मानो ऐसी कोई मां—जिसकी छाती में जरा भी दूध नहीं, पर उसकी संतान उससे दूध की मांग कर रही हो, एवं एक और पुत्र स्वस्थ तथा दुग्धशाली जननी की खोज में चला गया हो। जल्दी से वह बाबुई की तरफ देख कर बोला - तूने क्यों नहीं बताया कि नरेन बाबू के यहां क्या हुआ ?

घुटने पर मुंह टिकाकर बाबुई अब तक सिकुड़ी बैठी थी। अब उसने मुद्रा

बदल कर पलथी मार कर बैठ गयी। सर झटका कर बालों को ठीक किया और उसकी कहानी सुनने के लिए विनय ने भी अपनी मुद्रा बदली और बाबुई मानो पानी की बत्तख बन गई।

और उसके बाद बिषाद के स्रोत के समान गोता खाते-खाते बाबुई के गले से गीत निकल आया, और बाबुई तेज आवाज में गाने लगी – निशीथ की कोए गैलो मौने ? (निशीथ मेरे मन में क्या कह गया ?)

ये पांच शब्द लय में बंधकर मानो गूंज उठे। पहले धीमी आवाज में, तरल स्वर में, फिर तेज आवाज में और फिर उससे भी तरलतम स्वर मे। 'को कि घूमे ?' क्या वह नींद में ? —सरल गंभीर 'नी' उर्ध्वगामी 'न' और निम्नगामी अचानक स्तब्धता 'म' से चौंकी हुई। हिरणी, द्रोणलता की तरह उसकी रेखाएं। 'क्या वह जागरण में जा-गर-ण के हर एक शब्द पर एक छोटी सी तरंग आनंद, द्विधा, संशय और आग्रह। और फिर धीमी आवाज में 'क्या मालूम' कहकर आंखें बंद कर लेना। इस आंगन में अंधेरे की तरह अस्पष्ट रोशनी। आम के पेड़ के कारण रोशनी ठीक से पहुंच नहीं पा रही थी।

'नाना काजे, नाना मते, फिरि घरे, फिरि पथे' (विभिन्न कामों से विभिन्न विचारों के कारण घर में घूमता रहता हूं, सड़कों पर घूमता रहता हूं) इस कमरे से उस कमरे में, उस कमरे से इस कमरे में, फिर पथ पर अकेले में, और हर समय रात हो या दिन क्या कह गया मेरे कानों में ? शाम मीनू को बुलाता है, मेरे मुरमुरे की कटोरी मे नारियल तेल की महक। बात मां को—मां तुम्हें रात को नींद आती है ? 'शे कथा कि अशोचरे बाजे खनै खनै'—(क्या यह बात अनजाने में हर क्षण बजती रहती है ?) नहीं मालूम, जानता भी नहीं। अपने शरीर का जो अंश देख पाता हूं, उसके अंतराल में कहीं इस शरीर की मौजूदगी के बाहर हृदय नामक एक जगह है। अगर जानता होता। जानता नहीं, समझता भी नहीं। हाहाकार, चारों तरफ हाहाकार 'शै कथा कि अकारणे व्यथिछे हृदए' (क्या वह बात बिना कारण ही मन को चुभ रही है।) गिर्जाघर के प्रार्थना संगीत की तरह एक साथ चार ध्वनियां, आखिर का विस्तृत ('ए कि भए') यह कैसा डर है, और उसके खत्म होते होते, और एक तरंग ('ए कि जए') यह कैसा जय है—तरंग पर तरंग – ऊफान पर ऊफान, तट भूमि उथल-पुथल हो गयी। एक भयंकर प्रार्थना समुद्र की तरंग की तरह अपने चपेटों से तोड़-फोड़ कर, ध्वंस कर, बहाकर, डुबोकर, तहस-नहस कर, संकीर्ण क्षुद्र मांस को गलाकर, हड्डी का सर निकाल कर, शिराओं का खून निचोड़ कर ताजे लाल रक्तवर्णी का प्रवाल द्वीप, सृष्टि का द्वीप बनाता। आह। बनाता है, लाल रंग का, आह ! सृष्टि ! सृष्टि ! पृथ्वी पर फैली हुई हवा उठा-पटकी कर रही

है—सृष्टि। ए-लि-में-ट-ल-लि-ग-क-ल। मैं तस्वीर बनाऊंगा, गाना गाऊंगा, मैं समुद्र देखूंगा। अहा रे बालिका, गर्दन उठा कर सूखे ओंठों से, किस आग्रह से, किस यंत्रणा से कांटों से बिधे जीसस क्राइट के पैरों तले बैठी हो भक्त की तरह ? अहा रे। इस अकाल वार्धक्य के इस छब्बीसवें साल में दोनों घुटनों के बीच सर ठूंस कर, पीठ को एटलस की तरह रखकर किस उदासी से गाना सुनूंगा, फिर किस दर्द से रात्रि में, मेरे मन में कौन कह गया, मुझसे नहीं सहा गया। वह बात बार-बार मेरे कानों में गूंजती रही—और नहीं, और नहीं। दृष्टि बुझी-बुझी सी, मानो ध्यान की दृष्टि सी, आंखें झुकी हुई, शिव के ध्यान की तरह, दोनों भौंहों के बीच बालों की लम्बी रेखाएं। बंसी बजती है, मन में, या वन में ? बंशी को कौन बजाता है, किसे बुलाता है, क्या मालूम। क्या मालूम। 'शे कथा कि नाना सुरे बले मोरे चलो दूरे' (कथा यह बात तरह-तरह के सुर में मुझ से कहती है, चलो कहीं दूर चलें।)

इन चारों शब्दों में प्रत्येक के पीछे शब्द की एक छोटी सी तरंग, ध्यान की बात, हृदय की बात, चौकन्नी हिरणी, प्रार्थना की तरंग में टूटे हुए तटभूमि का विनाश। चलो कहीं दूर चलें, समुद्र संगम में, दूर—बीच समुद्र में, दूर—समुद्र की मिट्टी में दूर नील आकाश के अंतस्तल में, दूर समुद्र के तल के आकाश में। मेरी शिराओं से खून निकाल लो, हड्डियों से सार निकाल लो, दृष्टि का एक द्वीप, प्रवाल द्वीप, लाल रंग के आवेग का एक द्वीप बनाओ। बाबुई बालिका, हाथ जोड़कर मैं अपने सारे पाप तेरे पैरों पर रख रहा हूं।

पहाड़ से निकल कर नदी समुद्र में जा गिरती है। गंगा ब्रह्मपुत्र प्रवाहित चिकनी मिट्टी का एक देश, भूगोल का एक नाम पृथ्वी के कुछेक मनुष्य—स्वर्ग की कुछेक शोभा बनाओ। नदी समुद्र मे जाती है, चलो दूर। किनारे पर, गंगा के किनारे। कलकत्ता एक बंदरगाह है, कलकत्ता एक नाम है, समुद्र के किनारे, उसके आसपास और कितने नाम हैं – कलकत्ता, उसके बाद समुद्र।

कलकत्ता समुद्र के पास है, भागीरथी के किनारे पर स्थित एक बंदरगाह असम, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश उसके पीछे की भूमि हैं। उसके बाद है मध्य समुद्र।

इस अन्धेरे में वे दोनों रवींन्द्र संगीत के गीत की पांडुलिपि बन जाते, काटे हुए कुछ बोल, टूटे वाक्य, इधर-उधर किए हुए हस्ताक्षर। और अन्तवर्ती सुरों से भरा हुआ सा।

कहानीकारों का परिचय

ताराशंकर बंदोपाध्याय (1889-1971) शरत्चंद्र के बाद बांग्ला कथा साहित्य के अधिनायक थे ताराशंकर। कहानी, उपन्यास, नाटक तथा गीत रचना में ये सिद्धहस्त थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने उनके बारे में कहा था: "वे मिट्टी तथा मनुष्य को जानते हैं। इनके साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है।" यह सम्बन्ध बाहरी नहीं था, बल्कि अत्यन्त आंतरिक था। उन्हे 1947 में 'शरत स्मृति पुरस्कार', 1955 में 'रवीन्द्र स्मृति पुरस्कार', 1956 मे 'साहित्य अकादमी पुरस्कार' तथा 1966 में 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' मिले। कलकत्ता, उत्तर बंगाल, यादवपुर तथा रवीन्द्र भारती के विश्वविद्यालयों ने उन्हे डी० लिट्० की उपाधि से सम्मानित किया। वे राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के सदस्य भी मनोनीत किए गए तथा साहित्य अकादमी के भी फेलो रहे। उनकी कहानियां तथा उपन्यास कई भारतीय भाषाओं में अनुदित हुए हैं। कई उपन्यासो पर चलचित्र भी बने है। उनका जन्म बीरभूमि जिले के लाभपुर जमींदार परिवार मे हुआ था, मृत्यु कलकत्ते में। लिखना ही उनकी जीविका थी। भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण की उपाधि से भी विभूषित किया।

बनफुल : बनफूल का असली नाम है श्री बलाई चांद मुखोपाध्याय। पेशे से ये डाक्टर थे। कलकत्ता मेडिकल कालेज से निकलने के बाद काफी अर्से तक ये भागलपुर में डाक्टरी करते रहे। कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, प्रबन्ध आदि सभी विधाओं में ये सिद्धहस्त थे। इन्होंने अनगिनत छोटी कहानियां लिखी हैं। विषय-वस्तु के नयेपन और शैली में ये बेजोड़ समझे जाते हैं। इन्हें 1952 में कलकत्ता विश्वविद्यालय का शरत् स्मृति पुरस्कार, 1961 में आनंद पुरस्कार तथा 1962 में रवीन्द्र पुरस्कार मिले। उनकी कहानियां तथा उपन्यास एक चरित्र चित्रशाला है कभी न खत्म होने वाली विचित्रता से पाठक को मुग्ध

कर देती है एवं विस्मय में डाल देती है। 1957 में पद्मभूषण की उपाधि से विभूषित किए गये।

अचिंत्यकुमार सेनगुप्त (1902-1976) अचिंत्यकुमार सेनगुप्त 'कल्लोल गोष्ठी' के प्रधान लेखकों में से थे। ये कहानी, उपन्यास, कविता, जीवनी, बाल साहित्य तथा नाटक-विधाओं में सिद्धहस्त थे। उनका साहित्य तीक्ष्ण दृष्टि, गंभीर सहानुभूति और असीम ममता से समृद्ध है। इन्होंने कानून विभाग में काम किया था और जिला जज के ओहदे से इन्होंने अवकाश प्राप्त किया था। पूर्वी बंगाल के गरीब मुसलमान नर-नारियों, सरकारी उच्च अधिकारियों तथा राजधानी के ऊंचे नागरिकों के समाज के विभिन्न पहलुओं को उन्होंने गौर से देखा और उन पर लिखा। उनकी रचनाएं शब्दों के लावण्य से भरी हैं। 1975 में इन्हें रवीन्द्र पुरस्कार मिला था।

प्रमेन्द्र मित्र : प्रमेन्द्र मित्र 'कल्लोल गोष्ठी' के प्रमुख लेखकों में से थे। इन्हें कई विधाओं—कविता, गीत, प्रबन्ध, बाल साहित्य तथा कहानियों—में लिखने की महारत हासिल थी। उनके लिखे 'घनादा अ.' पराशर वर्मा की कहानी बच्चे बूढ़े सभी मोहित होकर पढ़ते है। जीवन का एक भाग उन्होंने काशी में बिताया। उन्होंने विभिन्न प्रकार के काम किए। वे थोड़े दिनों के लिए आकाशवाणी के कलकत्ता केन्द्र में साहित्यिक सलाहकार भी रहे। साहित्य ही उनकी जीविका का मुख्य सहारा रहा। उनकी लेखन में मानव जवन के प्रति अपार ममता झलकती है। बाहरी जीवन को पीछे छोड़ हृदय के अंदर के अन्वेषण के प्रति ही उनका अधिक रुझान था। वे मानव मन की गहराई तक उतरना चाहते थे। उन्हें 1955 में शरत् स्मृति पुरस्कार, 1958 में रवीन्द्र स्मृति पुरस्कार तथा 1967 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिले। ये पद्मश्री की उपाधि से भी विभूषित किए गये थे। दुर्भाग्य से वे अब नहीं रहे।

अन्नदा शंकर राय (1904-) इनका जन्म टेंकानल में हुआ था। 1927 में इन्होंने आई०सी०एस० की परीक्षा पास की। 1951 में नौकरी से इस्तीफा देकर ये यूरोप में 1927 से 29 तक रहे। 1957 में जापान गए। 1963 में पश्चिम जर्मनी तथा इंग्लैण्ड गए। 1962 में इन्हें साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला। 1931 में निखिल भ्रमण ग्रन्थ 'पथे प्रवासे' के कारण इन्हें बड़ी ख्याति मिली। ये कई विधाओं में रचना कर सकते थे। इनका प्रधान उपन्यास 'सत्यासत्य' छः खण्डों में प्रकाशित है। यह उपन्यास 1932-42 के बीच लिखा गया। 'रत्न

ओ श्रीमती' 1956-73 में लिखा गया। पिछले चालीस सालों से ये छोटी कहानियां लिख रहे हैं। इनके दो कहानी सकलन हैं : गल्प (1960) और 'कथा' (1970)। कहानी में कथा तत्व तथा चरित्र ये दोनों का ही ध्यान रखते हैं। कहानी जो निरी कहानी हो, ऐसी कहानी के प्रति उनकी कोई आस्था नहीं। सत्य की खोज ही उनकी कहानी का प्रमुख लक्ष्य होता है। उनकी कहानियों को दो कालखण्डों में बांटा जा सकता है। पहला 1930 से 56 तक तथा दूसरा 1959 से शुरू होता है। 'मीन पियासी' कहानी से उनकी साहित्य-यात्रा का दूसरा चरण आरम्भ होता है। पहले चरण में इन्होंने मानव जीवन के बाहरी यथार्थ पर ध्यान दिया तथा दूसरे चरण में अन्दर के यथार्थ पर। अपने साहित्य जीवन के आरम्भ में वे उड़िया, अंगरेजी तथा बांग्ला भाषाओं में लिखते थे। अब केवल बांग्ला में ही लिखते हैं। आजकल ये पूरे समय साहित्य सृजन में लगे रहते हैं। ये कलकत्ता मे रहते हैं।

सतीनाथ भादुड़ी (1907-1965) सतीनाथ भादुड़ी पूर्णिया के रहने वाले थे। काफी अर्से तक ये राजनीति से जुड़े रहे। बिहार की कांग्रेस पार्टी में ये जाने पहचाने व्यक्ति थे। अगस्त के विद्रोह में भाग लेकर ये जेल भी गये थे। उस जेलखाने के जीवन को लेकर ही उन्होंने अपना पहला उपन्यास 'जागरी' लिखा— 1945 में। इस पुस्तक से उन्हें बड़ी ख्याति मिली। इस पुस्तक के लिए उन्हें 1950 में 'रवीन्द्र स्मृति पुरस्कार' मिला। कहानी, उपन्यास और प्रबन्ध रचना में वे बड़े ही निपुण थे। उनकी 'सत्ति भ्रमण काहिनी' (सच्ची भ्रमण कहानी) एक असामान्य पुस्तक है। मन की गहराइयों तक पहुंचने में उन्हें महारत हासिल है। मानव मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म समस्या तथा आवेग का विश्लेषण करने के लिए वे लेखकों के लेखक माने जाते है। 'ढोंढाई चरित मानस' (दो खण्डों में) भारतोय उपन्यास इतिहास मे अद्वितीय है। वे प्रख्यात हिन्दी लेखक फणीश्वर नाथ रेणु के साहित्य गुरु थे।

आशापूर्णा देवी (1879-) मानव मन के रहस्यों के उद्घाटन में आशापूर्णा अत्यन्त निपुण हैं तथा मानव जीवन के प्रति उनकी असीम सहानुभूति है। सहज सांसारिक जीवन यात्रा के पीछे जो वैचित्र्य भरा है, उसे उद्घाटित करने में उन्हें असामान्य कुशलता प्राप्त है। उन्होंने हमारे समाज एवं परिवारिक जीवन पर गहरी रोशनी डाली है। 1966 में उन्हें 'लीला पुरस्कार' तथा 'रवीन्द्र पुरस्कार' मिले। उनकी बहुत सी पुस्तकों पर फिल्में भी बनी हैं। इन्हें भारतीय ज्ञानपीठ का भी पुरस्कार मिल चुका है।

सुबोध घोष : सुबोध घोष असामान्य शक्तिशाली लेखक हैं। कहानी, उपन्यास तथा प्रबन्ध रचना मे वे अत्यन्त निपुण हैं। इन्हें बहुत से विचित्र विषयों की भी जानकारी है। इनके जीवन का पहला चरण छोटानागपुर मे बीता। उनकी बहुत सी रचनाओं की यही पृष्ठभूमि है। 'शतकिया' उपन्यास इनका श्रेष्ठ परिचय माना जा सकता है। विचित्र अनुभवों के साथ वह गहन बौद्धिकता का तालमेल खूब बैठाते हैं। इनका जन्म हजारीबाग में हुआ था। फिलहाल कलकत्ते के एक दैनिक पत्र में सहायक संपादक है। इनकी भाषा-शैली असामान्य है। ये आदिवासी जीवन को जिस कुशलता से आंक सकते थे, उतनी ही कुशलता से सामरिक जीवन। मानव मन की चोर गलियों के रहस्यों के बारे में लिखने में सिद्धहस्त हैं। (ये अब नहीं रहे)।

ज्योतिरिंद्र नन्दी : ज्योतिरिंद्र नन्दी युद्धोत्तर मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग के निपुण रूपकार हैं। मनोभावों के विश्लेषण का इनका अपना तरीका है। उनकी भाषा रीति भी अपनी है। मानसिक उतार चढ़ाव के वर्णन में ये निपुण हैं। उनकी कहानियों तथा उपन्यासों में समकालीन समाज की सिर्फ गलतियों को ही नहीं दिखाया गया है, बल्कि मानव जीवन मे प्रकृति की प्रबल भूमिका भी इन्होंने बखूबी दर्शायी है। इस क्षेत्र में उन्होंने अपने पथ का खुद निर्माण किया है। (ये अब नहीं रहे)।

नरेन्द्र नाथ मित्र (1916-1975) मितभाषी मृदुभाषी नरेन्द्र नाथ के कहानी उपन्यासों में भी उनका विशेष वक्तव्य समाहित है। मध्यमवर्गी जीवन के वे निपुण कथाकार हैं। मानव मन के रहस्यों के उद्‌घाटन में एवं हृदय के विश्लेषण में इनकी गहरी पैठ है। सहयोगी लेखकों के अनुसार अधिक से अधिक संख्या में उत्कृष्ट छोटी कहानियां हमारे बीच नरेन्द्र नाथ ने ही लिखी है। उनके चरित्र हमें अनायास ही प्रभावित करते हैं। कलकत्ते में एक दैनिक पत्र के साथ जुड़े हैं। इनका जन्म फरीदपुर में हुआ था।

नारायण गंगोपाध्याय (1918-1970) नरेन्द्र नाथ मित्र के सहपाठी नारायण गंगोपाध्याय साथ-साथ ही साहित्य क्षेत्र में आये। उनके पिता का दिया हुआ नाम तारकनाथ गंगोपाध्याय था। उनका जन्म दिनाजपुर मे हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय में ये बांग्ला भाषा एवं साहित्य के रीडर थे। कहानी, उपन्यास कविता, नाटक, चित्रनाट्य, प्रबन्ध, बाल साहित्य, संगीत, समाचार-पत्रों के लिए लिखने—अर्थात् ये सभी प्रकार की रचनाओं में निपुण थे। इनका प्रथम उपन्यास

'उपनिवेश' था। 1944 में लिखे उनके इस उपन्यास ने इन्हें साहित्यिक ख्याति की चोटी पर पहुंचाया। उनके लेखन में, बहिर्जगत और अन्तर्लोक का अद्भुत समन्वय है। वे एक ही साथ रोमांटिक तथा यथार्थवादी हैं। मानव के चारों ओर के वातावरण ने उनके साहित्य में अपनी जगह पायी है। वे समाज के निर्मम विश्लेषक एवं साथ ही साथ रोमांटिक प्रकृति प्रेमी भी थे।

संतोष कुमार घोष : संतोष कुमार घोष भी नरेन्द्रनाथ मित्र तथा नारायण गंगोपाध्याय के साथ ही साहित्य क्षेत्र में उतरे। इनका जन्म फरीदपुर में हुआ था। उसके बाद वे कलकत्ता चले आए; उन्होंने अधिकतर शहरी जीवन के बारे में ही लिखा है। ग्रामीण जीवन को लेकर उन्होंने कभी कुछ नहीं लिखा। कहानी, उपन्यास, नाटक, कविता, प्रबन्ध ये सभी विधाओं में सिद्धहस्त रचनाकार हैं। उनकी कलम पैनी और थोड़ी व्यंग्यात्मक है और उसके माध्यम से ये मन के सूक्ष्मतम अनुभवों को व्यक्त करने की निपुणता रखते हैं। वे जीवन-प्रेमी हैं। उस प्रेम में थोड़ी सी वेदना तथा थोड़ी सी निराशा भी है। कुछ समय तक वे दिल्ली में रहे। (ये अब नही रहे)।

समरेश बसु : नरेन्द्रनाथ, नारायण, संतोषकुमार के साथ-साथ एक सांस में जिस नाम का उच्चारण होना चाहिए, वह नाम है समरेश बसु। समरेश बंगाल की मिट्टी को बहुत अच्छी तरह पहचानते हैं। ये यथार्थवादी हैं। इनका जन्म ढाका में हुआ था। इन्होंने जीवन में तरह तरह के काम किए। आखिरकार साहित्य को ही जीविका बनाया। मानव जीवन के प्रति उनका कौतूहल तथा सहानुभूति असीम है। कहानियों तथा उपन्यासों में इनका परिचय बिखरा पड़ा है। सिर्फ मनुष्य ही नहीं, प्रकृति भी इनके लेखन का विषय रहा है। भ्रमण साहित्य ये 'कालकूट' के नाम से लिखते है। ये गाने भी लिखते हैं और गा भी सकते हैं। माणिक बंदोपाध्याय तथा ताराशंकर बंदोपाध्याय — दोनों से प्रभावित समरेश बसु आज अपने पथ के अनोखे शिल्पी हैं। जीवन को उन्होंने अपने अनुभवों से जाना है। इन अनुभवों से उनकी आंतरिकता बड़ी गहरी जुड़ी हुई है। (ये अब नहीं रहे)।

बिमल कर (1921-) बिमल कर मानवधर्मी लेखक हैं। जीवन को उन्होंने अपनी खास दृष्टि भंगिमा से देखा है। प्रारंभ में उन्होंने डाक्टरी पढ़ी पर उसकी पढ़ाई खत्म नहीं की। बाद के समय में उन्होंने कहानियों और उपन्यासों में

चिकित्सकों की निर्मम और उदासीन दृष्टि को उजागर किया। बांग्ला कथा साहित्य में नई रीति के आंदोलन के ये प्रणेता हैं। मनशीलता और बुद्धि इनके हथियार हैं। इन्होंने आवेग का वर्णन कभी नहीं किया, और न ही परिस्थितियों के आगे आत्मसमर्पण। इनका बचपन हजारी बाग में कटा। सम्प्रति ये कलकत्ते की एक विख्यात साहित्यिक पत्रिका से जुड़े हैं। इनका जन्म 24 परगना में हुआ था। जीवन के पास रह कर भी ये मृत्यु को देख पाते हैं। उनकी कहानियों और उपन्यासों में जीवन-चेतना तथा मृत्यु-चेतना एक धागे में पिरोई हुई सी लगती हैं। उनकी कई कहनियों पर फिल्में बनी हैं।

रमापद चौधरी (1922-) रमापद चौधरी आधुनिक बांग्ला कथा साहित्य के प्रधान लेखकों में से हैं। इन्होंने द्वितीय विश्व युद्ध के समय से लिखना शुरू किया था। इनका जन्म खड़्गपुर में हुआ था। कुछ दिनों तक नौकरी के सिल-सिले मे ये छोटानागपुर में थे। भिन्न-भिन्न नौकरियां करने के बाद अब ये कलकत्ते के एक दैनिक पत्र में विभागीय संपादक हैं। अरण्य की पृष्ठभूमि को लेकर इन्होंने कई एक कहानियां लिखी हैं। इधर शहरी जीवन को लेकर ही कहानी उपन्यास लिखते हैं। उनकी कई कहानियों पर फिल्में बनी हैं। उनकी भाषा में एक लावण्य है। इनकी विशेषता सिर्फ कथा-वस्तु की विचित्रता या नयापन ही नहीं, उसके ट्रीटमेंट में भी है। इन्होंने जीवन के हर घाट पर अपनी नाव बांधी है, पर हृदय से वे स्थिर ही हैं। ये रवीन्द्र पुरस्कार से भी सम्मानित हैं।

सैयद मुस्तफा सिराज (1930-) आजादी के बाद के युग मे तरुण लेखकों में सैयद मुस्तफा सिराज का नाम प्रमुख है। इनके जीवन के अनुभव विचित्र रहे हैं। ये मुर्शीदाबाद के एक भ्रमणशील दल के 'मास्टर' गीतकार थे। यह बात 1950-58 की है। उसके पहले ये पत्रकार भी रहे—1949-50 में। इस समय कलकत्ते के विख्यात दैनिक के साथ जुड़े हुए है। इन्होंने ताराशंकर के पथ पर लिखना शुरू करके भी अपनी खास पहचान बना ली है। इनकी पहली कहानी 'देश' पत्रिका में छपी थी 'भालोबाशा ओ डाउन ट्रेन'। लेखन ही इनकी मुख्य जीविका है। बंगाल की ग्रामीण मिट्टी के मानव ने उनकी रचना मे जो जगह पायी है, उतनी ही पायी है शहरी लोगों ने। ये लिखते भी बहुत है और समाज के प्रति बहुत सजग लेखक माने जाते हैं।

मति नंदी (1932-) उत्तरी कलकत्ता के एक खानदानी परिवार में मति नन्दी

का जन्म हुआ था। आटोमोबिल इंजीनियरिंग में इन्होंने डिप्लोमा हासिल किया। राज्य परिवहन में दो साल के प्रशिक्षण के बाद बी०ए० पास करने के बाद ये पत्रकार बने। फिलहाल कलकत्ते के एक दैनिक पत्रिका के खेल विभाग मे संपादक हैं। क्रिकेट के भक्त है। क्रिकेट पर इनकी तीन किताबें हैं। 1956 में 'देश' पत्रिका में (छाद) 'छत' नामक कहानी लिखकर इन्होंने पाठकों की दृष्टि अपनी ओर खींच ली थी। उनकी लिखने की शैली दृढ है, उसमें फिजूल का कुछ नहीं रहता। कठोर वास्तविकता की मिट्टी में खड़े होकर भी मनुष्य के प्रति विश्वास रखने के ये अभ्यस्त हैं। मध्यम वर्ग तथा निम्न वर्ग के जीवन के ये निपुण रूपकार हैं।

सुनील गंगोपाध्याय (1934-) सुनील गंगोपाध्याय का जन्म फरीदपुर में हुआ था। ये कवि एवं कथाकार हैं। 'देश' में प्रकाशित 'एकटि कविता' से उनकी पहचान हुई। कवि सुनील या कहानीकार सुनील, कौन अधिक लोकप्रिय है, यह कहना कठिन है। इन्होंने विभिन्न तरह की नौकरियां कीं। इन दिनों कलकत्ता के एक दैनिक के साथ जुड़े हैं। 1960 मे इन्होंने अमेरिका भ्रमण किया। इन्होंने बहुत लिखा है। कई एक उपन्यासों पर फिल्में भी बनी है। इन्होंने अपनी कहानियों मे परिचित मध्यमवर्गीय जीवन की तरह-तरह की भंगिमाओं को पाठकों के सामने जीवन्त बना दिया है। भाषा लावण्य से भरपूर है। विषय वस्तु का चयन और इनकी शैली ने इनको जनप्रिय बनाया है।

प्रफुल्ल राय (1934-) प्रफुल्ल राय का जन्म ढाका में हुआ था। आंचलिक जीवन पर आधारित उपन्यास लिखकर इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन की शुरूआत की। देश' मे प्रकाशित 'पूर्व पार्वत्य' उपन्यास से वे साहित्य की दुनिया में प्रतिष्ठित हुए। उनका दो खण्डों में लिखा वृहत् उपन्यास 'केया पातार नौका' इस युग के बंगाली जीवन का इतिहास है। ये इन दिनों कलकत्ते की एक दैनिक पत्रिका के विभागीय संपादक है। इनकी लिखी पुस्तकों पर फिल्में भी बनी हैं। कहानी की बुनाई मे और चरित्र चित्रण मे इन्हें समान रूप से निपुणता प्राप्त है।

शीर्षेन्दु मुखोपाध्याय (1935-) इनका जन्म मैमन सिंह (बंगला देश) में हुआ था। 1959 में इन्होंने शिक्षक की नौकरी आरम्भ की। 'देश' में 'जल तरंग' कहानी के प्रकाशन के साथ ही ये छोटी कहानियों के लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो गए। इन्होंने अब तक दस उपन्यास एवं पचास से भी अधिक छोटी कहानियां लिखी हैं। इनकी कहानियों तथा उपन्यासों में यथार्थ के खींच तनाव को स्पष्ट देखा

और अनुभव किया जा सकता है। शीर्षेन्दु की कहानियों मे अस्थिरता नहीं है। है एक स्थिर विश्वास और आस्तिकता का बोध। ये कहानियों को आत्मजीवनी का रूप देते हैं और उसके माध्यम से मानव-मन की गहराइयों को छू लेते हैं।

देवेश राय (1936-) देवेश राय जलपाइगुड़ी मे रहते हैं। ये बांग्ला साहित्य के अध्यापक है। साठ के दशक में बांग्ला छोटी कहानियों के आन्दोलन के ये अग्रणी लेखक माने जाते है। लिखते समय भाषा के प्रयोग का वे विशेष रूप से ध्यान रखते है। उनका पहला गल्प-ग्रन्थ 'देवेश रायेर गल्प' 1969 मे प्रकाशित हुआ था। उनका पहला उपन्यास 'ययाति' 1972 में प्रकाशित हुआ। 'देश' पत्रिका मे छपी इनकी कहानी 'हाड़ काटा' ने पाठकों को बहुत आकर्षित किया था। उन्होंने सौ छोटी कहानियां लिखी है।

तरंग प्रिंटर्स, लक्ष्मी नगर, दिल्ली द्वारा मुद्रित